ज्वरकेशरिकायां—त्रैफलं-त्रिफला, भृङ्गतोयेन, अत्र द्रोणपुष्प्या भावना रसरत्नाकरे प्रदत्तेति–र. यो. सा.। शूलाजीर्णम्-शूलमजीर्णञ्चेत्यर्थः। सुकुमारोऽयं योगो नातिविरेचको सिद्धश्च ज्वरे॥ ४६-५४॥

शुद्ध पारा, शुद्ध, गन्धक, शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, पिप्पली-चूर्ण, मिरच चूर्ण, हरड़ चूर्ण, वहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, शुद्ध जमालगोटे का चूर्ण; समभाग लें। कज्जली में शेष द्रव्यों का चूर्ण मिला भांगरे के रस से घोट कर एक रत्ती की गोली वनावें। बालकों के लिये सरसों के समान गोली बनानी चाहिये। नारियल के पानी से इस गोली को दें तो सब ज्वरों का विनाश करता है। नारियल का जल तीन कर्ष प्रमाण में गोली के बाद पीना चाहिये। गोली को पीस मिश्री मिला जल से पीवें तो पित्तज्वर नाश होता है। इसे मरिच चूर्ण के साथ पीने से सन्निपातज्वर हटता है। पिप्पली चूर्ण और जीरे के चूर्ण के साथ सेवन करने से दाहज्वर नष्ट होता है। विषमज्वर, भूतज्वर, प्लीहा, अग्निमांद्य, अजीर्ण भयंकर शोथ, शूल, अजीर्ण, गुल्म, अठारह प्रकार के कुष्ठ, पित्तरोग तथा तरुण ज्वर को यह ज्वरकेशरिका वटी नाश करती है॥४६-५४॥

नवज्व

शुद्धसूतं तथा गन्धं लौ
मरिचं पिप्पलीं विश्वं ।
अर्धभागं विषं दद्यात् मर्दयेत् वासरद्वयम्।
शृङ्गवेरानुपानेन दद्यात् गुञ्जाद्वयं भिषक्॥ ५६॥

नवज्वरे महाघोरे वातसङ्ग्रहणी गदे ।
नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वरोगे प्रयुज्यते ॥ ५७ ॥

नवज्वरेभसिंहे— विश्वं=शुण्ठी, विषमेकभागापेक्षया अर्धम्, मर्दयेज्जलेनेति शेषः । बालानां सुकुमाराणाञ्च कृतेऽय-मुत्तमः ॥ ५५-५७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, सीसाभस्म, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण; एक २ तोला लें । शुद्ध विष आधा तोला लें। कज्जली में शुद्ध विष डाल जल से दो दिन तक घोटें पश्चात् शेष द्रव्य मिला कर पीसें और दो रत्ती की गोली बना लें। इसे अदरक के रस से दें तो महाघोर नया ज्वर, वातरोग, संग्रहणी अथवा वातज ग्रहणीरोग नष्ट होता है। अन्य भी सब रोगों में इस नवज्वरेभसिंह रस को प्रयुक्त कर सकते हैं ॥ ५५-५७ ॥

अथ निरामज्वरे—

उदकमञ्जरीरसः—

सूतो गन्धष्टङ्कणः सोषणः स्यादेतैस्तुल्या शर्करा मत्स्यपित्तैः ।
भूयो भूयो भावयेत्तु त्रिरात्रं वल्लो देयः शृङ्गवेरस्य वारा ॥५८॥
सम्यक् तापे वारिभक्तं सतक्रं वृन्ताकाढ्यं पथ्यमत्र प्रदिष्टम् ।
अह्नं योग्रं हन्ति सामं प्रभावात् पित्ताधिक्ये मूर्ध्नि वारिप्रयोगः

उदकमञ्जरीरसे—मत्स्यपित्तैः=रोहितमत्स्यपित्तैः, शृङ्गवेरस्य= आर्द्रकस्य । ज्वरागमनात्प्राक् प्रत्यहं त्रिरस्य प्रयोगे त्रिदिनानन्तरं

विषमज्वरो निवर्त्तत इति वृद्धाः। अनुभूतं चैतदस्माभिः। तापे सति तक्रवृन्ताकशाकयुतं वारिभक्तं पथ्यं देयम्। ओदनं विधाय तत्कालमेव शीतलजलेन प्रक्षालनीयमिदं वारिभक्तं नाम। एतदनन्तरं—विहायेत्यादिश्लोकेन शर्करास्थाने शिलां दत्वा चन्द्रशेखरपाठः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति, यतो मूले, एव (श्लो० १७३-१७५) वक्ष्यमाणत्वात् ॥ ५८-५६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, मरिच चूर्ण; प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। मिलित सब द्रव्यों के समान खांड मिला कर, मछली=रोहू के पित्त से तीन बार इसे भावना दें। इस रस को दो रत्ति की मात्रा में अदरक के रस के साथ देने से ताप कम हो जाता है। ताप प्रतीत होने पर वारिभक्त=ओदन पकाकर उसी समय यदि शीतल जल में डाल दिया जाय तो उसे वारिभक्त कहते हैं छाछ तथा बेंगन की भाजी का पथ्य दे। यह उग्र साम दोष को अपने प्रभाव से १ दिनमें दूर करता है। यदि इसके खाने से पित्ताधिक्य हो अर्थात् सिर गर्म हो वा शरीर में गरमी अधिक प्रतीत हो तो सिर पर जल डालना चाहिये इससे पसीना आकर ज्वर भी उतर जाता है ॥ ५८-५६ ॥

चन्द्रशेखरो रसः—

विहाय शर्करां यदा प्रदीयते मनःशिला।
तदा निरामकज्वरारिरेष चन्द्रशेखरः ॥ ६० ॥

उपरोक्त उदकमञ्जरी रस में यदि "शर्करा" न डाल उस के स्थान में 'शुद्ध मनसिल" उतनी ही डाल दें तो निरामज्वर हर

यह रस, चन्द्रशेखर होगा ॥ ६० ॥

पञ्चवक्त्ररसः—

रसो गन्धकष्टङ्कणः सोषणोऽयं फणी पिप्पलीत्येष धुस्तूरपिष्टः।
जयेत् सन्निपातं द्विगुञ्जाऽनुपानं भवेदर्कमूलाम्बु सव्योषचूर्णम्।

पञ्चवक्त्रे—फणी=मूलविषं वत्सनाभः, नाहिफेनशीशकौ, सूतं विषं गन्धमित्यादौ रसरत्नसमुच्चये विषपदस्य समानान्तर-पाठे स्पष्टोपादानात्। कफज्वरे वातश्लेष्मज्वरे यत्र ज्वरस्य ह्रास-वृद्धी भवतः तत्र प्रत्यहं त्रिश्चतुर्वा देयः। एवं स्तब्धतायां निद्राधिक्ये, अरुचौ च। आनाहे, आर्द्रकरसेन, यत्र सन्निपाते हृत्सादोपक्रमो नाडी च वेगवती तत्र अर्कमूलाम्बु व्योषचूर्णानु-पानेन नाडीगतिं नियमयति हृत्सादं चापहन्ति ॥ ६१ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, भुना सुहागा, मिरच चूर्ण, शुद्ध विष, पिप्पली चूर्ण; इन सब को समभाग ले। धतूरे के रस से पीस कर दो रत्ति के समान गोली बना लें। आक की जड़ के क्वाथ में त्रिकुटा का चूर्ण डाल कर उसके साथ एक गोली को पिलावें तो सन्निपातज्वर दूर होता है ॥ ६१ ॥

पर्पटरसः—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मर्द्य भृङ्गरसेन च।
मृतं ताम्रं लौहभस्म पादांशेन तयोः क्षिपेत् ॥६२॥
लौहपात्रे च विपचेत् चालयेत् लौहचाटुना।
तत् क्षिपेत् कदलीपत्रे गोमयोपरिसंस्थिते ॥६३॥

पश्चात् सञ्चूर्णयेत् खल्ले निर्गुण्ड्या भावयेद्दिनम् ।
जयन्तीत्रिफलाकन्यावासाभार्गीकटुत्रिकैः ॥ ६४ ॥
भृङ्गाग्निमूलमुण्डीभिर्भावयेत् दिनसप्तकम् ।
अङ्गारैः स्वेदयेत् किञ्चित् पर्पटाख्यो महारसः ॥६५॥
चतुर्गुञ्जामितो भक्ष्यः सम्यक् श्लेष्मज्वरं हरेत् ।
पथ्याशुण्ठ्यमृताक्वाथमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ ६६ ॥

पर्पट रसे— पारदगन्धकयोः कज्जलीं विधाय ततः भृङ्गरसेन मर्दयित्वा, तयोः=पारदगन्धकयोः पादांशेन=चतुर्थांशेन ताम्रं लौहभस्म च प्रत्येक मर्धतोलं क्षिपेत् । पर्पटं विधाय ततो निर्गुण्डीपत्र-स्वरसेन दिनं भावयेत् । कन्या=घृतकुमारी, अग्निमूलं=चित्रक-मूलम् । एभिर्मिलितै स्त्रयोदशद्रव्यक्वाथैः सप्त भावना । उदरशूले ऽयं हरीतकीचूर्णमधुना प्रदीयते ॥ ६२-६६ ॥

शुद्ध पारा एक तोला तथा शुद्ध गन्धक दो तोला । कज्जली को भांगरे के रस से मर्दन कर फिर ताम्रभस्म ६ माशे, लौहभस्म ६ माशा इन दोनों को उसी कज्जली में मिला घोट ले । फिर एक लोहे के पात्र में सब द्रव्यों को डाल आग पर रखे और उसे लोहे की शलाका से चलावे । जब गर्म होने से कुछ कीचड़ के समान द्रव्य हो जावे तो फिर गोबर को लीप कर उस पर नया कोमल केले का पत्ता बिछा दें । अब इस पत्ते पर उस कीचड़ समान द्रव्य को उलटा दें और ऊपर से केले का पत्ता रख के चपटे पात्र से दबा दें । बस यह पर्पटी तैयार हो गई । अब इस पपड़ी को

खरल में डाल कर चूर्ण करे और संभालू के रस से दिन भर भावना दे। फिर जयन्ती, त्रिफला, घीकुमारी, अड़ूसा, भारङ्गी, त्रिकुटा, भांगरा, चीते की जड़, मुण्डी, इनके काढ़ों से पृथक २ सात दिन तक भावनायें दे। फिर इसे अंगारों पर रख कर कुछ स्वेदन करे। यह पर्पट नामक महारस कहाता है। इसकी चार रत्ती मात्रा खाकर ऊपर से हरड़, सोंठ, गिलोय का काढ़ा अनुपान में पीवे तो श्लेष्मज्वर अच्छा हो जाता है॥ ६२-६६ ॥

वातपित्तान्तकरसः—

मृतसूताभ्रमुस्तार्क-तीक्ष्णमाक्षिकतालकम्।
गन्धकं मर्दयेत् तुल्यं यष्टिद्राक्षाऽमृतारसैः ॥६७॥
धात्रीशतावरीद्रावैः द्रवैः क्षीरविदारिजैः।
दिनं दिनं विभाव्याथ सिताक्षौद्रयुता वटी ॥६८॥
माषमात्रा, निहन्त्याशु वातपित्तज्वरं क्षयम्।
दाहं तृषां भ्रमं शोषं वातपित्तान्तको रसः।
सिताक्षीरं पिबेच्चानु यष्टिक्वाथं सितायुतम् ॥६९॥

वातपित्तान्तकरसे—मृतसूताभ्रमुस्तार्क इत्यत्र मुस्तास्थाने मुण्डेति पाठान्तरम्। धात्रीशतावरीद्रावैरत्र-जलमण्डपजैः पाठाद्रवैरिति पाठान्तरम्। तत्र जलमण्डपं=शेवालम्, अर्कं=ताम्रं, बल्लमाना वटी विधेया। सिताक्षीरानुपानेन, यष्टीक्वाथसितानुपानेन वा देयः॥ ६७-६८-६९ ॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, नागरमोथे का चूर्ण, ताम्रभस्म,

तीक्ष्णलौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध गन्धक, समभाग लेकर मुलहठी मुनक्का और गिलोय इनके काढ़ों वा स्वरसों से पृथक २ फिर आंवले के स्वरस, शतावरी के स्वरस और क्षीर-विदारी के रस से एक २ दिन भावना दे । इसकी गोली एक ६ रत्ती की रखे । इस गोली को शहद और खांड से खावे तो शीघ्र ही वातपित्त ज्वर के वेग को कम करती है। क्षयरोग, दाह, तृष्णा भ्रम, शोष, इन रोगों को दूर करती है। इस रस का नाम वात पित्तान्तक रस है। इस गोली को खाकर ऊपर से दूध में मिश्री मिलाकर अथवा मुलहठीके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पीवे ॥६७-६६॥

विश्वेश्वररसः—

मृतसूताऽर्कतीक्ष्णाभ्रं तालं गन्धश्च कट्फलम् ।
मेषशृङ्गी वचा शुण्ठी भार्गी पथ्या च वालकम् ॥७०॥
धन्याकं मर्दयेत् तुल्यं पर्पटोत्थद्रवैर्दिनम् ।
मद्यं माषं लिहेत् क्षौद्रैः कफपित्तमदात्यये ॥७१॥
रसो विश्वेश्वरो नाम प्रोक्तो नागार्जुनेन च ।
काकमाचीरसं चानु सैन्धवेन युतं पिबेत् ॥७२॥

विश्वेश्वर रसे—तीक्ष्णं = लौहं, तालं = हरितालं, मेषशृङ्गी = मेढ़ाश्रृङ्गीति ख्याता, पथ्या = हरीतकी । पर्पटोत्थद्रवैः=पर्पटकरसैः क्वाथैर्वा । रात्रिज्वरे निरामपित्तकफज्वरे कफानुबन्ध वातपित्त ज्वरे च, 'गुडूची धान्यकारिष्टरक्तचन्दनपद्मकै' रेतत् क्वाथानुपानेन देयः ॥७०-७१-७२॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध

गन्धक, कायफल चूर्ण, मेढ़ासिंगी चूर्ण, बच का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, भार्गी का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, सुगन्धबाला चूर्ण, धनियां का चूर्ण, समभाग लेकर पित्तपापड़ा के स्वरस से एक दिन घोट ६ रत्ती की गोली बनावें और उसे शहद से खावे तो कफपित्तज मदात्ययरोग नष्ट होता है। इसका नाम विश्वेश्वर रस है। इसे नागार्जुन ने कहा था। इस रसके खाने के बाद मकोयका रस सेंधा नमक डालकर पी लें ॥ ७०-७२ ॥

शीतारिरसः—

पारदं गन्धकं शुद्धं टङ्कणञ्च समं समम् ।
पारदात् द्विगुणं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ ७३ ॥
सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वग्भस्म शर्कराऽपि च ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद् दिनम् ॥७४॥
द्विगुञ्जस्तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहः ।
रसः शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः ॥ ७५ ॥

शीतारिरसे—तुषवर्जितं=बाह्यकठिनत्वचाजिह्वया च हीनम् शोधितमिति यावत्, चिञ्चा=इमलीति ख्याता, तस्याः त्वचो भस्म क्षारो वा, शर्करा=चीनीति ख्याता । गोपालकृतटीकायां 'शर्कराविषमिति व्याख्यायते' तत्र प्रमाणं मृग्यम् निरामवातश्लेष्मज्वरे कोष्ठशुद्ध्यै दीयते ॥ ७३-७५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, भुना सुहागा, एक २ तोला लें। शुद्ध जमालगोटा दो तोला लें । सेंधानमक, मिरच चूर्ण, इमली की

छाल की भस्म, खांड ये सब द्रव्य भी एक २ तोला लें । इस में जम्बीरी का रस डाल दिन भर मर्दन करें। इसे दो रत्ती गर्म जल से खायें तो वातश्लेमज्वर को नाश करता है। यह रस शीतारि नाम से प्रसिद्ध है और शीतज्वर नाश करने में उत्कृष्ट है ॥ ७३ ७५ ॥

चिन्तामणिरसः---

रसविषगन्धकटङ्कणताम्रयवक्षारकञ्च सव्योषम् ।
तालकफलत्रयञ्च क्षौद्रं दत्त्वा शतं बारान् ॥७६॥
संमर्द्य रक्तिविमिता वटिका कार्य्या भिषग्वरैः प्राज्ञैः ।
शुण्ठीपिष्टेन समं चैकां द्वे वाऽथवा तिस्रः ॥७७॥
सम्प्राश्य नारिकेलज-जलमनुपेयञ्च विमलमतिमद्भिः ।
सैन्धवजीरकसहितं तक्रं पथ्यं प्रयोक्तव्यम् ॥७८॥
प्रशमयति सन्निपातज्वरं तथा जीर्णकज्वरं विविधम् ।
प्लीहानं चाध्मानं कासं श्वासं वह्निमान्द्यम् ।
चिन्तामणी रसोऽयं किल स्वयं भैरवेण निर्दिष्टः ॥७९॥

चिन्तामणि रसे—व्योषं = कटुत्रयं, फलत्रयं = त्रिफला, शतं वारानिति = शतधा क्षौद्रेण = मधुना भावनम् । शुण्ठीपिष्टेन = चन्दनवद्घृष्टशुण्ठीजलेन । तालकविविधयोःस्थाने क्रमेण दन्ती विषममिति पाठान्तरम् ॥ ७६--७९ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, भुना सुहागा, ताम्रभस्म, यवक्षार; सोंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध हड़ताल,

हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण समभाग लें । सब द्रव्य मिला भली प्रकार घोट लें । पश्चात् कुछ शहद डाल कर सौ वार अर्थात् खूब घोट कर एक रत्ती की गोली बना कर रखें। इसकी एक दो वा तीन गोली बलाबल देखकर सोंठ के चूर्ण से खावें और ऊपर से नारियल का पानी पीवें । सेंधा नमक और जीरा चूर्ण मिला कर छाछ पीना इसमें पथ्य है। इससे सन्निपात ज्वर, विविध जीर्णज्वर, तिल्ली, आध्मान, खांसी, श्वास और अग्निमांद्य रोग दूर होता है। यह चिन्तामणि रस स्वयं भैरवजी ने कहा है। ॥ ७६-७६ ॥

चिन्तामणिरसः (प्रकारभेदेन)—

रसं गन्धं विषं लौहं धूर्त्तबीजन्तु तत्समम् ।
द्वौ भागौ ताम्रवह्न्योश्च व्योषचूर्णञ्च तत्समम् ॥८०॥
जम्बीरस्य च मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम् ।
अम्यानुपानेन वटी ज्वरे देया प्रयत्नतः ॥ ८१ ॥
अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णे च आध्मानेऽनिलसम्भवे ।
अतिसारे छर्दिते च अरोचकनिपीडिते ॥ ८२ ॥
गुञ्जाद्वयां वटीं खादेत् सद्यो ज्वरविनाशिनीम् ।
वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥८३॥
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च चातुर्थकविपर्य्ययम् ।
असाध्यञ्चापि साध्यञ्च ज्वरञ्चैवातिदुस्तरम् ॥८४॥

ज्वरान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकः ॥ ८५ ॥

प्रकारभेदेन चिन्तामणिरसे—तत्समं=चतुर्भागमित्यर्थः । व्योषचूर्णं तत्समं=भागद्वयमित्यर्थः । वातकफज्वरविषमज्वर-कास श्वास पाण्डु यकृत्प्लीहवृद्धौ सन्निपातज्वरे कर्णमूलशोथे च आर्द्रकरसेन देयः । स्त्रीणां स्तनशोथवेदनाप्रशमनाय पर्णपत्ररसेन ॥ ८०-८५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, लौहभस्म, प्रत्येक एक तोला लें । शुद्ध धतूरे के बीज ४ तोला लें । ताम्रभस्म दो तोला, चीतामूल चूर्ण २ तोला, सोंठ चूर्ण,४ तोला, मिरच चूर्ण ४ तोला, पिप्पली चूर्ण ४ तोला लें । सब द्रव्यों को नियमानुसार मिला मर्दन कर जल से दो रत्ती की गोली बना लें । इस गोली को जम्बीरी नीबू की सोंग से और अदरक के रस के अनुपान से दें तो शीघ्र ही ज्वर का वेग कम हो जाता है । वायु से उत्पन्न अग्नि-मान्द्य, अजीर्ण, आध्मान, अतिसार, वमन, अरुचि इन सब रोगों को दूर करता है । वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, ऐकाहिक, द्व्याहिक, चातुर्थक, चातुर्थकविपर्यय तथा असाध्य हो वा साध्य, अति दुस्तर ज्वर को भी यह रस नाश करता है । सब ज्वरों को इतना शीघ्र दूर करता है जिस प्रकार सूर्य भगवान् अन्धकार को दूर करते हैं । यह चिन्तामणि रस सर्व ज्वरों को नाश करने वाला है, प्रयोग प्रायशः मिलित त्रिकुटा चूर्ण चार रत्ती से है ॥ ८०-८५ ॥

सन्निपातज्वरे—

कुलवधूरसः—

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं मृतं नागं मनःशिला ।
तुत्थकं तुल्यतुल्यांशं दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ ८६ ॥
द्रवैश्चोत्तरवारुण्याश्चणमात्रा वटी कृता ।
सन्निपातं निहन्त्याशु नस्यमात्रेण दारुणम् ।
एषा कुलवधूर्नाम जले घृष्ट्वा प्रयोजयेत् ॥ ८७ ॥

॥ सन्निपाताधिकारः ॥

कुलवधूरसे—उत्तरवारुण्या द्रवैरुत्तरणीतिख्यातायाः रसेन, नस्यमात्रेण = नस्यदानानन्तरमेव अञ्जनमप्यस्याः क्रियते वृद्धैः । तस्य तुल्यांशमत्र = तुल्यतुल्यांशमिति पाठः ॥ ८६-८७ ॥

शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, नागभस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध नीलाथोथा एक २ तोला लेकर उचित क्रम से मर्दन करे। फिर उत्तरणी के रस में दिन भर दृढ़ता से मर्दन कर चने के समान गोली बना लें। इस गोली को जल में घिस कर नाक में नस्य दें तो भयंकर सन्निपात की मूर्छा दूर होती है। इसे कुलवधू रस कहते हैं ॥ ८६-८७ ॥

जयमङ्गलरसः—(अञ्जनम्)

भस्मसूताभ्रकं तारं मुण्डतीक्ष्णालमाक्षिकम् ।
वह्निटङ्कणकव्योषं समं संमर्दयेत् दिनम् ॥ ८८ ॥
पाठानिर्गुण्डिकायष्टि-विल्वमूलकषायकैः ।
ततो मूषागतं रुध्वा विपचेद् भूधरे पुटे ॥ ८९ ॥

माषैकं दशमूलस्य कषायेण प्रयोजयेत् ।
अञ्जनेनाथवा नस्यात् सन्निपातं जयेद् ध्रुवम् ॥६०॥

जयमङ्गलरसे—तारं=रजतं, तीक्ष्णं=तीक्ष्णलौहं फौलाद इति । आलं=हरितालं, माक्षिकं=स्वर्णमाक्षिकं, वह्नि=श्चित्रकः, पाठा=स्वनामख्याता, निर्गुण्डी=सिंभालू इति, यष्टिः=मधुयष्टी। मूषागतमिति—मूषा-मुष्णाति दोषान्मूषा या सा मूषेति निगद्यते । उपादानं भवेत्तस्या मृत्तिका लौहमेव च । र.र.स.अ. १०-२ भूधरे पुटे, इति--वह्निमित्रान् क्षितौ सम्यक् निखन्याद्द्व्यङ्गुलादधः । उपरिष्टात्पुटं यत्र पुटं तद्भूधराह्वयम् । र. र. स. अ. १०-६६ । जीर्णज्वरसन्निपातभ्रमप्रलापतन्द्रादौ प्रयुज्यतेऽयम् । अनुपाने दशमूलकषायो देयः । अञ्जनेन=केवलेन रसेनाञ्जनम् ॥८८-६०॥

रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, चांदी भस्म मुण्डलौहभस्म, तीक्ष्ण-लौहभस्म, शुद्ध हड़ताल, स्वर्ण माक्षिकभस्म, चीताचूर्ण, भुना सुहागा, सोंठचूर्ण, मिरचचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण । समभाग लेकर पाठा, संभालू, मुलहठी, और बेल की जड़ के काढ़ों से पृथक् एक दिन मर्दन करके मूषा में बन्द कर भूधरपुट में पकावे । इसको माष भर लेकर दशमूल के क्वाथ के अनुपात से प्रयुक्त करे। इसको अञ्जन या नस्य में भी प्रयुक्त करे तो सन्निपात की मूर्छा हट जाती है। मात्रा ½ रत्ती से १ रत्ती तक है ॥ ८८-६० ॥

नस्यभैरवरसः—

मृतसूतार्कतीक्ष्णाग्नि टङ्कणं खर्परं समम् ।
सव्योषमर्कदुग्धेन दिनं संमर्दयेद् दृढम् ।

अर्कक्षीरयुतं नस्यं सन्निपातहरं परम् ॥ ६१ ॥

नस्यभैरव रसे—अर्क=स्ताम्रम्। अग्नि=श्चित्रकः, खर्परं=रसकं तस्य च सत्वं यशदं ग्राह्यम्। तथाच—

यत्रोपरसभागोस्ति रसे तत्सत्वयोजनम्।
कर्त्तव्यं तत्फलाधिक्यं रससिद्धिमभीप्सुभिः। र.इ.चि.७-६४।

प्रवृद्धे श्लेष्मणि तीव्रनस्यार्थ मस्य प्रयोगः क्रियते मात्रा २. र. ॥ ६१ ॥

रससिन्दूर, ताम्रभस्म, लोहभस्म, चीतामूल चूर्ण, भुना सुहागा, शुद्ध खपरिया, सोंठचूर्ण, पिप्पली चूर्ण, एक २ तोला लेकर मिला लें। इसमें आक का दूध डाल दिन भर अच्छी प्रकार मर्दन करें। आक के दूध से युक्त यह नस्य भयङ्कर सन्निपात की मूर्च्छा को भी दूर करती है ॥ ६१ ॥

अञ्जनभैरवरसः—

सूततीक्ष्णकणागन्धमेकांशं जयपालकम्।
सर्वैस्त्रिगुणितं जम्भ-वारिणा च सुपेषितम्।
नेत्राञ्जनेन हन्त्याशु सर्वोपद्रवमुद्धतम् ॥ ६२ ॥

अञ्जनभैरवे—सूतः=पारदः, तीक्ष्णं=तीक्ष्णलौहम, कणा=पिप्पली, एकांशं=प्रत्येकमेकैकभागम्। जयपालकं सर्वैस्त्रिगुणितं=द्वादशभागमित्यर्थः। जम्भवारिणा=पक्वजम्बीररसेन, सर्वोपद्रवम्=सर्वे प्रलापश्वासकासादय उपद्रवा यस्मिन् तम्। उद्धतं=प्रवृद्धम्। अत्र सन्निपातमित्यनुवर्त्तते। तीक्ष्णाञ्जनार्थमस्योपयोगो भवति। मात्रा १. र. ॥ ६२ ॥

शुद्ध पारा, लौहभस्म, पिप्पली का चूर्ण, शुद्ध गन्धक, समभाग लें। फिर शुद्ध जमालगोटा उक्त मिलित द्रव्यों से तिगुना मिला कर जम्बीर के रस में दृढ़ता से मर्दन करे। इसको नेत्रों में आंजे तो सब उपद्रवों से युक्त सन्निपात भी दूर होता है ॥९२॥

अञ्जनो रसः—

गन्धेशं लशुनाम्भोभिर्मर्दयेद् याममात्रकम्।
तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत् प्रतिबोधकृत्।
मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्राप्रलापकम् ॥ ९३ ॥

अञ्जन रसे—गन्धेशं = पारदगन्धकं, तस्योदकेन = रसोनस्वरसेन, प्रतिबोधकृत् = संज्ञाप्रदः, तन्द्रायां प्रलापे च मरिचचूर्णेन सह नस्यं देयमेव मपस्मारेऽपि ददते वृद्धाः। मात्रा १ र० ॥९३॥

शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक को समभाग लेकर कज्जली बनावें और लहसन के स्वरस में एक पहर घोटें। शुष्क होने पर शीशी में रखें। इसको लहसन के ताजा स्वरस से मिला कर नस्य दें तो सन्निपात की मूर्च्छा से रोगी जाग जाता है। इसी रस में काली मिरचों का चूर्ण मिला कर नस्य दें तो तन्द्रा और प्रलाप को दूर करता है ॥ ९३ ॥

अञ्जनो रसः (प्रकारभेदेन)—

बाह्लीकं रसकं तुत्थं कर्पूरं मृतशुल्वकम्।
कासमर्दरसैर्मर्द्य दिनार्द्धं वटकीकृतम्।
अञ्जनं ज्वरदाहघ्नं सर्वदोषनिसूदनम् ॥ ९४ ॥

द्वितीयाञ्जने—बाल्हीकं = हिंगु, रसकं = यशद भस्म देयम्। तुत्थं = तूतिया इति। मृतशुल्वकं = ताम्रभस्म, कासमर्दः=कसौंदी- इति, वातश्लेष्मप्रधानसन्निपाते तन्द्राप्रलापनाशनाय जलेनाञ्जनम् ॥ ६४ ॥

हींग, खपरिया, शुद्ध नीलाथोथा, कर्पूर, ताम्रभस्म, समभाग लें। कसौंदी के रस से आधा दिन मर्दन करके गोली वा वर्त्ति बना लें। इसको घिसकर अञ्जन करें तो ज्वर दाह को कम करता तथा सर्व दोषों को दूर करता है ॥ ६४ ॥

त्रैलोक्यसुन्दरो रसः—

रसगन्धकयोः कर्षौ प्रत्येकं कज्जलीकृतौ ।
शक्रश्च मुषली चैव धुस्तूरं केशराजकम् ॥ ६५ ॥
देवदाली जयन्ती च तथा मण्डूकपर्णिका ।
एषां पत्ररसैः शाणैः शिलायां खल्लयेत् पुनः ॥ ६६ ॥
शोषयित्वा वटी कार्य्या त्वनेका राजिकोपमा ।
त्रिदोषजं ज्वरं हन्ति तथा प्रबलकोष्ठकम् ॥ ६७ ॥
तप्ते तु नारिकेलस्य जलं देयं प्रयत्नतः ।
यदा वटी न कार्य्या तु तदा खाद्या तु रक्तिका ।
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम सन्निपातहरो रसः ॥ ६८ ॥

त्रैलोक्यसुन्दरे—रसगन्धकयोः प्रत्येकं कर्षद्वयं, शक्रः = कुटजत्वक्, मुषली = तालमूली, केशराजकं=भृङ्गराजकं, देवदाली = कडुवीविन्दाल इति ख्याता, मण्डूकपर्णिका = ब्रह्ममाण्डूकी-ब्राह्मी-

भेदः । शाणै = चतुर्माषकैः, राजिका = गौरसर्षपः, प्रबलकोष्ठकं = कोष्ठगतज्वरम् । तप्ते = दाहे, क्वचिद्दाहे, इत्येव पाठः । नारिकेल-जलाभावे शर्करा जलमिश्रतो निम्बूकरसो देयः । यदा = यत्र, वटी = सर्षपोपमा वटो, न कार्या = कार्यकरी न भवति, तदा रक्ति-प्रमाणा वटी देया । यत्र वातपित्तप्रधाने सन्निपाते आध्मान मूत्रावरोधहिक्काः स्युस्तत्रास्य विशेषतः प्रयोगः । प्रबलकोष्ठक मत्र क्वचित्प्रचलकोष्ठकमिति पाठः ॥ ६५-६८ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, दोनो १--१ कर्ष लेकर कज्जली करे। फिर कुटज, मूसली, धतूरा, केशराज, बन्दालडोडा, जयन्ती मण्डूकपर्णी, इनके पत्तोंके रस पृथक् २ शाण लेकर क्रमशः खरल करे। इसकी राई के समान गोलियां बना रखे। ये गोलियां त्रिदोषज ज्वर को तथा दस्तों को बन्द करती हैं। ताप अधिक हो तो नारियल का पानी देना चाहिये। यदि गोली न बनानी हों तो एक २ रत्ति भर मात्रा देने से सन्निपात दूर होता है। यह त्रैलोक्यसुन्दर रस है ॥ ६५-६८ ॥

स्वच्छन्दभैरवरसः—

रसगन्धकयोः शाणं प्रत्येकं कज्जलीकृतम् ।
सुवर्णमाक्षिकं शाणं शुद्धञ्चैकत्र कारयेत् ॥ ९९ ॥
सिन्धुवारो रुद्रजटा नागदाऽऽमलकी तथा ।
विषकण्टालिका चैषां स्वरसं शाणमात्रकम् ॥१००॥
दत्त्वा संशोध्य सम्मर्द्य कार्य्या मुद्गसमा वटी ।
आर्द्रकस्य रसैः पेया जीरकञ्चानु भक्षयेत् ॥१०१॥

स्वच्छन्दभैरवाख्योऽयं सन्निपातोग्रचहन्मतः ।
ग्रहणीसूतीकातङ्कं नाशयेदविचारतः ॥ १०२ ॥

स्वच्छन्दभैरवरसे---रुद्रजटा = सुगन्धपत्रा, नागदा = हरीतकी विषकण्टालिका = विषकण्टालीति ख्याता, शाणमात्रकं = माषकचतुष्टयं, आर्द्रकरसैस्तोलकमितमार्द्रकरसं माषमितं भृष्ट जीरकम् । नागदा इत्यत्र नागर इति पाठः विषकण्टालिकेत्यत्र वृश्चिकालीरसैः इति पाठद्वयं र. यो. सागरे स्थितमपि बहुपुस्तकासम्वादान्नानुपात्तम् । क्वचित् अन्यस्वच्छन्दभैरव इति नामकरणमस्य तथैव व्याख्यानं च प्रमादात् । इतः पूर्वत्र स्वच्छन्दभैरवस्यानुपात्तत्वात् ॥ ९९-१०२ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक एक २ शाण लेकर कज्जली करे। स्वर्णमाक्षिकभस्म एक शाण उसीमें डालकर घोटे। रुद्रजटा संभालू, हरड़, आमला, विषकण्टालीवृक्ष, इनका स्वरस एक २ शाण डाल खरल करें। मूंग के समान गोली बनावें। एक गोली को अदरक के रस से खाकर ऊपर से जीरा चबावें। यह स्वच्छन्दभैरव रस सन्निपात की उग्रता को कम करता है और ग्रहणी तथा सूतिकारोग को दूर करता है ॥ ९९-१०२ ॥

अथ शीताङ्गसन्निपातलक्षणम्—

शीतं शरीरं शीताङ्गे छर्द्यतीसारकम्पनम् ।
क्षुद्विघातोऽङ्गमर्दश्च हिक्का श्वासः क्लमोऽरतिः ।
सर्वाङ्गशिथिलत्वञ्च सन्निपाते प्रजायते ॥ १०३ ॥

शीताङ्गचिकित्सां व्याचिख्यासुः-प्रसङ्गात्तल्लक्षणमाह-शीतमिति-सन्निपातज्वरे हृत्सादोपक्रमे आन्त्रिकसन्निपाते रक्तनिर्गमेच सम्भवतिशीताङ्गः ॥ १०३ ॥

शरीर ठण्डा हो जाये, वमन अतिसार और कंपकंपी हो, भूख नाश हो, अङ्ग टूटें, हिचकी आवे, श्वास, क्लम बेचैनी हो, सब अङ्ग शिथिल हो जायें---ऐसे लक्षण हों तो समझें शीताङ्गसन्निपात है। इसकी अवधि तन्त्रान्तर के 'पक्षमेकं तु शीतांगे' इस वचन के अनुसार १४---१५ दिन की समझनी चाहिये ॥ १०३ ॥

आनन्दभैरवो रसः—

हिङ्गुलञ्च विषं व्योषं मरिचं टङ्कणं कणा ।
जातिकोषसमं चूर्णं जम्बीरद्रवमर्दितम् ।
रक्तिमानां वटीं कुर्यात् खादेदार्द्रकसंयुताम् ॥१०४॥
वटीद्वयं त्रयं वापि सन्निपाते सुदारुणे ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति तथाऽतीसारनाशनः ॥ १०५ ॥
जीर्णज्वरहरश्चैव तथा सर्वाङ्गभेदहा ।
आमवातादिरोगञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥ १०६ ॥

आनन्द भैरव रसे—प्रसिद्धफलं सर्वचिकित्सकप्रशंसित मानन्दभैरवरसमाह--हिंगुलञ्चेति-मरिचस्य पिप्पल्याश्च भागद्वयम् व्योषस्य पृथगुपादानात् जातीकोषं जातीफलम्, जातीकोष जातीफले समे, इत्यमरात्। विविधानुपानेन विविधरोगेष्वस्य प्रयोगो भवति ॥ १०४-१०६ ॥

शुद्ध शिंगरफ, शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली-चूर्ण, भुना सुहागा, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, जावित्री चूर्ण, समभाग लेकर जम्बीरी नीबू के रस में पीसें एक रत्ति की गोली बनावें। रोगी इसे अदरक के रस से खावे। भयंकर सन्निपात में इसकी दो वा तीन गोली तक दे सकते हैं। इससे आठों प्रकार का ज्वर तथा अतीसार नष्ट होता है। यह जीर्णज्वर को भी हरता है। सम्पूर्ण देह की वातिक वेदना का नाशक है। आमवात आदि रोगों को भी निश्चित नाश करता है ॥१०४-१०६॥

आनन्दभैरवी वटिका—

विषं त्रिकटुकं गन्धं टङ्कणं मृतशुल्वकम्।
धुस्तूरस्य च बीजानि हिंगुलं नवमं स्मृतम् ॥१०७॥
एतानि समभागानि दिनैकं विजयाद्रवैः।
मर्दयेत् चणकाभान्तु वटीञ्चानन्दभैरवीम् ॥१०८॥
भक्षयेच्च पिबेच्चानु रविमूलकषायकम्।
सव्योषं हन्ति नो चित्रं सन्निपातं सुदारुणम्।
शीताङ्गे सन्निपाते वा सामान्ये वा त्रिदोषजे ॥१०९॥
धन्याक-पिप्पली-शुण्ठी-कटुकी-कण्टकारिका-
कषायं पिप्पलीसंयुक्तं चतुर्गुञ्जा च पर्पटी ॥११०॥
सन्निपातज्वरं हन्ति वटिकाऽऽनन्दभैरवी।
मूलञ्च कटुरोहिण्याः समं बिल्वं सजीरकम् ॥१११॥

दध्ना पिष्टं पिबेच्चानु वटीं चानन्दभैरवीम् ।
सन्निपातातिसारघ्नीं पथ्यं शाकविवर्जितम् ॥११२॥
आनन्दभैरवीं दत्त्वा क्वाथं वरुणसम्भवम् ।
पाययेदश्मरीं हन्ति सप्तरात्रात् न संशयः ॥ ११३ ॥
वाग्गुजीसम्भवैस्तैलै र्वटीश्चानन्दभैरवीम् ।
लेहयेत् निष्कमात्रान्तु गलत्कुष्ठञ्च नाशयेत् ॥११४॥
दधिमस्तुसिताक्षौद्रै र्वटीश्चानन्दभैरवीम् ।
भक्षयेत् मूत्रकृच्छ्रार्त्तो यवक्षारसिताऽन्विताम् ॥११५॥
गोदुग्धं क्वथितञ्चानु शीतलं मधुना पिबेत् ।
गुञ्जामूलं पिबेत् क्षीरैरनुपानं प्रशस्यते ॥ ११६ ॥
अनेन चानुपानेन वटिकाऽऽनन्दभैरवी ।
देया रुद्रजटाक्षौद्रैः सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ११७ ॥

आनन्दभैरवी वटिकायां—त्रिकटुकं = शुण्ठीमरीचपिप्पल्यः, टङ्कणं = सोहागा इति--मृतशुल्वकं = ताम्रभस्मकं धतूरस्य = कृष्ण धतूरस्य तस्य विशेषगुणाकरत्वात् , विजयाद्रवै = र्जयन्तीस्वरसैः । अत्र टीकाकाराणां मतद्वैविध्यं केचन विजयाशब्देन भङ्गामाहु स्तदन्ये जयन्तीमिति । रविमूलकषायमर्कमूलत्वक् कषायं त्वक् च द्वितोलकमिता ग्राह्या । रविमूल क्वाथेन नाड़ी बलवती भवति वेगसंख्या च नाड्या ह्रसति । पर्पटी निरामज्वरोक्ता, विल्वं=विल्व-पेशी, वरुणः = वर्नो इति तस्य त्वक् द्वितोलकमिता ग्राह्या, माषक-

मिततिलक्षारोऽप्यत्र दीयते त्वरितमश्मरीभेदनाय । बाकुची॥ बापची इतिलोके। यवक्षारः षड्रक्तिमितः, रुद्रजटा=सुगन्धपत्रा लता विशेषा निद्रानयनार्थमपि प्रयोगो भवत्यस्य ॥ १०७-११७ ॥

शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध गन्धक, भुना सुहागा, ताम्रभस्म, शुद्ध धतूरे के बीज, शुद्ध हिंगुल, ये नौ द्रव्य समभाग लेकर एक दिन भांग के रस में खरल कर चनेके समान गोली बनावें। इस का नाम आनन्दभैरवी वटी है। इस गोली को खाकर ऊपर से आक की जड़ का क्वाथ त्रिकुटे का चूर्ण मिला कर पीवे तो भयानक सन्निपात दूर होता है। शीताङ्ग सन्निपात में अथवा सामान्य सन्निपात में आनन्द भैरवी वटी एक तथा रसपर्पटी चार रत्ती मिला कर धनियां, पिप्पली, सोंठ, कटुकी, छोटी कटेरी, इनके क्वाथ में पिप्पलीचूर्ण का प्रक्षेप देकर इनके अनुपान से रोगी को सेवन करावे। इससे सन्निपातज्वर नष्ट हो जायगा। कुटकी की जड़, बेलगिरी और जीरा, इन्हें दही में पीस आनन्द भैरवी के पीछे पीवे तो सन्निपातज अतीसार शान्त होता है। इसमें शाक छोड़ दे और अन्य पथ्य खावे। आनन्द भैरवी को सेवन करा ऊपर से वरुणात्वक् का क्वाथ पिलावें। तो सात दिन में पथरी दूर हो जाती है--इसमें संशय नहीं। बावची के तेल से आनन्द भैरव वटी को एक निष्क भर चाटे तो गलत्कुष्ठ दूर हो जाता है। आनन्दभैरवी वटी को यवक्षार और खांड के साथ पीस कर दही का पानी मिश्री और शहद इस अनुपान के साथ सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र रोग दूर

हो जाता है। अनुपान के लिये गौ के दूध को उबाल कर ठण्डा कर उस में शहद मिला ले। अथवा रत्तियों की जड़ के चूर्ण को दूध से पीवे। ईश्वरीलता चूर्ण और शहद के साथ आनन्द-भैरवी वटी को मिला कर चाटे और उक्त अनुपान पीवे तो सब प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १०७--११७ ॥

प्राणेश्वरो रसः—

शुद्धसूतं तथा गन्धं सूताभ्रं विषसंयुतम् ।
समस्तं मर्दयेत् तालमूलीनीरैस्त्र्यहं बुधः ॥ ११८ ॥
पूरयेत् कूपिकां तां च सन्निरुध्य विशोषयेत् ।
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा तु शोषयेत् ॥११९॥
पुटेत् कुम्भीप्रमाणेन स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ।
गृहीत्वा कूपिकायाश्च मर्दयेच्च दिनं ततः ॥ १२० ॥
अजाजी जीरकं हिंगु--सर्जिकाटङ्कणैर्युतम् ।
गुग्गुलुः पञ्चलवणं यवक्षारो यमानिका ॥ १२१ ॥
मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकञ्च समांशतः ।
एषां कषायेण पुनर्भावयेत् सप्तधाऽऽतपे ॥ १२२ ॥
नागवल्लीदलयुतं पञ्चगुञ्जं रसेश्वरम् ।
दद्यात् नवज्वरे तीव्रे कोष्णं वारि पिबेदनु ॥१२३॥
प्राणेश्वररसो नाम्ना सन्निपातप्रकोपजित् ।
शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मे शूले त्रिदोषजे ॥ १२४ ॥

वाञ्छितं भोजनं दद्यात् कुर्य्याच्चन्दनलेपनम् ।
तापोद्रेकप्रशमनो नानाऽतीसारनाशनः ।
भवेच्च नात्र सन्देहः स्वास्थ्यञ्च लभते नरः ॥१२५॥

प्राणेश्वररसे---तालमूली = मूशली, कूपिका = काचकूपी, कुम्भीप्रमाणेन=गजपुटेन, "हस्तप्रमाणगर्त्तो यः पुटः स तु गजाह्वयः वै. श. सि.। दिनं = दिनमभिव्याप्येत्यर्थः । अजाज्यादीनां पञ्चदशद्रव्याणां समांशगृहीतानां क्वाथेन सप्तवारमातपे भावयेत्। ज्वरदशायामस्य प्रयोगे स्वेदागमनाज्ज्वरह्रासो भवति । अजीर्ण-ज्वरेऽपि दीयते। उदरशूले सामातिसारे, आध्माने च भृष्ट जीरकचूर्णमधुना, एवं गुड़गुड़ाशब्दादियुतवातप्रधाने चातिसारे, ज्वरातिसारे केवलातिसारे च मुस्तारसेन, पित्तप्रधानरोगे च तण्डुलधावनेन -यकृत्प्लीहवृद्धियुतजीर्णज्वरे केवलाल्पज्वरे च पिप्पलीचूर्णमधुना २. र. मात्रया त्रिश्चतुर्वा प्रत्यहं देयः । सूतार्धमित्यत्र मृताभ्रमिति, कुम्भीत्यत्र कुम्भेति, जीरकमत्र चित्रकमिति टङ्कणैर्युतमत्र टङ्कणंजगदिति, पाठभेदाः, र. यो. सा. । जगत् फिटकरी इति ख्याता ॥ ११८-१२५ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग, अभ्र १ भाग, शुद्ध विष १ भाग ले। पारे गन्धक को कज्जली बना, फिर विषचूर्ण मिला के मूसली के रस से तीन दिन खरल करें पश्चात् उसे एक काचकूपी में डाल कूपी का मूंह बन्द कर दें तथा कूपी पर सात कपड़मिट्टी करके सुखा लें गजपुट की आंच दें स्वांगशीतल होने पर निकाल लें और दिन भर पीसें। फिर

कालाजीरा, श्वेतजीरा, हींग, सज्जी, सुहागा, गूगल, पांचों नमक, यवक्षार, अजवायन, मिरच, पिप्पल; समभाग लें। कुल मिला कर उतना लें जितनी काचकूपी में से दवाई निकली है। उससे दश गुणा जल डाल कर पकावें शेष आठवां भाग बचने पर उतारें। कूपी से निकली दवाई में इस क्वाथ को ७ भावना दें। धूप में सुखावें। इस रस को पांच रत्ती मात्रा में लेकर पान के पत्ते में रख नये तेज ज्वर में दें अनुपान में गर्म पानी पिलावें। इससे ज्वर का वेग कम हो जायगा। यह प्राणेश्वर रस सन्निपात के प्रकोप को दूर करता है। दाहपूर्व शीत ज्वर में अथवा शीतपूर्व ज्वर और दाहपूर्व ज्वर गुल्म और त्रिदोषज शूल में लाभ करता है। इसके सेवन के समय रोगी पथ्य में यथेष्ट भोजन कर सकता है, शरीर या माथे पर चन्दन का लेप करे। यह रस ताप की अधिकता को कम करता है नानाप्रकार के अतीसार को नष्ट करता है--इसमें सन्देह नहीं, और रोगी नीरोग हो जाता है ॥ ११८-१२५ ॥

सन्निपातभैरवरसः—

ताम्रं गन्धं रसं श्वेत–गुञ्जामरिचपूतनाः।
समीनपित्तजैपालान् तुल्यानेकत्र मर्दयेत् ॥ १२६ ॥
गुञ्जाचतुष्टयश्चास्य नवज्वरहरं परम्।
ज्वराङ्कुशः सनिपात भैरवोऽयं प्रकाशितः ॥१२७॥

सन्निपातभैरवे--पूतना=पूतनाख्या हरीतकी, मीनपित्तं=रोहितमत्स्यपित्तम्, गुञ्जाचतुष्टयमत्र-युग्मगुञ्जाप्रमाणमिति पाठः। व्यवहारस्तु एकगुञ्जया। कफप्रधानसन्निपाते विरेचनाय दीयते। मुखशोषभ्रमश्वासतृष्णामदात्ययेऽपि व्यवहारन्ति स्वेदजननार्थं विरेकार्थञ्च ॥ १२६-१२७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध सफेद रत्ती का चूर्ण मरिच चूर्ण, हरड़ चूर्ण, शुद्ध मछली का पित्त, शुद्ध जमालगोटा; समभाग लें। कज्जली में सबको एकत्र पीस लें। इसकी चार रत्ति की मात्रा नये ज्वर को दूर करती है। यह सन्निपातभैरवरस ज्वरनाशक है। पसीना लाता है ॥ १२६-१२७ ॥

शीतभञ्जीरसः—

रसो हिंगुलगन्धश्च जैपालं सम्मितं त्रिभिः।
दन्तीक्वाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः परः ॥ १२८ ॥
आर्द्रकस्य रसेनैव दापयेद्रक्तिकाद्वयम्।
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद् याममात्रतः ॥ १२९ ॥
शर्करादधिभक्तश्च पथ्यं देयं प्रयत्नतः।
शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुमुद्गरसो हितः।
शीतभञ्जी रसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकः ॥ १३० ॥

शीतभञ्जीरसे---जैपालस्य त्रयोभागाः, दन्तीक्वाथेन=जैपालमूलक्वाथेन, रसेन्द्रचिन्तामणौ जैपालं च समंसममिति पाठः

१ रत्तिमात्रया कफप्रधानसन्निपातज्वरे विरेकार्थं शीतलजलेन। अत्र इक्षुमुद्गरसपथ्येन गुणाधिक्यं भवति ॥ १२८-१३० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल; एक २ तोला लें। जमालगोटा ३ तोला लें । कज्जली में हिंगुल मिलाकर घोटें। पश्चात् जमालगोटा डालकर दन्तीमूल के क्वाथ से मर्दन कर दो रत्ति की गोली बना लें। इसे अदरक के रस के साथ देने से महाघोर नये ज्वर का ताप एक पहर में कम हो जाता है। पथ्य में खांड, दही और चावल देना चाहिये । ठण्डा जल, गन्ने का वा मूंग का रस हितकारी है । यह शीतभञ्जी रस सब ज्वरों का नाशक है ॥१२८-१३० ॥

उन्मत्तरसः—

रसं गन्धञ्च तुल्यांशं धुस्तूरफलजैर्द्रवैः ।
मर्दयेत् दिनमेकन्तु तुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत् ॥ १३३ ॥
उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात् सन्निपातजित् ।
सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति रोगिणम् ।
कस्तेन न कृतो धर्म्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति ॥ १३२॥

उन्मत्तरसः—सतगर वरतिक्तेत्यादि (भावप्रकाशे सन्निपात-प्रकरणोक्त) काथानुपानेन द्विरक्तिमात्रया प्रलापके विशिष्टमुपकरोति नस्येन च, अन्येषु च तत्तद्यन्त्रगतशोथजज्वरेषु निर्गुण्डी-पत्रपुनर्नवाकाथेन चमत्करोति, संज्ञानयनाय सन्यासकफजोन्मादापस्मारयोर्मधुना दीयते । सन्निपातजिदित्यनन्तरम् "भुक्तो नानाविधान् हन्यात्सन्निपातसमुद्भवान्' इत्यधिकः पाठः ॥१३१-१३२॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; प्रत्येक एक तोला लेकर कज्जली करे और धतूरे के फल के रस से दिन भर घोटे। त्रिकटु सब मिला चूर्ण दो तोला डालकर मर्दन करे। इसको उन्मत्तरस कहते हैं। इसकी नस्य दें तो सन्निपात की मूर्च्छा हटती है ॥१३१॥

सन्निपात रूपी समुद्र में डूबे हुए रोगी को जो बचाकर बाहर निकाल देता है उसने किस धर्म का पालन नहीं किया और किस पूजा के वह योग्य नहीं ? ॥ १३२ ॥

मृतसञ्जीवनो रसः—

म्लेच्छस्य भागाश्चत्वारो जैपालस्य त्रयो मताः।
द्वौ भागौ टङ्कणस्यैव भागैकममृतस्य च ॥ १३३ ॥
तत्सर्वं मर्दयेत् श्लक्ष्णं शुष्कं यामं भिषग्वरः।
शृङ्गवेराम्बुना देयो व्योषचित्रकसैन्धवैः ॥ १३४ ॥
गुञ्जाद्वयमितस्तापं हरत्येष विनिश्चयः।
घनसारेण सारेण चन्दनेन विलेपनम् ॥ १३५ ॥
निदध्यात् कांस्यपात्रं च दाहयुक्तं च बीजयेत्।
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेदिक्षुसंयुतम् ॥ १३६ ॥
सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे।
आमवाते वातशूले गुल्मे प्लीह्नि जलोदरे ॥ १३७ ॥

शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सततज्वरे ।
अग्निमान्द्ये च वाते च प्रयोज्योऽयं रसेश्वरः ।
मृतसञ्जीवनो नाम विख्यातोऽयं रसायने ॥ १३८ ॥

मृतसञ्जीवनरसे--म्लेच्छस्य ताम्रस्य म्लेच्छस्येत्यत्र हिङ्गुल इति पाठः (भै. र.) अमृतस्य=विषस्य, श्लक्ष्णं=मसृणम्, शुष्कं=शुष्कमेव मर्दयेत्। अत्र मर्दने जलादिकं न दीयते। व्योषचित्रकयुतशृङ्गवेररसानुपानेन गुञ्जाद्वयमितो देयः। गुञ्जेत्यत्र माष, यव इति पाठद्वयं माषद्वयमित इति तु काचित्कोऽपपाठोऽपि व्याख्यातृभिस्तथैव व्याख्यातः। घनसारेण=कर्पूरेण, सारेण=दधिसारेण मक्खन इति सारं हैयंङ्गवीनकम् (वै. श. सि.) कांस्यपात्रेण=करणेन, वीजयेत्=वातं कुर्यात्, ग्रन्थान्तरे तु. दाहनाशनाय प्रकारान्तरमुच्यते।

उत्तानसुप्तस्य गभीर ताम्रकांस्यादिपात्रं परिधाय नाभौ।
तत्राम्बुधारा बहुला पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता।

अनया क्रियया ज्वरतापो द्वित्राः संख्या ह्रासं गच्छति । अन्ये चोपद्रवास्तापजा अल्पायन्ते। शाल्यन्नं=पुराणं ज्ञेयम्॥१३३-१३८॥

हिंगुल चार तोला, शुद्ध जमालगोटा तीन तोला, सुहागा भुना दो तोला, शुद्ध विष एक तोला; इन सबको खरल में शुष्क ही १ प्रहर अतिसूक्ष्म पीस ले। इसको सोंठ, मिरच पिप्पली, चीता, सेंधानमक; इनके चूर्ण से मिलाकर दो रत्ती मात्रा में अदरक के रस से दें तो निश्चय से ज्वर के ताप को कम करता है। यदि

दाह अधिक हो तो कपूर और मक्खन मिलाकर अथवा चन्दन को शीतलजल में घिसकर शरीर और मस्तक आदि पर लेप करें। कांसी के पात्र को नाभि पर रखकर उसमें शीतल जल की धारा गिरावें और पङ्खा करें। शालीचावल छाछ सहित खिलावें अथवा गन्ने के रस के साथ दें। महाघोर सन्निपात, त्रिदोष विषमज्वर, आमवात, वातशूल, गुल्म, तिल्ली, जलोदर, शीतपूर्व विषमज्वर, दाहपूर्व विषमज्वर, सततज्वर, अग्निमान्द्य और वातरोगों में इसे प्रयोग कराना चाहिये। यह मृतसञ्जीवन नाम का रस रसायन में प्रसिद्ध है॥ १३३-१३८॥

स्वल्पबडवानलरसः—

शुद्धताम्रस्य भागैकं मरिचस्य तथैव च।
विषं तत्तुल्यकं दद्यात् तत्सर्वं श्लक्ष्णचूर्णितम्॥१३९॥
लाङ्गलीरससंयुक्तं तत्सर्वं पुटके पचेत्।
रक्तिकाद्वितयं वाऽपि त्रितयं वा प्रकल्पयेत्॥१४०॥
दोषे व्योषसमायुक्तो त्रिदोषशमनो भवेत्।
भक्षयेत् पवने चोग्रे बडवानलसंज्ञितम्॥ १४१॥

स्वल्पबड़वानल रसे—विषं तत्तुल्यकमिति एकभागतुल्यं तयोस्तुल्यकं तत्तुल्यकमिति विगृह्य ताम्रमरिचसमं भागद्वयमिति यावदिति केचिदत्र पक्षे रक्तिकार्धं समग्रं वा वटीमानं प्रकल्पयेत् इति पाठः सङ्गच्छते। एकभागविषे तु रक्तिका द्वितयमिति पाठो हिङ्गुलेश्वर वज्ज्ञेयः। दोषे=सन्निपाते व्योषसमायुक्तः=माषक-

द्वयत्रिकट्वनुपानयुतः। उग्रे पवने वातरोगेषु तत्तदनुपानैर्देयः ॥ १३९-१४१ ॥

ताम्रभस्म एक भाग, मरिचचूर्ण एक भाग, शुद्ध विष एक भाग; तीनों को कलिहारी के रस के साथ खरल करके लघुपुट में पाक करे। दोष के अनुसार इसकी दो रत्ति या तीन रत्ति की मात्रा त्रिकुटा के साथ देने से तीनों दोष शान्त होते हैं। वात बहुत बढ़ी हो तो रोगी इसे सेवन करे। इसका नाम स्वल्पबडवानल रस है॥ १३९-१४१ ॥

बृहद्बडवानलो रसः—

सूतकं गन्धकञ्चैव हरितालं मनःशिला।
अभ्रकं वत्सनाभश्च दारु जङ्गमजं विषम् ॥ १४२ ॥
जैपालात् सार्द्धशतकं सर्वं सञ्चूर्ण्य मर्दयेत्।
मत्स्यमाहिषमायूरच्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥ १४३ ॥
वाटिकां शीततोयेन कुर्य्यात् गुञ्जाप्रमाणतः।
बडवानलनामायं नारिकेलजलेन वै।
भक्षयेत् सन्निपातार्त्तो मुक्तस्तस्मात् सुखी भवेत् ॥१४४

वृ. बड़वानले---वत्सनाभः=मीठातेलिया इति ख्यातः, दारु= दारुमूषा दारुमूखा दारुमोचः इति नामत्रयशब्दवाच्ये गौरी-पाषाणाख्ये विषे, तथा च--'भवेदाखुविषं दारुविषं पाषाणसंज्ञकम्' तद्भेदाः-शृङ्ग गोदन्त दाड़िमी स्फटिकादयः' (वै. श. सि.) संखिया इति लोके। जङ्गमजं विषं=कृष्णसर्पविषम्। जयपालातसार्धशतक

मिति, आकृतिमानात्, अर्धेन सहितं शतम्, सार्धशतसंख्याकं जयपालबीजमादाय विशोध्य योजयेत्। मात्स्यं=रोहीतकं ज्ञेयम्। सर्षपमात्रया विशूचिकायां देयः। प्रयोगस्त्वस्य निःसञ्ज्ञके मरणासन्नेभवति प्रतिघटिकानन्तरम्। यदा च संज्ञा, नेत्रमुखादीनामारक्तता तीव्रा नाड़ी तदा न देयः। तदा हिम-इक्षुखण्डादीनां च योगः ॥ १४२-१४४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनसील, अभ्रकभस्म, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध संखिया, शुद्ध सर्पविष; एक एक तोला लें. शुद्ध जमालगोटे के बीज डेढ़ सौ लें, कज्जली में अन्य द्रव्य मिला रोहू मछली, भैंस, मोर, बकरी; इनके पित्तों से भावनायें दें और शुष्क होने पर शीतल जल से घोट कर एक रत्ती की गोली बना लें इस रस का नाम बृहद् बडवानल रस है। नारियल के जल के अनुपान से सन्निपात का रोगी सेवन करे तो आरोग्य होता है। संखिया का शोधन है। बकरी के दूध वा गौ के दूध में दोलायन्त्र में शोधन कर सकते हैं। जङ्गमविष शोधन एक सीप में कृष्णसर्प विष और उससे चौथाई सरसों का तेल डाल कर धूप में रख देते हैं। यह पीले रंग का हो जाता है तब इसे औषधों में प्रयुक्त करते हैं। ॥ १४२--१४४ ॥

सूचिकाभरणो रसः—

रसगन्धकनागञ्च विषं स्थावरजङ्गमम्।
मात्स्यवाराहमायूर-च्छागपित्तैर्विभावयेत् ॥१४५॥

सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः ।

सूचिकाग्रेण दातव्यः सन्निपातनिबर्हणः ॥ १४६ ॥

सूचिकाभरणरसे--नागं = शीशकं, स्थावर जङ्गममिति स्थावर-विषं = वत्सनाभाख्यम् , जङ्गमं = कृष्णसर्पविषम , वाराहः = शूकरः, मायूरः = मोर इतिख्यातः, छागो = मेषः, वाराहेत्यत्र माहि-षेति पाठान्तरम् । कैश्चिन्माहिषवराहयोरुभयोरपि पित्तयो भावना दीयते । सन्निपाते--चैतन्यलोपे, प्रश्वास वायोः शीतलतायां, नाड्या विशृङ्खलतायां गतिहीनतायां सर्वतः शरीरस्य शीतलतायां वात-श्लेष्मकोपे पुनः पुनः स्वेदेन नाड़ीगतिलोपे (हृत्सादे) वा नारिकेलोदकेन नारङ्गरसेन वाऽयं योज्यः । यावन्नासावायो-र्नोष्णता, नाड्याश्च न स्वस्थता तावत्प्रतिघटिकं देयः । यदा च नेत्रयो रक्तता तदा शिरसि हिमशीतलीकृतं तिलतैलं मर्दयित्वा शीतलजलधारा प्रदेया । प्रचुरशैत्याऽप्रयोगे रोगिणोऽनिष्टसम्भा-वना । शिशुवृद्धगर्भिणीनाञ्च नायं योज्यः । इत्थं वृ० सूचिका-भरणोऽपि कार्यम् । मृतकल्पे प्रयुज्येते, इमौ, रोग प्राबल्यानुरोधेन चतस्रः पञ्च षड् वा वस्यो देयाः । निगिलनासमर्थे रोगिणि मस्तके काकपदं (क्षतं) कृत्वा तद्द्वारा प्रयोगो विधेयः । अधिकन्तु प्रतिसंस्कृतनिदानाज्ज्ञेयमान्त्रिकज्वरे ॥ १४५-१४६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नागभस्म, शुद्ध मीठा तेलिया, शुद्ध सांप का विष; समभाग लें । मछली, सूअर, मोर और बकरे के पित्तों से भावनायें देकर सुखा लें । इस रस का नाम सूचिकाभरण रस है । इसे भैरव ने कहा है । सूई की अगली नोक पर जितना आवे उतना रस देने से या सिर के बाल मुंडवा कर ब्रह्मरन्ध्र पर थोड़ा क्षत देकर मल देने से सन्निपात की मूर्च्छा दूर होती है ॥ १४५-१४६ ॥

पञ्चानन रसः—

शम्भोः कण्ठ विभूषणं समरिचं दैत्येन्द्ररक्तो रसः।
पक्षौ सागर लोचनं शशियुगं भागस्तथाऽर्धो रवेः॥
खल्लेतत्परिमर्दितं रविजलैर्गुञ्जैकमात्रं ददेत्।
सिंहोऽयं ज्वर दन्तिदर्पदलनः पञ्चाननाख्यो रसः॥१४७

पथ्यञ्च देयं दधितक्रभक्तं सिन्धूत्थमौद्गं सितया समेतम्।
गन्धानुलेपो हिमतोयपानं दुग्धं च देयं त्वथ दाड़िमाम्भः।

पञ्चानन रसे-यद्यपि शम्भोः कण्ठविभूषणशब्देन [शम्भोः शिवस्य कण्ठविभूषणं कण्ठस्य गलदेशस्य विभूषणं शोभाजनकं-) विषसामान्यमभिधीयते, तथापि वृद्धवैद्यव्यवहारात् वत्सनाभाख्यं मूलविषं ज्वरहरत्वादत्र ज्ञेयम्। तच्च शुद्धं पक्षौ=भागद्वयम्, समरिचं=मरिचयुक्तं मरिचस्य च सागराश्चत्वारो भागाः, दैत्येन्द्रो=गन्धः-तस्य च लोचनं=भागद्वयम्, रक्तं=हिङ्गुलम्, तस्य शशी=एको भागः, रसः=पारदस्तस्य युगं=द्वौ भागौ, तथा-रवे= स्ताम्रस्याऽर्धो भागः। एते सर्व एव शुद्धा मृताश्च देयाः। रविजलैः=सूर्योदयात्प्रागुत्पाटितार्कमूलत्वक्स्वरसै स्तद्दुग्धेन वा। गुञ्ज कमात्रं=रक्तिकासितम् । सिद्धः=त्वरितनिश्चित गुणकरत्वेन प्रसिद्धः। ज्वरदन्तिदर्पदलनः=ज्वरएव दन्ती मत्तहस्ती तस्य दर्पस्याभिमानस्य दलनो नाशनोऽतएव पञ्चाननाख्यः= पञ्चाननःसिंहः सा आख्या यस्य स तथाविधः। अत्र पाठभेदाः व्याख्यातॄणां मतान्तराणि च।

दैत्येन्द्ररक्ते अत्र दैत्येन्द्ररक्तमित्येकवचनान्तःपाठः। रस

इत्यत्र रविरिति, रसैरिति च पाठद्वयम् । समरिचं गन्धं रसेन्द्रो रविरिति रसमञ्जर्यां पाठः । लोचनमित्यत्र लोचने इति, शशियुगमित्यत्र हिमरुचिरिति, शशियुतमिति च तथाऽर्धो रवेरत्र-अर्कसंख्यान्वित इति । हिमरुचिरिति पाठे दैत्येन्द्ररक्तं हिंगुलं तस्य च हिमरुचिरेकोभाग इत्यर्थः सङ्गच्छते । गन्धकस्य चोपादानमत्र पद्ये न स्यात् । रसस्य कतमो भाग इति व्यामोहश्च । अर्कसंख्यान्वित इति पाठेन सह रवेरिति पदस्यान्वयं कृत्वा रवे स्ताम्रस्य नव एकादश वा सर्वद्रव्यैः सह द्वादशभागा इति द्वादशभागता नाति रमणीया प्रतिभाति, यतस्ते—अर्कसंख्याद्वादशभागा इति व्याख्यानं कुर्वन्ति । र. इ. चि. मणिटीकायान्तु—गन्धस्य लोचनानि शम्भोरेव त्रीणीत्यर्थः—इति व्याख्यातम् ।......एवं सर्वसमष्ट्याऽर्क संख्यान्वितः—द्वादशसंख्यान्वितोभागः सम्भवति । इति विषादि द्रव्य भागैर्द्वादशसंख्याःक्लिष्टकल्पनया पूर्णीकृता ।

सिन्धूत्थं=सैन्धवम्, मौद्गम्=मुद्गयूषम्, अस्मिन् रसे सितायुतं सैन्धवयुतं वा दधितक्रभक्तं पथ्यं देयम् । गन्धानुलेपो=गन्धानां सुगन्धिद्रव्याणां श्वेतचन्दनादीनामनुलेपो=लेपनम् । पुष्पसारादीना (इत्र) माघ्राणमपि युक्तम् । हिमतोयं=शीतजलं हिमशीतलीकृतं वा जलं दुग्धं च तथा देयं हिमाचूषणमपि । प्रवृद्धे विषमज्वरतापे ज्वरस्य तापस्य च शान्त्यर्थं शर्करानिम्बूकरसमिश्रित जलस्य द्वित्राः पानम् । सज्वरे विज्वरे वा प्रवृद्धे यकृति प्लीह्नि च दारुहरिद्राकाथेन, काकमाचीरसेन वा मधुमधुरेण प्रत्यहं त्रिरस्य प्रयोगश्चमत्करोति ।

अनिश्चितनिदानदीर्घकालिकालज्वरे,आमवातज्वरे च मृत्युञ्जय रसेनसहपर्यायेणमध्वार्द्रकरसानुपानेनास्यप्रयोगो भवति ॥१४७॥

विष २ भाग, कालीमिर्च शुद्ध ४ भा. (मिर्च का लेकर अधिक जल में डाले पानी में जो बैठ जांय उनको निकाल सुखाले तैरने वाली फेंक दे) गन्धक २ भा. शुद्ध शिंरफ १ भा. पारा २ भा. ताम्रभस्म ½ भा. । इन सब द्रव्यों को एकत्र कर प्रथम पारद गन्धक को कज्जली बना, शेष द्रव्य डालकर सूर्योदय से प्रथम आंक की जड़ की छाल का रस निकालकर इससे खूब घोटकर १ रत्ति की गोली बनावे। यह पंचानन रस ज्वररूपी हाथी के घमण्ड को दूर करने के लिये शेर के समान है। इस श्लोक का व्याख्यान अब तक के प्रायः सब ही टीकाकारों ने अपने मन का किया है मूल्य पाठ शोधन में परिश्रम नहीं किया है ॥ १४७ ॥

त्रिदोषनीहारविनाशसूर्योरसः—

रसेन गन्धं द्विगुणं कृशानो रसैर्विमर्द्याष्टदिनानि घर्मे।
रसाष्टभागन्त्वमृतश्च दद्याद् विमर्दयेद्वह्निरसेन किञ्चित् । १४८
पित्तैस्तु संभावित एष देयः त्रिदोषनीहारविनाशसूर्य्यः ।१४६

त्रिदोषनीहारविनाशसूर्ये—रसेन=पारदेन,कृशानोरर्काचित्रकस्य, रसैः=मूलत्वक्क्वाथैः, घर्मे=आतपे, रसाष्टभाग=रसापेक्षयाष्टमं भागम्, अमृतं=विषं दद्यात् । पुनर्वह्निरसेन=चित्रकक्काथेनकिञ्चिद्विमर्दयेत्, तदनुपित्तैः रोहितमत्स्यपित्तैः, पञ्चपित्तै-

रिति व्यावहारिकाः। सम्भावितो=दत्तभावनः। भा. १. र.आर्द्रक रसानुपानैर्देयः । तथा च—वैद्योरसश्चार्द्ररसानुपानाच्छैत्ये त्रिदोषे खलु वल्लमात्रः। र. का. धे. इत्यधिकः पाठः।

मुखनासाभ्यां रक्तस्रुतौ जलघृष्टरक्तचन्दनेन, मूर्छाकम्पो न्मादप्रलापे तन्द्राऽऽसंज्ञोरसिपार्श्ववेदनादिषु मध्वार्द्रकरसेनदेयः। संस्थिते च वक्षसि कफे शृंङ्ग्यादिचूर्णेन, भार्ग्यादिक्वाथेन वा कफंतरलीकृत्यायं प्रयोज्यः । बालवृद्धगर्भिणीनामनिद्रायां शिरोरुजि च न योज्यः। अस्य प्रयोगे कस्यचिद्वमनं भवति, तत्र क्रमेण पुनः पुनरस्य प्रयोगः कार्यः ॥ १४८-१४६ ॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला ले। दोनों की कज्जली करके चीते के क्वाथ से आठ दिन तक धूप में घोटे। फिर शुद्ध वत्सनाभ विष पारद से आठवां भाग डालकर चीते के रस से मर्दन करे। पश्चात् पांच पित्तों से भावना दे। यह त्रिदोषप्रीहारविनाशसूर्य रस है। अर्थात् यह रस त्रिदोष रूपी पाले को नष्ट करने में सूर्य का काम करता है ॥१४८--१४६॥

रसराजेन्द्रो रसः—

पलं शुद्धस्य सूतस्य पलं ताम्रमयस्तथा ।
अभ्रं नागं पलं वङ्गं पलं गन्धकतालकम् ॥ १५० ॥
पलं शुद्धविषं चूर्णं सर्वमेकत्र कारयेत् ।
मर्दयेत् काकमाच्याश्च आर्द्रकस्य रसेन च ॥१५१॥
मात्स्यवाराहमायूर च्छागमाहिषपित्तकैः ।

मर्दयेद् भिन्नभिन्नश्च त्रिकटोरम्बुभिस्तथा ॥ १५२ ॥
सिद्धोऽयं रसराजेन्द्रो धन्वन्तरिसुसंस्कृतः ।
गुञ्जामात्रं रसं दद्यात् सुरसारससंयुतम् ॥ १५३ ॥
मेघवारिप्रवाहेण धारितं वारि मस्तके ।
अनिवारो यदा दाहस्तदा देया च शर्करा ।
भोजनं दधिसंयुक्तं वारमेकन्तु दापयेत् ॥ १५४ ॥
ईश्वरेण हतः कामः केशवेन च दानवः ।
पावकेन यथा शीतमनेन च तथा ज्वरः ॥ १५५ ॥

रसराजेन्द्रे—अयो=लौहम्, नागमं=शीसकम्, सर्वाणि द्रव्याणि शुद्धानिमृतानिवारितराणिचग्राह्याणि । प्रथमंसूत· गन्धकयोर्मसृणांकज्जलींकृत्वाविषंकाकमाचीस्वरसेनार्द्रीकृत्यमसृणी· कृत्यचमेलयेत् । ततःकाकमाची आर्द्र कमत्स्यादिपञ्च· पित्तैःप्रत्येकमेकैका भावना । एवं त्रिकटुनामिलितेन एका भावना । सिद्धः=निश्चितगुणाकरत्वेनसम्मतः । धन्वन्तरिसुसं· स्कृतः=धन्वन्तरिकल्पेन केनचिद्वैद्येननिर्मितःतदाख्येनवा केनचित् न तु सुश्रुताध्यापकेन धन्वन्तरिणा, तत्कृतरसप्रयोगाणां कुत्राप्यनुपलम्भादश्रवणाच्च । सुरसा=तुलसी, तद्रसश्चार्धतोलक· मितः, तथात्वेऽपि दाहाऽनपगमे शर्करादधियुक्तं भोजनं एकवार देयम् । ईश्वरेण=शिवेन, केशवेन=विष्णुना, पावकेन=वह्निना, शीतमिवाऽनेन ज्वरः सद्यो नश्यति । सन्निपातज्वरे प्रलाप, पिपासा, स्वेद, तन्द्रा, कासादिषु शिरसि गले वेदनायां च प्रत्यं

शिरस्य प्रयोगः। शिरसि, उष्णतायां दाहे च तद्दिने प्रयोगनिषेधः, शिरसि जलधारादानं च। नाड़ीपरीक्षादिना—औषधगुणप्रकाशाभावे जलधारा दानं न कर्तव्यम् ॥ १५०-१५५ ॥

शुद्ध पारा एक पल, ताम्रभस्म एक पल, लौहभस्म एक पल, अभ्रकभस्म एक पल, नागभस्म एक पल, वङ्गभस्म एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल, शुद्ध हड़ताल एक पल, शुद्ध विष एक पल लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर मकोय के रस से, अदरक के रस से, रोहू मछली के पित्त से, सूअर के पित्त से, मोर के पित्त से, बकरे के पित्त से, तथा भैंस के पित्त से पृथक् २ खरल करें। तथा त्रिकुटा के क्वाथ से मर्दन कर इस की एक रत्ति की गोली बनालें। इसका नाम रसराजेन्द्र है। यह धन्वन्तरि का बनाया हुआ है। इस रस को तुलसी के रस से दें। सिर पर वर्षा के सदृश जलधारा गिरावें। जब इस प्रकार भी दाह शान्त न हो—दाह बहुत ही हो तो ठण्डा शरबत पीने को दें। दही वाला भोजन एकवार दें। जिस प्रकार महादेव ने कामदेव को भस्म कर दिया था, जिस प्रकार से कृष्णभगवान् ने दानवों का नाश किया था और जैसे अग्नि से शीत हट जाता है उसी प्रकार इस रस के देने से ज्वर नष्ट हो जाता है ॥१५०--१५५॥

मृतसञ्जीवनो रसः

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्ले तत् कज्जलीकृतम्।
अभ्रलौहकयोर्भस्म ताम्रभस्म समं समम् ॥१५६॥

विषं तालं वराटश्च शिलाहिङ्गुलचित्रकाः ।
हस्तिशुण्डी चातिविषा त्र्यूषणं हेममाक्षिकम् ॥१५७॥
(शृङ्गः कुंभीमेघनाद एषां चूर्णं रसांशकम् ।)
चूर्णं विमर्दयेद् द्रावैरार्द्रकस्य दिनत्रयम् ।
निर्गुण्डीविजयाद्रावैस्त्रिदिनं मर्दयेत् पुनः ॥१५८॥
(जम्बीररस्य च चाङ्गेर्या द्रवैर्धस्त्र विमर्दयेत् ।)
काचकूप्यां निवेश्याथ वालुकायन्त्रके पचेत् ।
द्वियामान्ते समुद्धृत्य मर्दयेदार्द्रकद्रवैः ॥१५९॥
(दिनैकं शोषये च्चूर्णं त्रिगुञ्जस्सन्निपातजित्) ।
मृतसञ्जीवनो नाम रसोऽयं शङ्करोदितः ।
मृतोऽपि सन्निपातार्त्तो जीवत्येव न संशयः ॥१६०॥

मृतसञ्जीवने—गन्धस्य द्वौ भागौ, अन्येषां हेममाक्षिकान्तानां सूततुल्यता योगे सूतस्यैव प्रधान्यात् । 'अभ्रादीनां प्रत्येकं गन्धकसम' मिति व्याख्यानन्तु-आपाततः ।

र. यो., सागरे—"गन्धको द्विगुणो मतः" "एषां प्रत्येक मेकैकं भागमादाय चूर्णयेत्" इति पाठन्तरदर्शनात् । वराट स्थाने कंकुष्ठमिति पाठः । हेममाक्षिकं=स्वर्णमाक्षिकम्, द्रावै,=रसैः, विजया=जयन्ती तत्पत्ररसै विशेषज्वरहरत्वाद् वृद्धव्यवहाराच्च न तु भङ्गा. द्वियामं वालुका यन्त्रे मध्याग्निना पचेत् ॥ १५९-१६०॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग, दोनों की कज्जली करे। फिर अभ्रकभस्म एक भाग, लौहभस्म एक भाग, ताम्रभस्म एक भाग, शुद्ध विष एक भाग, शुद्ध हड़ताल एक भाग, कौडीभस्म एक भाग, शुद्ध मनसिल एक भाग, शुद्ध हिंगुल एक भाग, चीता चूर्ण एक भाग, हाथीसुंडी का चूर्ण एक भाग, अतीस चूर्ण एक भाग, सोंठ चूर्ण एक भाग मिरचचूर्ण एक भाग, पिप्पलीचूर्ण एक भाग, स्वर्णमाक्षिकभस्म एक भाग, दालचीनी कुम्भी चौलाई १--१ भाग इन सब को मिलाकर तीन दिन तक अदरक के रस से घोटें, तीन दिन संभालू के रससे घोटें, फिर भांग के रस से तीन दिन घोटें, जम्बीरी नीबू तथा चौपतिया के रस से १--१ दिन घोट पुनः इसको एक काच की कूपी में भर वालुकायन्त्र में पकावें। दो पहर तक पकाने के पीछे स्वांगशीतल होने पर इसे निकाल १ दिन अदरक के रस से घोट छान ३ रत्ति की गोली बना लें। यह मृतसंजीवन नाम का रस शङ्कर ने कहा है। इससे मृत्युमुख में पड़ा हुआ सन्निपात का रोगी भी जी उठता है—इसमें कोई संशय नहीं ॥१५६--१६०॥

गन्धककज्जलीविधिः—

कण्टकारी सिंधुवारस्तथा नाटाकरञ्जकम्।
अमीषां रसमादाय कृत्वा खर्परखण्डके ॥ १६१ ॥
प्रक्षिप्य गन्धकं तत्र ज्वालां मृद्वग्निना ददेत्।
गन्धके स्नेहतापन्ने पारदं तत्समं क्षिपेत् ॥ १६२ ॥

मिश्रीकृत्य ततश्चोभौ द्रुतं तमवतारयेत् ।
आमर्दयेत् तथा तन्तु यथा स्यात् कज्जलप्रभम् ॥१६३॥

ततस्तु रक्तिकामस्य जीरकस्य च माषकम् ।
माषैकं लवणस्यापि पर्णे कृत्वा प्रदापयेत् ॥ १६४ ॥

ज्वरे त्रिदोषजे घोरे जलमुष्णं पिबेदनु ।
छर्द्यां शर्करया दद्यात् शामे दद्यात् तथा गुडम् ॥१६५॥

क्षये च च्छागदुग्धं स्यादनुपानं प्रयोजितम् ।
रक्तातिसारे कुटज—मूलवल्कलजं रसम् ॥ १६६ ॥

रक्तस्रावे तथा दद्यादुडुम्बरभवं रसम् ।
सर्वव्याधिहरश्चायं गन्धकः कज्जलीकृतः ।
आयुर्वृद्धिकरश्चायं मृतश्चापि प्रबोधयेत् ॥ १६७ ॥

गन्धककज्जलीविधौकण्टकारी=कटेलीतिख्याता, सिन्धुवारो=निर्गुण्डी, नाटाकरञ्जकं प्रसिद्धम्, रसं स्वरसं गन्धकतुल्यं खर्परखण्डके=कपालखण्डे, मृद्वग्निना=अत्र वदराङ्गारज्वालोपयुक्ता भवति, गन्धके स्नेहतापन्ने=द्रवीभूते मिश्रीकृत्य मर्दकेनेतिशेषः । लवणस्य=सैन्धवस्य, पर्णे=पर्णपत्रे, कुटजमूलवल्कलजं रसं तोलकमितं ग्राह्यम्. उदुम्बरो=जन्तुफलः गूलर इति ख्यातः । रक्तस्रावे इत्यत्र—रक्तवान्ताविति पाठान्तरम् । संज्ञाकरणाय उष्णजलेन, क्षये शर्करानुपानेन दीयते ॥१६१-१६७॥

छोटी कटेली, सम्भालू, नाटाकरञ्ज, इन सब के समभाग रस को एक मिट्टी के छोटे पात्र में डाले और इसमें शुद्ध आंवलासार गन्धक डालकर आग पर पात्र को रख दे नीचे से मन्द २ ज्वाला दे। जब गन्धक पिघले तब गन्धक के बराबर शुद्ध पारा उस पात्र में डाल दे। फिर दोनों को मिला पात्र को नीचे उतार घोट कर कज्जल के समान कर ले। यह पारे गन्धक की कज्जली हुई। इस कज्जली को एक रत्ती ले एक माषा जीरा चूर्ण और एक माषा नमक के चूर्ण से मिला पान में रख कर रोगी को दे और ऊपर से गरम जल पिलावे। घोर त्रिदोषजनित सन्निपात ज्वर में लाभ करता है। वमन में अथवा यदि ज्वर में वमन भी हो तो इसको खांड के साथ, सामज्वर में इसे पुराने गुड़ के साथ, क्षयरोग में बकरी के दूध के अनुपान से, रक्तातीसार में कुड़े की जड़ की छाल के क्वाथ से, यदि रक्त निकलता हो वो गूलर के रस से दे। यह गन्धक की कज्जली सब रोगों को दूर करने वाली है। आयु बढ़ाती है तथा मृत तुल्य को प्रबुद्ध करती है॥ १६१-१६७॥

ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना।

जलसेकावगाहैश्च बलिनस्ते तु नान्यथा॥

यथालाभेन पित्तेन रसाः सर्वे भवन्ति हि॥ १६८॥

पित्तयुतरसानां शक्तिवृद्धये विधानमाह—ये रसा इति—पित्त संयुक्ता=मत्स्यादिपित्तभाविताः, ते जलसेकेन=जलसिञ्चनेन-

शतिक्रियया बलिनो भवन्ति नान्यथा। यत्र च पित्तैर्भावना त सर्वपित्तानामलाभे यथामिलितैररिकार्यं निर्वाहः करणीय: समावेशोऽस्यपित्तयुतरसैःसह उचितः। ॥ १६८ ॥

शिवजी ने सब जगह पित्तयुक्त जो रस कहे हैं वे जल से पानी में तैरने आदि से गुण कर होते हैं अन्यथा नहीं उक्त स पित्त उचित्त मात्रा में प्राप्त न हों तो उनमें से जो पित्त मिले उनसे ही भावना देकर कार्य चलावें ॥१६८॥

वेतालो रसः —

रसं गन्धं विषञ्चैव मरिचाऽऽलं समांशकम् ।
शिलायां मर्दयेत् तावद् यावज्जायेत कज्जलम् ।१६।
गुञ्जामात्रं प्रयोक्तव्यं हरेद् द्वादशसंज्ञकम् ।
साध्यासाध्यं निहन्त्याशु सन्निपातं सुदारुणम् ।१७०।
दन्तपंक्तिर्दृढा यस्य लोचने भ्रान्ततारके ।
चलिते चेन्द्रियग्रामे वेतालं विनियोजयेत् ॥ १७१ ॥
म्लानेषु लिप्तदेहेषु मोहग्रस्तेषु देहिषु ।
दातुमर्हति वेतालं यमदूतनिवारकम् ॥ १७२ ॥

वेताले—आलं=शुद्धहरितालं तच्च विषमिव पृथगेव मसृणं कृत्य ततः कज्जल्या मेलयेत्। द्वादशसंज्ञकं=द्वादश सन्निपातान् साध्यासाध्यमत्र—साध्यम=मसाध्यकल्पमित्यर्थः, ईषदर्थेनञ् अन्यथा 'औषधं नत्वसाध्यानां व्याधीनामुपदिश्यते', इत्यभिहितो क व्याघातः। दन्तपंक्तिरिति मस्तिष्के रक्तवृद्धौ संन्यासावस्थायामस्य

प्रयोगो
अदण
इन्द्रिय
मोहग्र
दिषु स
स्लेष्म
रम्।
के खर
मरिच
हैं।
सन्निप
कर
चढ़ ग
वेहश

प्रयोगो विहितः। भ्रान्ततारके=भ्रान्ते=इतस्ततश्चलिते तारके= अक्ष्णः कनीनिके यस्मिन् तथाविधे सन्निपाते। इन्द्रियग्रामे= इन्द्रियगणे, चलिते=स्वकार्याद्विरते, लिप्तदेहेषु=स्वेदोद्गमेनेत्यर्थः, मोहग्रस्तेषु=वैचित्त्यग्रस्तेषु। सन्निपातज्वरेमोहतन्द्रा शिरः शूला-दिषु मधुना, ग्रन्थिकसन्निपाते (प्लेग) शिरीषत्वक्स्वरसेन, पित्त-श्लेष्मज्वरे आर्द्रकस्वरसेन, मरिचस्थाने माक्षिकमिति पाठान्त-रम्। आर्द्रक रसेन च मर्दनम्।

अस्य मात्रा गुञ्जमिता पिप्पली मधुसंयुता
योज्या वाते तथा शिग्रुरसेनाऽऽर्द्र रसेन वा
सितया जीरकेणाऽपि देया पित्तज्वरे बुधैः
शर्करा मधुयष्टीभ्यां भूनिम्बसितयाऽथवा
शीतज्वरेषु योज्या सा पिप्पली मधुसंयुता
अथवा मधुशुण्ठीभ्यामनुपानेन रोगजित्

र. यो. सागरे, इत्यधिकः पाठः ॥ १६९-१७२ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गन्धक एक भाग, दोनों की पत्थर के खरल में कज्जली करे। फिर शुद्ध विष, शुद्ध हड़ताल तथा मरिचचूर्ण एक २ भाग डाल मर्दन करे इसको वेताल रस कहते हैं। इसे एक रत्ती प्रमाण देने से साध्य असाध्य बारह प्रकार के सन्निपात दूर होते हैं। जिस सन्निपात रोगी की दन्तपंक्ति अकड़ कर भिच गई हों और नेत्रों की पुतलियां स्थान से भ्रष्ट हो ऊपर चढ़ गई हों तथा सब इन्द्रियां अपनी शक्ति छोड़ चुकी हों वहां वेताल रस का प्रयोग करे। जब रोगी श्रीहीन, लिपे शरीरवाला,

मोह-मूर्छाग्रस्त हो चुका हो तब वैद्य इस वेतालरस को दे। य
मृत्यु-मुख से रक्षा करता है ॥१६६--१७२॥

चन्द्रशेखरः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा।
चतुस्तुल्या शिला योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ।१७
त्रिदिनं मर्दयेत् तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः।
द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं पुनः ॥ १७४ ॥
तक्रभक्तञ्च वृन्ताकं भिषक् तत्र प्रयोजयेत्।
त्रिदिनात् श्लेष्मपित्तोत्थमत्युष्णं नाशयेज्ज्वरम् ।१७

चन्द्रशेखरे-शिलास्थाने सिता इति पाठो वहुषु पुस्तकेषु-स
पूर्वोक्त उदकमञ्जरीरसेनैव गतार्थ इति शिला मनःशिला पाठ ए
युक्तः। विषमज्वरेऽप्ययं प्रचरति तत्र ज्वरागमनाद्धर्धनाद्वाप्रा
कस्मिन्दिने मात्रात्रयं प्रयोज्य सुपरिचशीतलजलपानम् एवं
त्रिदिनं प्रयोगः। सन्निपाते च पित्तश्लेष्माधिक्ये दाहपिपास
शीतपित्तवत्त्वचिमण्डलदर्शने स्वेदे च कारवल्ली रसेन त्रिश्वतु
मधुना प्रयोगः। कृमि दोषे तन्द्रायां गलवेदनायां च मध्वार्द्र
रसेन जल सेकावगाहनमप्यत्र पित्तयुक्त त्वात् ॥ १७३-१७४-१७५॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मरिचचूर्ण, भुना सुहागा, एक
तोला ले। शुद्ध मनसिल चार तोला ले। कज्जली में अन्य द्रव्य
मिला रोहू मछली के पित्त से तीन भावना दे और दो रत्ति
प्रमाण गोली बनावे। इसे रोगी अदरक के रस से खावे। वैद्य

रोगी को पथ्य में ठण्डा जल छाछ-चावल और बैंगन की भाजी दे। तीन दिन में श्लेष्मपित्तज अति उष्ण ज्वर के वेग को यह रस कम करता है ॥१७३–१७५॥

कस्तूरीभैरवो रसः —

हिङ्गुलञ्च विषं टङ्कं जातीकोषफले तथा।
मरिचं पिप्पली चैव कस्तूरी च समांशिका।
रक्तिद्वयं ततः खादेत् सन्निपाते सुदारुणे ॥ १७६ ॥

कस्तूरीभैरवे–उग्रनवज्वरे वातश्लेष्माधिके श्लेष्मकोपे घर्म निन्द्राधिक्य पार्श्ववेदना कास कम्पन सन्धिवेदनादीनां प्राबल्ये प्रसिद्धोऽयम्। सविष निर्विष भेदेनाप्यस्य प्रचारोऽस्ति। तत्रोग्रज्वरे वेगवत्यां च नाड्यां प्रलापे विषयुतः प्रयुज्यते।

स्वल्पज्वरे नाड़ी क्षीणतायां हस्तपदादिषु शीतलेषु तन्द्रायां च निर्विषः अनुपानं च पर्णरस,कर्पूर जलार्द्रक रस,मध्वादीनामन्यतमम् प्रलापे मधुयुत घृष्ट रूद्राक्ष जलेनदेयः। प्रत्यहं त्रिरस्य प्रयोगः॥१७६॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, भुना सुहागा, जावित्रीचूर्ण, जायफल-चूर्ण, मरिचचूर्ण, पिप्पलीचूर्ण, कस्तूरी समभाग लेकर जलसे खरल कर दो रत्ति प्रमाण गोली बनावें। इसे दारुण सन्निपात में दें ॥१७६॥

बृहत् कस्तूरीभैरवो रसः—

मृतं वङ्गं खर्परञ्च कस्तूरी स्वर्णतारके।
एतेषां समभागेन कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ १७७ ॥

मृतं कान्तं पलं देयं हेमसारं द्विकार्षिकम् ।
रसभस्म लवङ्गञ्च जातिकाफलमेव च ॥ १७८ ॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ।
द्रोणपुष्परसैर्वाऽपि नागवल्ल्या रसेन च ॥ १७९ ॥
दत्त्वा द्विचन्द्रत्रिकटू यत्नतो वटिकां चरेत् ।
वातात्मके सन्निपाते महाश्लेष्मगदेषु च ॥ १८० ॥
त्रिदोषजनिते घोरे सन्निपाते सुदारुणे ।
नष्टगर्भे नष्टशुक्रे प्रमेहे विषमज्वरे ॥ १८१ ॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे महाशोथे महागदे ।
स्त्रीणां शतं गच्छतश्च न च शुक्रक्षयो भवेत् ।
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।१८२

वृ- कस्तूरीभैरवे-खपरमत्रास्य सत्वं यशदो देयः। तारकं=रौप्यं कर्षमेकं=कोलद्वयम्, हेमसारं स्वर्णमाक्षिकम्,धत्तूर घनसार-मिति र. यो. सा. पाठः। नागवल्ली=पान इति,द्विचन्द्र त्रिकटू चन्द्रस्यक=पूरस्य भागद्वयम् । सितस्य त्रिकटोश्च भाग द्वयम्। नाति प्रचारोऽयम् ॥ १७७-१८२ ॥

बङ्गभस्म एक कर्ष, खपरिया भस्म एक कर्ष, कस्तूरी एक कर्ष, स्वर्णभस्म एक कर्ष, चांदीभस्म एक कर्ष, कान्तभस्म एक पल, स्वर्णमाक्षिकभस्म दो कर्ष, रससिन्दूर दो कर्ष, लवंगचूर्ण दो कर्ष, जायफल का चूर्ण दो कर्ष, सब को एकत्र कर क्रमशः द्रोणपुष्पी के

रस तथा पान के रस से सात २ दिन भावना दें। पश्चात् कर्पूर, चीनक कर्पूर एक २ कर्ष, सोंठ चूर्ण एक कर्ष, मिरचचूर्ण १ कर्ष पिप्पलीचूर्ण एक कर्ष डालकर यत्नपूर्वक गोली बना लें। इसे वातिक सन्निपात में, महाश्लेष्मजरोगों में, त्रिदोषजनित घोर दारुण सन्निपात में, गर्भनाश में, शुक्रहीनता में, प्रमेह में, विषमज्वर में, कास श्वास क्षय गुल्म महाशोथ तथा महारोग में देना चाहिये। इसका सेवन करने वाला सौ स्त्री से भी भोग करे तब भी वीर्य का क्षय नहीं होता। यह रस उपर्युक्त सब रोगों को दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को ॥१७७-१८२॥

अन्यो बृहत्कस्तुरीभैरवो रसः—

मृगमदशशिसूर्या धातकी शूकशिम्बी-
कनकरजतमुक्ता विद्रुमं लौहपाठे।
क्रिमिरिपुघनविश्वा तोयतालाभ्रधात्री
रविदलरसपिष्टः कस्तूरीभैरवोऽयम् ॥ १८३ ॥
कस्तूरीभैरवः ख्यातः सर्वज्वरविनाशनः।
आर्द्रकस्य रसैः पेयो विषमज्वरनाशनः ॥ १८४ ॥
द्वन्द्वजान् भौतिकान् वाऽपि ज्वरान् कामादिसम्भवान्
अभिचारकृतांश्चैव तथा शस्त्रकृतान् पुनः।
निहन्त्याशु क्षणादेव डाकिन्यादियुतां स्तथा ॥१८५॥

अन्य बृहत्कस्तूरीभैरवे--मृगमद=कस्तूरी, शशी=कपूरम्, सूर्य-

स्ताम्रं,धातकी=धातकीपुष्पम्, शूकशिम्बी=आत्मगुप्ता,रजतं=
रौप्यम्,कनकं=सुवर्णम्,कृमिरिपु=विडङ्गम्,घनं=मुस्तकम्,तोयं=
बालकम्, तालं=हरितालम्,धात्री=आमलकी,रविदलरसपिष्ट=
अर्कपत्रस्वरसपिष्टः।भौतिकान्वातोपद्रवप्रधानान्।अभिचारडाकि
दय ज्वरे वातोपद्रवविशेषाः। अमृतकल्पोऽयंसन्निपात
सर्वास्ववस्थासु प्रचरति,शरीरस्य शीतलतायांनाड्याःस्थानत्या
ज्ञानलोपे प्रबलप्रलापे,अन्येषुचमृत्युसूचकलक्षणेषु,एवंवात
विकार, सूतिकासन्निपातरक्तपित्तादीनामुत्कटावस्थायां वातका
प्रधाने विषमज्वरे च सर्वसन्निपातानां निरामावस्थायाम्, विहाय
दुर्बलता, शिरोगौरव,कार्यानिच्छादिलक्षणानितत्तदनुपानकल्पनर
वमनेच ऊनजलेन,विषमे,मधुपिप्पल्या,कफप्रधाने पर्णपत्ररसादि
धुना च।

> विल्वचूर्णैर्जीरकाभ्यां मधुना सह पानतः।
> आमातिसारं ग्रहणीं ज्वरातिसारमेव च ॥
> अग्निदीप्तिकरः शान्तः कासरोगनिकृन्तनः।
> क्षपयेद्क्षणादेव मेहरोगं हलीमकम् ॥
> जीर्णं ज्वरं नूतनं वा द्विकालीनञ्च सन्ततम्।
> आक्षेपं भौतिकं वापि हन्ति सर्वान्विशेषतः ॥
> एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं चातुराहिकम् ॥
> पाञ्चाहिकं वा षाष्ठाहं पाक्षिकं मासिकं पुनः।
> सर्वाञ्ज्वरान्निहन्त्याशु भक्षणा दार्द्रकद्रवैः ॥

र. यो. सा. इत्यधिकः पाठः।

आन्त्रिकस्यद्वितीयसप्ताहे बलाधानार्थमप्यस्य प्रयोगः क्रियते ग्राहकगुणवत्त्वात् ॥१८३-१८५॥

कस्तूरी, कर्पूर, ताम्रभस्म, धाय के फूलों का चूर्ण, कौंच के बीजों का चूर्ण, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, मोतीभस्म, मूंगाभस्म लौहभस्म, पाठा चूर्ण, विडङ्ग चूर्ण, मोथाचूर्ण, सोंठचूर्ण, सुगन्धबाला चूर्ण, हड़ताल, अभ्रक भस्म, आंवला चूर्ण, समभाग लें। पाक के पत्तों के रस से घोट गोली बनावें। यह कस्तूरी भैरव रस सब ज्वरों को नाश करता है। इसे अदरक के रस के साथ देने से विषमज्वर नष्ट होते हैं। द्वन्द्वज, भौतिक, कामक्रोधादि से उत्पन्न ज्वर, अभिचार से उत्पन्न ज्वर, शस्त्राघात से उत्पन्न ज्वर, डाकिनी आदि से युक्त ज्वर तथा अन्य रोगों को यह नाश करता है। १८३-१८५॥

सौभाग्यवटी—

सौभाग्यामृतजीरपञ्चलवणव्योषाऽभयाचामला-
निश्चन्द्राभ्रकशुद्धगन्धकरसानेकीकृतान् भावयेत्।
निर्गुण्डीयुगभृङ्गराजकवृषाऽपामार्गपत्रोल्लसत्-
प्रत्येकस्वरसेन सिद्धगुडिका हन्ति त्रिदोषोदयम् ॥१८६॥
येषां शीतमतीव देहमखिलं स्वेदद्रवार्द्रीकृतं
निद्रा घोरतरा समस्तकरणव्यामोहमुग्धं मनः।
शूलश्वासबलासकाससहितं मूर्च्छाऽरुचि तृड्ज्वरं।
तेषां वै परिहृत्यमृत्युवदनात् प्रत्यानयेत् जीवनम्॥१८७॥

सौभाग्यवट्याम्—सौभाग्यं=टङ्कणम्, अमृतं विषम्,जीरं=श्वेतजीरकम्, पञ्च लवणानि=सामुद्र सैन्धव विड सौवर्चल रोमका, व्योषं=त्रिकटु,अभया=हरीतकी,अक्षो=बिभीतकफलत्वक्, आम आमलकी,निश्चन्द्राभ्रकं=चन्द्रिकारहितमभ्रकभस्म। सचन्द्रं वि त्यजेदित्युक्तेः। रसः=पारदः।कज्जलीत्रिवाग्यविषं च निगुण्डीर सेन मसृणतरं विमर्द्य जीरकादींश्च सूक्ष्मवस्त्रगालितान्पृथक् समभागेन गृहीत्वा प्रत्येकं त्रिः सप्त वा भावयेत्। निर्गुण्डी सिन्धुवारः [सम्हालु] शेफाली [हारशृङ्गार] च। भृङ्ग भृङ्गराजः केशराजश्चेति । द्वन्द्वमध्ये श्रूयमाण दस्य पूर्वापरसम्बन्धात्। वृषो=वासापत्राणि,सिद्धगुडिका=प्रत्यक्ष गुटिका। त्रिदोषोऽयं = सन्निपातम्। येषां वेदस्य द्रवेण=स्वेदोद आर्द्रीकृतमखिलं देहं तास्तेनैवातीव शीतं हस्तादायस्थे मनश्च समस्तकरणव्यामोहमुग्धम=समस्तानि=सर्वाणि करणा ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि चतेषांव्यामोहेन=स्वकार्य समर्थेन मुग्धं=मूढम्। शूल श्वास वलास कास सहितं प्रायो मेतत् कांत्यकोड़ (प्लूरिसी) मिश्रिते श्वसनके भवति।

रक्तिका पञ्चकं देयं तरुणस्य, शिशोः पुनः
रक्तिका, घृत मध्वाद्यैरनुपानैः सुखावहैः ॥

र. यो. सा. इत्यधिकः पाठः।

सर्वज्वरस्य निरामावस्थायां मध्यज्वरे जीर्णज्वरे, विषम सन्ततकादिषु। एवं कासे शिरोवेदनायामरुचौ वह्निमान्द्ये

गमनात्
यकृत्प्ली
अनुपान
वासकप
रसः ।
टरक्तच
भु
चूर्णं, म
चूर्णं,
मय द्र
अपामा
ह सि
सीने
ो, जि
ुग्ध इ
उन स
नया ज

गमनात्प्राङ् नेत्रदाहे तृष्णायां च प्रयोगः । यत्र च बहोः कालात् यकृत्प्लीह वृद्धि ज्वरश्च स्वल्पः प्रबलो वा तत्र चमत्करोतीयम् । अनुपानं मधुपिप्पली चूर्णम् । वज्रीपत्रस्वरसो वा ज्वरकासयो र्मधु-वासकपत्रस्वरसः ज्वरसमयेशिरोगौरवेवेदनायांमधुनिर्गुण्डीपत्रस्व-रसः । यत्रशीतदाहकम्पपूर्वकोज्वरस्तदनुवात्रतरापिपासातत्रजलघृ-ष्टरक्तचन्दनेन । कृमिजे ज्वरे चम्पकपत्रस्वरसेन ॥१८६—१८७॥

भुना सुहागा, शुद्ध विष, श्वेत जीरा चूर्ण, पांचो नमक, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, निश्चन्द्र अभ्रक भस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा सम भागले सब द्रव्यों को मिला दोनों प्रकार की निर्गुण्डी, भांगरा, बांसा अपामार्ग, इन के पत्तों का रस लेकर प्रत्येक की भावनायें दे। यह सिद्ध गुटी सन्निपात को दूर करती है । जिनका देह बहुत पसीने के आने से अति ठंडा हो गया हो, जिनको घोर निन्द्रा हो, जिनकी समस्त इन्द्रियां अपना कार्य न करें और अतएव मन मुग्ध हो, शूल श्वास कफ कास मूर्छा अरुचि प्यास तथा ज्वर हो उन सब रोगियों को मृत्यु के मुख से छीनकर यह सौभाग्यवटी नया जीवन प्रदान करती है ॥ १८६-१८७ ॥

सन्निपातहरो रसः—

पारदं गन्धकं टङ्कं सोषणं गजपिप्पली ।
व्योषं च धुस्तूरजलैः पिष्टं गुञ्जाद्वयं द्रुतम् ।
सन्निपातं निहन्त्यर्क-कषायैर्व्योषचूर्णितैः ॥ १८८ ॥

सन्निपातहरे—टङ्कं=टङ्कणम्, उषण=मरीचम्व्योषं=त्रि धुस्तूरजलै=धुस्तूरपञ्चाङ्गस्वरसैः अर्कक्षायै रर्क (आंक) मू त्वक्क्वाथेव्योषचूर्णितै=स्त्रिकटुयुतैः । हृत्सादावस्थायामयं सं निवारणाय च विशेषेण युज्यते।प्रतिश्याये प्रतिश्यायज्वरे [इन्फ्लुयेञ्जा] मध्वार्द्रकस्वरसेन योगः ॥ १८८ ॥

सन्निपातहरो रसः—

शुद्ध पारा, शुद्धगन्धक, भुना सुहागा, मरिच चूर्ण, गजपिप चूर्ण, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, सब समभाग धतूरे के रस के साथ घोट कर दो रत्ति प्रमाण गोली बना इस गोली को खा कर ऊपर से आक की जड़ का क्वाथ त्रि चूर्ण डाल कर पीवे तो शीघ्र सन्निपात दूर होता है। इस रस नाम सन्निपातहर रस है ॥।१८८॥

सन्निपातबडवानलो रसः—

रसादष्टौविषात्सप्त षट्स्याद् गन्धतालयोः ।
दन्तीबीजानि षड्भागाः पञ्चभागन्तु टङ्कणम् ॥१८
चत्वारि धूर्त्तबीजस्य व्योषस्य त्रितयो भवेत् ।
एतानि वह्निमूलस्य क्वाथेन परिमर्दयेत् ॥ १९०
आर्द्रकस्य रसेनाथ देयं गुञ्जाद्वयं हितम् ।
वडवानलसंज्ञोऽयं सन्निपातहरः परः ॥ १९१ ॥

सन्निपातवड़वानले—रसगन्धकयो विषतालयोर्धूर्तबीजा च पृथके मसृणतया मर्दनम । व्योषंमिलितं त्रितयो=भागत्रय

केषाञ्चित् व्योषस्य प्रत्येकद्रव्यस्य भागत्रयमित्यापाततः ।

वह्निमूलस्यरक्तचित्रकमूलत्वचः । यत्रसन्निपातेवह्निमांद्य सर्वशरीरवेदनाशिरसिगलेचगौरवं,स्वेदः,तन्द्रा,अतिनिद्रा उर्ध्वंसि-कास्युः,तत्रयथावस्थानुपानेनप्रत्यहं द्वि स्त्रिर्वा प्रयोगः । बालवृद्धगर्भिणीनाञ्च न युज्यते ॥ १९०-१९१ ॥

शुद्ध, पारा ८ तोले, शुद्ध विष ७ तोले, शुद्ध गन्धक ६ तोले और शुद्ध हड़ताल ६ तोला, दन्ती के शुद्ध बीज ६ तोला,भुना सुहागा ५ तोला, धतूरे के शुद्ध बीज ४ तोला, सोंठ चूर्ण १ तोला, मरिच चूर्ण १ तोला, पिप्पली चूर्ण १ तोला। कज्जली में शेष द्रव्य डालमर्दन कर चित्रकमूल का क्वाथ डाल घोटे दो रत्ती की गोली बना अदरक के रस से खावे तो यह बड़वानल रस सन्निपात को नाश करने में श्रेष्ठ है। ॥ १८९-१९१ ॥

सिंहनादरसः—

लौहपात्रगते गन्धे द्राविते तत्र निक्षिपेत् ।
शुद्धसूतं समं चाभ्रं भार्गीद्रावं तयोः समम् ॥ १९२ ॥
निर्गुण्ड्याः पल्लवोत्थञ्च तुल्यं तुल्यं प्रदापयेत् ।
पचेन्मृद्वग्निना तावत् यावत् शुष्कं द्रवद्वयम् ॥१९३ ॥
विषपादयुतः सोऽयं सिंहनादरसोत्तमः ।
गुञ्जामात्रः प्रदातव्यः सन्निपातज्वरान्तकः ।
अनुपानं पिबेद् व्याघ्री-क्वाथं पुष्करचूर्णितम् ॥१९४॥

सिंहनादरसे—द्राविते-वह्रकोकिलानांस्वह्वग्निनेत्यर्थ:तयो: सम सूताभ्रयो समानम्: । चाभ्रमत्रचालयमिति पाठान्तरे सूतगन्धकयो: समसित्यर्थोबोध्य: । भार्गीद्रावंभार्गीक्वाथमत्र व्याघ्रीतिपाठान्तरम् निगुण्डीपल्लवस्वरसोपि तुल्यभागो ग्राह्य: । पल्लवोत्थमत्र कण्टकारीजोत्थमिति पाठान्तरम् द्रवद्वयं भार्गी निगुण्डयुत्थम् । द्रवत्रयमिति पाठे भार्गी निगुण्डी कण्टकारीजोत्थद्रवोज्ञेय: । विषंपादयुत: पारदचतुर्थांशविषयुत: । गुडूचीनागरैर्युक्तमरुचौ श्वासकासयो: शीघ्र (र. यो. सा.)अधिक:पाठ: । पुष्करस्थानेकुष्ठचूर्णदानेप्यधिक गुणो भवति ॥ १९२-१९४ ॥

लोहे की कड़ाही में शुद्ध आंवलासार गन्धक एक तोला डाले जब वह पिघल जावे तो उसमें शुद्ध पारा एक तोला डाल फिर एक तोला अभ्रक भस्म डाले । भारंगी का रस दो तोला और संभालू के पत्तों का रस भी दो तोले डाले । अब इसको मन्द-मन्द आंच से पकावे । जब पकते-पकते दोनों द्रव सूख जावें तब नीचे उतार कर उसमें तीन मासे शुद्ध विष डाल कर खूब मर्दन करे-अत्यन्त महीन चूर्ण कर ले । इसे सिंहनाद रस कहते हैं । इसकी एक गोलीखाकर अनुपानमेंछोटी कटेली के क्वाथमें पोहकरमूल का चूर्ण डालकरपीयें तो सन्निपातज्वर दूर होता है । ॥ १९२--१९४॥

सन्निपातसूर्य्य:—

रसेन गन्धं द्विगुणं विमर्द्य तत्पादभागं रवितारहेम ।
भस्मीकृतं योजय मर्दयेत्तु दिनत्रयं वन्हिरसेन घर्मे ॥१९५

विषञ्च दत्त्वाऽत्र कलाप्रमाणं मत्स्यादिपित्तैः परिभावयेच्च
वल्लद्वयं चास्य ददीत वह्नि-कटुत्रयार्द्र द्रवसंप्रयुक्तम् १९६
तैलेन चाभ्यञ्जनमेव कुर्यात् स्नानंजलेनापि च शीतलेन।
यावद्भवेद् दुःसहशीतमस्य मूत्रं पुरीषञ्च शरीरकम्पः १९७

पथ्ये यदीहा परिजायतेऽस्य
मरीचखण्डं दधिभक्तकञ्च ।
स्वल्पं ददीताद्रकमस्य शाकं
दिनाष्टकं स्नानविधिञ्च कुर्यात् ॥ १९८ ॥

सन्निपातसूर्ये—रसस्यभागचतुष्टयम्,गन्धस्य-अष्टौभागाःतस्य रसस्यपादभागं=चतुर्थांशम्,रविक्षारहेम=ताम्ररजतसुवर्णानि, प्रत्येकं तोलकमानानीत्यर्थः । तत्पादभागं=तयो रसगन्धकयोर्मिलितयोरिति व्याख्यानन्तु न चेतःप्रसादाय प्रधानस्यैव रसस्य तत्पदेन परामर्शात्। वन्हि रसेन=चित्रकमूलक्वाथेन,दिनत्रयं घर्मे मर्दयेत्। अत्र=रसे कलाप्रमाणं=कलामानम्—'कलातुषोडशो भाग' इत्यमरः। रसस्य षोडशांशं=तोलकचतुर्थांशमित्यर्थः। दत्वा-मत्स्यादिपित्तैः='मत्स्यगवाश्वरुरुबर्हिजैः' । यथालाभमिलितै र्वा प्रत्येकमेकंदिनंपरिभावयेत् वल्लद्वयं=गुञ्जाचतुष्टयम् 'द्विगुञ्जो वल्ल उच्यते' । वस्तुतस्तु—रक्तिकाद्वयमस्य मात्रा योग्या सा च चित्रक त्रिकटु—आर्द्रक रसानुपानेन । ततस्तैलेन=तिल-तैलेन, अभ्यञ्जनं=शरीरमर्दनं कुर्य्यात्। तदनु शीतलेन जलेन तावत्स्नानं कुर्य्यात् यावदस्य--रोगिणो दुःसहशीतं-शोढु मनर्हं

शीतं, शीतबाधा, मूत्रं पुरीषं च=स्वतो मूत्रपुरीषवेग स्तथा शरीरकम्पश्च भवेत्। यद्यस्य पथ्ये ईहा=इच्छा भवेत्तदा,दधि भक्तं=ओदनं मरिचखण्डं=मरिचयुतं खण्डं=शर्करां वा स्वल्पं ददीत। एष: स्वल्पमार्द्रकशाकं च स्नानविधिं च--दिनान्तरं=द्वितीयदिने कुर्यात् । दिनाष्टकमितिपाठे—दोषपाकेसात्यष्टमेदिनेस्नानं कुर्यात्। नारिकेल जलानुपानमप्यत्र॥ १६५--१६८॥

शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला, दोनों की कज्जली बनाले। ताम्र भस्म पारद से चौथाई भाग (१. तो०) चांदीभस्म १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला कज्जली में मिला अच्छी प्रकार मर्दन करे। फिर इसमें चीते का रस डाल धूप में तीन दिन घोटें। पुनः पारे का सोलवां भाग ¼ तोला, आधा तोला, शुद्ध विष डाल रोहू मछली आदि के पित्तों से भावना दे। इस रस की ४ रत्ती की मात्रा लेकर चीता त्रिकुटा और अदरक के रस से दे तथा रोगी के शरीर पर तेल की मालिश कराके शीतल जल से स्नान करादे। जब उसे इतना शीत लगे कि सहा न जाय और मूत्र एवं मल के निकलने की प्रवृत्ति हो, शरीर कांपने लगे तब स्नान बन्द करादे। भूख लगने पर दही-चावल, मरिच चूर्ण और खांड मिलाकर दे। अदरक और शाक भी खाने को थोड़ा देवें। आठ दिन के बाद स्नान करावें ॥ १६५--१६८॥

अभिन्यासे—

स्वच्छन्दनायकः—

सूतगन्धकलौहानि रौप्यं संमर्दयेत् त्र्यहम्।
सूर्य्यावर्त्तश्च निर्गुण्डी तुलसी गिरिकर्णिका ॥१६९॥

अग्निमन्थार्द्रकं वह्निः विजयाऽथ जया सहा ।
काकमाची रसैरासां पञ्चपित्तैश्च भावयेत् ॥ २०० ॥
अन्धमूषागतं पश्चात् वालुकायन्त्रगं दिनम् ।
विपचेत् चूर्णितं खादेत् माषैकं चार्द्रकद्रवैः ॥२०१॥
निर्गुण्डीदशमूलानां कषायं सोषणं पिबेत् ।
अभिन्यासं निहन्त्याशु रसः स्वच्छन्दनायकः ।
छागीदुग्धेन मुद्गैर्वा पथ्यमत्र प्रयोजयेत् ॥२०२॥
मायूरमात्स्यवाराह–च्छागमाहिषमेव च ।
पञ्चपित्तमिदं देयं भावनासु च सर्वदा ॥२०३॥

स्वच्छन्दनायके--सूर्यावर्तः=सूर्यमुखी, गिरिकर्णिका=कोयल इति ख्याता, अग्निमन्थो=दशमूलान्तर्गतोऽरणिः, आर्द्रकं=शृङ्गवेरम् वह्निः=रक्तचित्रकः, विजया=भङ्गा, जया=जयन्ती, सहा=माषपर्णी, आसांरसैस्त्र्यहंभावना, पञ्चपित्तैश्चत्र्यहंपञ्चपित्ताभावेरोहितमत्स्य पित्तेन अन्धमूषागतं(अ. १. ८६-८८)व्याख्याता । दिन=मेकदिनं, बालुकायन्त्रेपचेत्, स्वाङ्गशीतं चूर्णितमार्द्रकरसेन, एक-माषकमात्रयाचतुरक्तिकमरीचचूर्णयुतनिर्गुण्डीदशमूलक्वाथेनसेवेत आधुनिकानान्तुमा.२.र. अभिन्यास=अभिन्यासाख्यं सान्निपातम् । पथ्यं=छागीदुग्धं मुद्गयूषो वाएतदन्तरं मायूरमात्स्येत्यादिश्लोकः प्रक्षिप्तः प्रतिभाति ॥ १९९ - २०३ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, चांदीभस्म, सम भाग लेवें। इसे सूरजमुखी, संभालू तुलसी, अपराजिता, अग्नि मन्थ, अदरक, चीता, भांग, जयन्ती, मुद्रपर्णी, मकोय; इनके रसों से पृथक् मर्दन करें। पश्चात् पांचों पित्तों से भावनायें देकर अन्धमूषा में रख बालुकायंत्र में दिन भर पकावें। स्वांगशीतल होने पर उसे निकाल कर चूर्ण करें। ? माषा इस चूर्ण को ले अदरक के रस से खावे, ऊपर से संभालू और दसमूल का काढ़ा काली मिरचों का चूर्ण डालकर पी ले। यह स्वच्छन्दनायक रस अभिन्यास ज्वर को शीघ्र दूर करता है। पथ्य में बकरी का दूध वा मूंग का रस देवें॥ १९९--२०२॥

पित्तों से भावनायें देने में सदा "मोर, मछली, शूकर, बकरा और भैंसा" इनके पित लेने चाहियें। यह पञ्चपित्त कहाते हैं॥ २०३॥

सन्निपातान्तको रसः—

शुद्धसूतः समो गन्धः दरदः शुद्धखर्परम्।
रसस्य द्विगुणौ देयौ मृतताम्राम्लवेतसौ ॥२०४॥
(जम्बीरोत्थैर्द्रवैर्मर्द्य भूधरे पाचयेल्लघु।
हिङ्गु त्रिकटुकर्पूरं पञ्चैतानि समं समम्।
पूर्वस्यैतत्समं चूर्णमार्द्रकस्य द्रवैः सह।
महाराष्ट्री च निर्गुण्डी जयन्ती पिप्पलीद्वयम् ॥)
भृङ्गराजो द्रवैरेषां प्रत्यहं भावयेत् पृथक्।

दातव्यं तच्चतुर्गुञ्जमार्द्रकस्य रसैः सह ।
सन्निपातं निहन्त्याशु सन्निपातान्तको रसः ॥२०५॥

सन्निपातान्तके—दरदो=हिङ्गुलुः,खर्परं=रसकममृतताम्राऽम्ल-वेतसयोः पृथक् पृथक् भागद्वयम्, भृङ्गराजद्रवैः प्रत्यहं पृथक् सप्तभावना।भाव्यमत्रसप्तइतिपाठकल्पनेऽर्थसामञ्जस्यं भवति। अन्यथा भाव्यं भावना इति पदद्वयार्थसमन्वयो न स्यात मात्रा च चतुर्गुञ्जैव न ततो न्यूना भृङ्गराजरसेन औषधिप्रमाण वर्धनात् ॥ २०४—२०५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध खर्पर। एक-एक तोला लें। ताम्रभस्म दो तोला, अम्लवेत दो तोला लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर जम्बीर के इस रस से मर्दन करें। शुष्क हो जाने पर भूधर यन्त्र में लघुपुट से पकावें। पश्चात् निकाल कर पीस लें और उसमें उसके समान विशुद्ध हींग, कालीमिर्च और कर्पूर इन पांच द्रव्यों का मिलित चूर्ण मिलायें। ये पांचों द्रव्य भी परस्पर समान ही होने चाहियें। इसे अदरक के रस की एक दिन भावना दे। पश्चात् जलपिप्पली, सम्भालू, जयन्ती, पिप्पली, गजपिप्पली, भांगरा; इनके। यथालाभ रस वा क्वाथ से पृथक् एक एक दिन भावना दे। इस रस की चार रत्ति की मात्रा अदरक के रस से सन्निपात को हटाती है यह सन्निपातान्तक रस है।

विषमजीर्णज्वरे—

विषमज्वरलक्षणम्—

यः स्यादनियतात् कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च ।
वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः ॥२०६॥

प्रसङ्गाद्विषमज्वरलक्षणमाह—यःस्यादिति—चात् —कम्पशमि-पूर्वको निवृत्तोऽपिपुनरावर्त्तनशीलोविशेषगन्धयुतप्रवाहिकातिसारकामलापाण्डुपीतमूत्रसक्न्नेत्रकासप्रतिश्याययुतो जीर्णे च यकृत्प्लीहवृद्धियुतइतिज्ञेयम्।पाण्डुनेत्रताचाऽल्पबहुला नियता ॥२०६॥

जो ज्वर नियत समय पर न चढ़े, कभी पहले और कभी पीछे हो, शीत या गरमी लेकर चढ़े। तथा जिसका वेग भी विषम हो—कभी अधिक ताप हो कभी कम हो, उस को विषमज्वर कहते हैं ॥ २०६ ॥

अथ जीर्णज्वरलक्षणम्—

त्रिसप्ताहव्यतीतस्तु ज्वरो यस्तनुतां गतः।
प्लीहाग्निसादं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥२०७॥

जीर्णज्वरस्यप्रसङ्गाल्लक्षणमाह-त्रिसप्ताहेति--त्रयाणां सप्ताहानांसमाहारस्त्रिसप्ताहमेकविंशतिदिनानीत्यर्थस्तस्मिन्व्यतीतेऽतिक्रान्ते तनुताङ्गतो=मन्दवेगः,प्लीहाग्निसादं=प्लीह्नो वृद्धि मग्ने र्बुभुक्षायाःसादं=मन्दतां कुरुते, प्लीहाग्निसादमिति यकृद्वृद्धि रक्तन्यूनता = पाण्डुताऽसामर्थ्यादीना मुपलक्षणम् ॥ २०७ ॥

इक्कीस दिन तक रहने के बाद भी जो ज्वर हलका-हलका शरीर के अन्दर रहे और जिसमें प्लीहा बढ़ गई हो, अग्नि मन्द हो जाय उसे जीर्णज्वर कहते हैं ॥२०७॥

अथ ज्वराङ्कुशो रसः—

रसस्य द्विगुणं गन्धं गन्धतुल्यञ्च टङ्कणम्।
रसतुल्यं विषं योज्यं मरिचं पञ्चधा विषात् ॥२०८॥

दन्तीबीजं कट्फलञ्च प्रत्येकं मरिचोन्मितम् ।
ज्वराङ्कुशो रसो नाम मर्दयेद् याममात्रकम् ।
(माषैकेण निहन्त्याशु ज्वरं जीर्णं त्रिदोषजम्)॥२०६॥

ज्वराङ्कुशे —टङ्कणस्य भागद्वयम्, विषस्यैको भागः, दन्तीबीज कट्फलयोः प्रत्येकं भागपञ्चकं यामं जलेन मर्दयित्वा प्रयोज्यः। मरिचोन्मितमत्र शुक्तिसम्मितमितिपाठान्तरम्। शुक्तिः=कर्षद्वयम्। मासैकेन निहन्त्याशुज्वरं जीर्णं त्रिदोषजमितिप्रक्षिप्तःपाठः। रसेन्द्रचिन्तामणौ—

एकाहिकं द्व्याहिकञ्च तथैव च तृतीयकम्
मासिकं पाक्षिकं चापि दिवारात्रोद्भवं तथा

शीतज्वरेषु सातत्यो हन्ति सत्यं न संशयः। इत्यधिकः पाठः। वातकफप्रधाने सामे विषमज्वरे यकृत्प्लीहवृद्धौ जीर्णज्वरे रक्तिमितोऽयं रक्तिद्वयनरसारचूर्णद्वितोलककाकमाचीरसेनदेयः॥२०८-२०९॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला लेकर कज्जली करे। फिर भुनासुहागा दो तोला शुद्ध विष एक तोला, मरिच चूर्ण पांच तोला, शुद्ध दन्तीबीज पांच तोला, कायफल की छाल का चूर्ण पांच तोला डालकर एक पहर तक अच्छी प्रकार पीस कर रखें। इस ज्वरांकुश रस को ६ र. खाने से जीर्ण ज्वर तथा त्रिदोषजनित ज्वर दूर होता है। मा० १-२ र०।

अथ ज्वरारिरभ्रम्—

अभ्रं ताम्रं रसं गन्धं विषञ्चैव समम्।
द्विगुणं धूर्त्तबीजञ्च व्योषं पञ्चगुणं मतम् ॥२१०॥

आर्द्रकस्य रसेनैव वटी कार्य्या द्विगुञ्जिका ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ॥ २११ ॥
अभ्रं ज्वरारिनामेदं सर्वज्वरविनाशनम् ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥२१२॥
विषमाख्यान् ज्वरान् सर्वान् धातुस्थान् विषमज्वरान् ।
प्लीहानं यकृतं गुल्ममग्रमांसं सशोथकम् ॥ २१३ ॥
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च मन्दानलमरोचकम् ।
नाशयेन्नात्र सन्देहो वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१४ ॥

ज्वरार्यभ्रे-धूर्तबीजं=धत्तूर बीजम्, व्योषं मिलितं रसापेक्षं पञ्चगुणम् मा. २.२. यथादोषं=दोषमनतिक्रम्ययथादोषं तस्यानुसारतः दोषभेदकल्पनयातत्तद्दोषहरानुपानेन सर्वज्वरविनाशनं= सर्वान् शास्त्रे अपरिसंख्यातानपि ज्वरान् विनाशयति सन्ततसततादीन् विषमाख्यान्सर्वाञ्ज्वरानिति तरुणानित्यवधार्यम् धातुस्थान् विषमज्वरान् रसरक्तादिगतानिति ज्ञेयम् । अग्रमांसमिति हृदयान्तर्गतमांसवृद्धिरूप रोग विशेषे-वै.श.सि. यकृद्वृद्धौ आमाशयद्वारोपरिस्थितमग्रपत्रंनाम (उरः फलकस्य तरुणास्थिभूयिष्ठंतृतीयंखण्डमुपरिष्टान्मध्यफलकेनसंयुक्तं तदेतद् यकृद्विवृद्धौ समुन्नताग्रं दृश्यतेप्रत्यक्षशारीरे अ.४.) (कौड़ी) उन्नतंभवतितदेवाग्रमांसमित्युच्यते। अन्ये तु-महाधमन्येकदेशे, आध्माता (अन्यूरिज्म) अग्रमांसमिव लक्ष्यते । अग्रमांसशब्देन विशेषतपजिह्विकावृद्धिंलालामूलग्रन्थिशोथंचजानीयादिति व्याख्यानन्तु आपाततः ।

कामशोकभयज्वरे वातलक्षणानां शमनाय तथा सर्वाङ्गशरीर-वेदनाहरणाय च मनोऽभ्याघातजन्यदोषप्रशमनाय, एवं गलनलिका-शोथजन्यरोगेषु विशेषतः प्रयुज्यते यकृत्प्लीहवृद्धौ पिप्पलीमधुना, श्वासज्वरे शिरःशूलकासादावार्द्रकरसेन ॥ २१०--२१४ ॥

अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्धविष; एक-एक तोला लें। शुद्ध धतूरे के बीज दो तोला, सोंठचूर्ण, मिर्च चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, तीनों मिला कर पांच तोला। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला अदरक के रस से घोट दो रत्ति की गोली बना लें। दोषानुसार भिन्न-भिन्न अनुपानों से देने से यह ज्वरारि-अभ्र, सब ज्वरों को अच्छा करता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, विषमज्वर, धातुगत, विषमज्वर, तिल्ली, यकृत, गुल्म, अग्रमांस, शोथ, हिचकी, श्वास, कास, मन्दाग्नि, अरुचि; इन सब रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे बिजली वृक्षों पर गिरकर उनका समूल नाश कर देती है ॥२१०--२१४॥

अथ ज्वराशनि रसः—

रसं गन्धं सैन्धवञ्च विषं ताम्रं समांशिकम् ।
सर्वचूर्णसमं लौहं तत्समं शुद्धमभ्रकम् ॥२१५॥
लौहे च लौहदण्डेन निर्गुण्डी-स्वरसेन च ।
मर्दयेत् यत्नतः पश्चात् मरिचं सूततुल्यकम् ॥२१६॥

नागवल्ल्या दलेनैव दातव्यो रक्तिसम्मितः।
सर्वज्वरहरः श्रेष्ठो ज्वरान् हन्ति सुदारुणान् ॥२१
कासं श्वासं महाघोरं विषमाख्यं ज्वरं वमिम्।
धातुस्थं परमं दाहं ज्वरं दोषत्रयोद्भवम् ॥२१८॥

ज्वराशनि रसे—समांशिकं=तुल्यांशं, लौहं सर्व चूर्ण स भाग पञ्चकम्, तत्समं=लौहसमं भागपञ्चकमेव, लौहदण्डे लौहमर्दकेन, निगुण्डीपञ्चाङ्गस्वरसेन मर्दयेत् पश्चात्सूत तुल्यकं मेक भागं मरिच चूर्णं दत्वा रक्तिमिता व नागवल्ली दलेन देया। सर्वज्वरहरं मिति येषां ज्वराणां लक्षण शास्त्रे स्पष्टतया नोक्तानि तेषां हरणे श्रेष्ठोऽयम्। महाघोरं=कठि धातुस्थं = रसादि गतम्। प्रत्यहं त्रिरस्यप्रयोगः। मात्रया प्रयोगे ज्वरोप्यनेन ह्रसति,रक्तवर्धकत्वादेव रोगान्त दौर्बल्यावस्थायां स दुग्धानुपानेन प्रयोज्यः। यकृत्प्लीह वृद्धौ निर्गुण्डी काकमा चुरकपत्रान्यतमरसानुपानेनवा। श्वसनके कांस्यकोडे (प्लूरि प्यस्यप्रयोगः पुनर्नवा स्वरसेन॥ २१५—२१८॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सैंधानमक, शुद्ध विष, ताम्रभस्म; (एक तोला लें। लौहभस्म पांच तोला, शुद्ध अभ्रकभस्म पांच तो लें। कज्जली में सब द्रव्य मिलाकर लोहे के खरल में लोहे मूसली से संभालू का रस डालकर खरल करें। जब सूख ज तो काली मिर्च का चूर्ण एक तोला मिला कर खरल करें अ एक रत्ति की गोली बना रखें। इसे पान के पत्ते में

कर दें तो यह सर्व ज्वरों को दूर करताहै—भयंकर ज्वरों को भी दूर करता है। खांसी, श्वास, घोर विषमज्वर, वमन, धातुगतज्वा धातुगत परम दाह तथा त्रिदोष जनित ज्वरों को नष्ट करता है॥ १२५—२१८॥

अथ अर्द्धनारीश्वरो रसः—

रसगन्धौ समौ शुद्धौ विषं ग्राह्यञ्च तत्समम्।
जैपालं तत्समं ग्राह्यं मरिचञ्च चतुर्गुणम् ॥२१९॥
त्रिफलाया रसैर्मर्द्यं भावना पञ्चधा तथा।
जम्बीराणां द्रवैर्नस्यमेकस्मिन् नासिकापुटे ॥२२०॥
शरीरार्द्धगतं घोरं ज्वरं हन्ति न संशयः।
अर्द्धनारीश्वरो नाम रसः शम्भुप्रकीर्त्तितः ॥२२१॥

अर्धनारीश्वरे—विषं तत्सममिति तयोः रसगन्धयोर्मिलितयोः समं भागद्वयमित्यर्थः। एवं जयपालमपि, मरिचं चतुर्गुणं=मिलितरसगन्धापेक्षया-अष्टभागमितियावत्,पञ्चधा=पञ्चवारम्,रक्तिका द्वयमस्य माषकुसितेन जम्बीर स्वरसेन मिश्रीकृत्य-एकस्मिन्नासा पुटे दत्तः सन् शरीरार्धगतं घोरं ज्वरमवतारयति। तदनु-- अन्यस्मिन्नासा पुटे च शेषार्धशरीरज्वरावतरणायदेयमितिकिम्वदन्ती ॥२१९-२२१॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, एक एक तोला, शुद्ध विष दो तोला, शुद्ध जमालगोटा दो तोला, मरिचचूर्ण आठ तोला ले। कज्जली में सब को मिला कर त्रिफला के रस से मर्दन करे और जम्बीरी

नीबू के रस से पांच वार भावना देकर रखे। इस रस को ए
ओर नाक के छिद्र में नस्य दे तो शरीर के उस आधे भाग व
ज्वर दूर हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। यह अर्द्ध नारीश्व
रस महादेव जी ने कहा है। ॥२१६-२२१॥

अथ चन्दनादिलौहम्—

रक्तचन्दनह्रीवेर पाठोशीरकणाशिवा—
नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन समन्वितम्।
लौहं निहन्ति विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्॥२२

चन्दनादिलौहे—ह्रीवेरं=नेत्र बालाइति, उशीरं=खस इति
कणा=पिप्पली तण्डुलानि, शिवा=हरीतकी,नागरं=शुण्ठी
उत्पलं=नीलोत्पलं नीलोफर इति, धात्री=आमलकी त्रिमदो=
विडङ्ग मुस्त चित्रकाः, सर्वसमं=द्वादश भागं लौहभस्म एक
कृत्य जलेन मसृणं मर्दयित्वा कांचपात्रे स्थापयेत्। विविधानिर्दिष्ट
प्रकारान् समस्तान् सतत सन्ततादीन् विषमज्वरान् हन्ति। तथाहि
पित्त प्रधान जीर्ण ज्वरे यत्र तृष्णा हस्तपद नेत्र दाहः प्रमेहश्च, एवं
रक्तपित्तज्वरे सायं साधारणो ज्वरः। तापमानेन (९९°—१००°)
यत्र वा पात्तिक ज्वरः, शरीरे पाण्डुता सूत्रं हरितं रक्तं वा स्वल्पा
च यकृत्प्लीहवृद्धिस्तत्र यथा यथं धान्यक पर्पटक गुडूचीस्वर-
सैरस्य प्रयोग; प्रमेहे स्वर्णवङ्गेनसहास्यप्रयोगःकार्यः।
यकृत्प्लीह वृद्धौ पुटपक्वार्द्रक शेफाली स्वरसेन मधुमधुरेण।
रोगान्त दौर्बल्ये --रक्तिकामितः शुद्ध कुपीलु चूर्ण मधुमिश्रित दुग्धा-
नुपानेन। विषमज्वरेजीर्णज्वरेचायंबहुभिषगादृतःसिद्धश्च ॥२२२॥

लाल चन्दन का चूर्ण, सुगन्धवाला चूर्ण, पाठा का चूर्ण, खस का चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, हरड़ चूर्ण, सोंठ चूर्ण, नीलोत्पल का चूर्ण, आंवला चूर्ण, वायविडङ्ग का चूर्ण, नागरमोथे का चूर्ण, चीते का चूर्ण, प्रत्येक एक एक तोला, लौहभस्म बारह तोले--इन्हें मिला कर खरल करे। इसे चन्दनादिलौह कहते हैं। दोषानुसार अनुपान से अथवा शहद से देने पर यह विविध प्रकार के ज्वरों तथा समस्त विषमज्वरों को दूर करता है ॥२२२॥

अथ ज्वरारि रसः—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं विषञ्चैव कटुत्रयम् ।
नागभस्म शिला चैव प्रत्येकं कर्षमानकम् ॥२२३॥
शुद्धतालार्द्धं कर्षञ्च शुल्बमेकत्र कारयेत् ।
धुस्तूरस्य च बीजानि कार्षिकाणि प्रकल्पयेत् ॥२२४॥
रोहितमत्स्यपित्तेन अर्कक्षीरार्द्रकाम्बुना ।
मर्दयेदुदयास्तञ्च चणकाभा वटी कृता ॥२२५॥
आर्द्रकस्य रसैः कर्षैर्मधुमापसमायुतम् ।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय ज्वरारिरससंज्ञितम् ॥२२६॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव कफजं नाशयेद् ध्रुवम् ।
वातपित्तसमुद्भूतं वातश्लैष्मिकमेव च ॥२२७॥
भयादुत्पादितं चापि शोकोत्थमथापि वा ।

अभिचाराभिशापोत्थं भूतोत्थश्च ज्वरं जयेत्॥२२८

भेदः प्राप्तं सन्ततश्च रसस्थे तु ज्वरे तथा।
सन्निपातज्वरे देयो मधुव्योषसमायुतः ॥२२९॥

घर्मं पित्तं तथा कम्पं दाहं हन्ति न संशयः।
इन्द्रवज्रो यथा वृक्षं तथा ज्वरविनाशनः ॥२३०

वर्जयेत् क्षीरमांसञ्च दधितक्रसुराघृतम्।
ज्वरे मांसास्थिगे चैव रक्तस्थे तु ज्वरे नृणाम्॥२

शैत्ये दाहे तथा घर्मे प्रलापे चातुराहिके।
महावेगे ज्वरे चैव जीर्णे चापि प्रदापयेत् ॥२३२

ज्वरारिरसे--नागः = शीसकम्, शिला = मनःशिला, ताल हरितालम्, शुल्वं = ताम्रभस्म, अनयोः सूतापेक्षयापृथगर्धो भा विष ताल धत्तूर बीजानि पृथक् पृथक् मसृणं मर्दयित्वा योज्य कज्जलीं च तथा। मत्स्यपित्तार्कक्षीरार्द्रकस्वरसेन, प्रत्येक दिनं भावना। प्रत्यहं तिस्रो वटिका देयाः, सति प्रयोजने वपिवटिकाद्वयं देयम्। अभिचाराभिशापादयो वातप्रधानाः, वातहरानुपानैः प्रयोज्यः। वर्जयेदिति-- अस्मिन् रसे प्रयोगस्तु मुक्तहस्तं क्रियते। महावेगे तापमानेन १०५°) वेग ज्वरे निर्गुण्डी पत्र क्वाथेन दुग्धमधुयुतेन रक्तिका चतु मात्रया-अर्धघटिकानन्तरं प्रदेयः॥ २२३--२३२॥

शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक एक कर्ष, शुद्ध विष एक

सोंठ चूर्ण एक कर्ष, मरिच चूर्ण एक कर्ष, पिप्पली चूर्ण एक कर्ष, नाग भस्म एक कर्ष, शुद्ध मनसिल एक कर्ष, शुद्ध हड़ताल आधा कर्ष, ताम्रभस्म आधा कर्ष, शुद्ध धतूरे के बीज एक कर्ष ले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर रोहित मछली के ताजे पित्त से, आकके दूधसे और अदरकके रससे पृथक सूर्योदय से सूर्यास्त तक मर्दन करे और चने के समान गोली बनाले। इसे रोगी प्रातः-काल अदरक के एक कर्ष रस और एक माशा शहद से खावे। इसका नाम ज्वरारि रस है। यह वातिक, पैत्तिक, कफज, वातपि-त्तज, वातश्लेष्मज, भयज; शोकज, अभिचारज, अभिशापज, भूतज, मेदोगत, सन्तत, और रसगत इन ज्वरों को नष्ट करता है। रसधातुगत तथा सन्निपात ज्वर में त्रिकुटाचूर्ण और शहद मिलाकर दे। विशेष करकेइन ज्वरों में जो पसीना आता है उसको कम करता है। पित्त को कम करता है। कम्प और दाहकोनाश करता है। जैसे विजली गिर कर वृक्षों का नाश कर देती है वैसे ही यह ज्वर का नाश करता है। इसके सेवन के समय दूध, मांस, दही, तक्र, मद्य, घी, इन्हें छोड़ देना चाहिए। इस रस को मांस गत और अस्थिगत ज्वर में, रक्तगत ज्वर में, शीत दाह, अति पसीना, प्रलाप इन लक्षणों के होने पर, वात तेज चातुर्थकज्वर एवं जीर्ण ज्वर में भी देना चाहिए भा. प्र. ॥२२३-२३२॥

अथ सर्वज्वरहरलोहम्--

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडङ्गं मुस्तकं तथा।

श्रेयसी पिप्पलीमूलमुशीरं देवदारु च ॥२३३॥
किराततिक्तकं पाठा कटुकी कण्टकारिका ।
शोभाञ्जनस्य बीजानि मधुकं वत्सकं समम् ॥२३४॥
लौहतुल्यं गृहीत्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
सर्वज्वरहरं लौहं सर्वरोगहरं तथा ॥ २३५ ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
द्वन्दजं विषमाख्यञ्च धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत् ॥२३६॥
शीतं कम्पं तृषां दाहं घर्मस्रुतिवमिभ्रमीन् ।
रक्तपित्तमतीसारं मन्दाग्निं कासमेव च ॥२३७॥
प्लीहानं यकृतं गुल्मं सामवातं सुदारुणम् ।
अर्शांसि घोरमुदरं मूर्च्छां पाण्डुं हलीमकम् ॥२३८॥
अजीर्णं ग्रहणीञ्चैव यक्ष्माणं शोथमेव च ।
बल्यं वृष्यं पुष्टिकरं सर्वरोगनिसूदनम् ।
सर्वज्वरहरं लौहं चन्द्रनाथेन भाषितम् ॥ २३९ ॥

सर्वज्वरहरलौहे—श्रेयसी = गजपिप्पली । उशीरं = वीरणम्, देवदारु = अस्यसारोग्राह्यः, किराततिक्तकं = चिरायताइति शोभाञ्जनस्य = शिग्रोः । मधुकम् = मधुयष्टि, वत्सकं = कुटजत्वक्बीजं वा । सर्वं चूर्णं समं लौह भस्म जलेन मसृणं नवलौहपात्रे लौह दण्डेन मर्दयेत् । चाद्विपमज्वरम् । क्रमः चक्रारूढ़स्येव, मा.२.र.।

पुराण ज्वरे यकृत्प्लीह वृद्धौ मधुयुत निर्गुण्डी शृंगवेररसानुपानेन प्रत्यहत्रिःप्रयोज्यः । पित्तप्रधानरोगेषु प्रायेणास्य व्यवहारः, रक्तपित्ते वासारसेनप्रमेहे पाण्डौ च गुडूचीपिप्पलीकाथेन, उदरामये कृष्णाजीरकचूर्णमधुना, शोथे पुनर्नवा रसेन, साधारण ज्वरे-पर्पट क रसेन प्रत्यहं त्रिः प्रयोगः ॥२३३--२३९॥

चीते का चूर्ण, हरड़काचूर्ण, बहेड़ाचूर्ण, आंवलाचूर्ण, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, वायविडंगकाचूर्ण, नागरमोथाचूर्ण, गजपीपलका चूर्ण, पिप्पलीमूलचूर्ण, खसचूर्ण, देवदारु चूर्ण, चिरायता चूर्ण, पाठा चूर्ण, कुटकी चूर्ण, कण्टकारी चूर्ण, सहिजन के बीजों का चूर्ण, मुलहठी का चूर्ण, कुटज की छाल का चूर्ण, एक-एक तोला लें। लौहभस्म सब के समान अर्थात् बीस तोला लें। सब को मिलाकर जल से खरल कर एक रत्ती की गोली बनालें। यह सर्वज्वरहरलौह सब रोगों में लाभ करता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, द्वन्दज, विषम तथा सप्तधातुगत ज्वरों को दूर करता है। शीत, कम्प, प्यास, दाह, पसीने आने, वमन, सिर में चक्कर आने, रक्तपित्त, अतीसार, मन्दाग्नि, खांसी, तिल्ली का बढ़ना, जिगर का बढ़ना, गुल्म, घोर आमवात, बवासीर, घोर उदररोग, मूर्छा, पाण्डु, हलीमक, अजीर्ण, ग्रहणी, राजयक्ष्मा, शोथ, इनको दूर करता है। बल देता है। वृष्य है, पुष्टि कर है अर्थात् शरीर को मोटा करता है तथा सब रोगों का नाश करता है। यह सर्वज्वरहरलौह चन्द्रनाथ ने कहा है। ॥ २३३---२३९ ॥

अथ बृहत्सर्वज्वरहरलौहम्—

पारदं गन्धकञ्चैव ताम्रमभ्रञ्च माक्षिकम् ।
हिरण्यं तारतालञ्च कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥२४०॥

कान्तलौहं पलं देयं सर्वमेकीकृतं शुभम् ।
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥२४१॥
कारवेल्लरसैर्वापि दशमूलरसेन च ।
पर्पट्याश्च कषायेण त्रिफलाक्काथकेन वा ॥ २४२ ॥
गुडूच्याः स्वरसेनैव नागवल्लीरसेन च ।
काकमाचीरसेनैव निगुण्ड्याः स्वरसैस्तथा ॥२४३
पुनर्नवार्द्रकाम्भोभिर्भावना परिकीर्त्तिता ।
रक्तिकादिक्रमेणैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ २४४ ॥
पिप्पलीगुडसंयुक्ता वटिका ज्वरनाशिनी ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति जीर्णज्वरहरं तथा ॥ २४५ ॥
वारिदोषाद्भवञ्चैव नानादोषाद्भवं तथा ।
सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥२४६
क्षयोद्भवञ्च धातुस्थं कामशोकभवं तथा ।
भूतावेशभवञ्चैव त्रिदोषजनितं तथा ॥२४७॥
अभिघातज्वरञ्चैव तथाऽभिचारसम्भवम् ।
अभिन्यासं महाघोरं विषमं त्र्याहिकं तथा ॥२४८॥
शीतपूर्वं दाहपूर्वं त्रिदोषं विषमज्वरम् ।
प्रलेपकज्वरं घोरमर्द्धनारीश्वरं तथा ॥२४९॥

प्लीहज्वरं तथा कासं चातुर्थकविपर्ययम् ।
पाण्डुरोगं कामलाञ्च अग्निमान्द्यं महागदम् ।
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु पथ्याधेन न संशयः ॥२५०॥
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्विडसंयुतम् ।
ककारपूर्वकं सर्वं वर्जनीयं विशेषतः ॥२५१॥
मैथुनं वर्जयेत् तावद् यावन्न बलवान् भवेत् ।
सर्वज्वरहरं लौहं दुर्लभं परिकीर्त्तितम् ॥२५२॥

बृहत्सर्वज्वरहरलौहे-हिरण्यं=सुवर्णम्, तारं=रजतम्, कान्त[1] लौहं--तल्लक्षणं---रस कामधेनौ लोह पद्धतेरुद्ध तपाठे-

येन पर्वत सारेण भिद्यन्ते शुष्क काष्ठवत्
अन्यानि गिरिसाराणि तल्लोहं कान्तमुच्यते ॥ ६६६ ॥
शुद्ध तारसमं कान्तं तारेणावर्त्तितं मिलेत्
किञ्च तत्र जले क्षिप्तस्तैलबिन्दुर्न सर्पति ॥ ७०० ॥
अहोरात्रस्थितो निम्बकल्कोऽत्र मधुरो भवेत्
तदम्बुसिक्ताश्चणका गौरा गच्छन्ति कृष्णताम् ॥ ७०१ ॥
क्वाथ्यमानं पयश्छागं नैवाधः परिसर्पति
हिङ्गुनो गन्धविभ्रंशो मर्दितस्य प्रजायते ॥ ७०२ ॥

कारवेल्लरसैः=बृहत्कारवेल्ल पत्र रसैः फलरसैर्वा, दशमूल रसेन मिलितदशमूलक्वाथेन सप्तभावना। पर्पटी=क्षेत्रपर्पटी, नागवल्ली= पर्ण पत्रम्, काकमाची=मकोय इति । एवं मिलिताः

---

१. खनिजपरीक्षा प्र[illegible] श्लो० ६५४-[illegible]

सप्ततिभावना भवन्ति। रक्तिकादिक्रमेण बालादिवयोबलं समीक्ष्य मा. १–२र. । 'स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः' इत्यभिहितोक्तेः पिप्पली गुड़ संयुक्ता=पिप्पली माषकमिता पुराण गुड़स्य-अर्धतोलकम्, नानादोषोद्भवं—कालज्वर (कालाअजार) पङ्गु ज्वर (डेंग्यू फीवर) प्रतिश्याय-ज्वरा (इन्फ्लूयेञ्जा) दिकं । धातुस्थं रसादिधातुस्थम्, भूतावेश भवं=भूतानां जन्तूनामदृश्यानामिति भावः जन्तौदमादौ च भूतानि (अ) अन्ये तु मृतप्राणिनांभूतप्रेतरूपाणांप्रवेशेनज्वरोभवतीत्याहुः। त्रिदोष जनितं=कर्कोटक- (श्वसनक) आन्त्रिकादिप्रकारम, अभिघातो=दण्डशस्त्रादीनाम्, अभिचारसंभवं= "श्येनेनाभिचरन् यजेत्" इत्युक्तः, हिंसा कर्मादिजनितम्, अभिन्यासमिति सन्निपातज्वरस्यैव मस्तिष्ककलाविकृति विशेषावस्था, महाघोरमित्यभिन्यास विशेषणम्, प्रलेपक ज्वरः क्षयज्वरः, वेरि वेरि इति ख्यात इति केचित्। अर्धनारीश्वर मर्धशरीरगतज्वरम्। अस्मिन् रसे पथ्य माह—शाल्यन्नमिति-विडः=विड् लवणम्, ककारपूर्वकं कालिङ्ग कारवेल्लादिकम् । मैथुनं=अष्टाङ्गमैथुनम। वात पित्त प्रधाने ज्वरे—उष्ण देशज विषमज्वरस्य निरामावस्थायां, पुनरावर्तक ज्वरे शरीरकार्श्ये प्रबल वात कासेन सहाल्पज्वरे, एवं पाण्डु कामलायां चायं विशेषतः प्रयुज्यते। अनुपानं यकृति—मधुपिप्पली, उदरामये—कृष्ण जीरक चूर्णं मधु च॥ २४०—५० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक-भस्म, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, शुद्ध हड़ताल, एक-एक कर्ष लें। कान्तलौहभस्म एक पल लें। कज्जली में सब द्रव्य मिलाकर आगे

लिखी १-१ औषध से सात दिन तक भावना दें। करेले का रस, दशमूल का क्वाथ; पित्तपापड़े का क्वाथ, त्रिफला का क्वाथ, गिलोय का स्वरस, पान का रस, मकोय का रस, संभालू का रस, पुनर्नवा का रस, अदरक का रस। पश्चात् रोगी के बलाबल आदि के अनुसार एक-एक वा दो-दो रत्ती की गोली बना लें। इस गोली में पिप्पली और गुड़ मिला कर खावे तो ज्वर नाश करती है। वातिक आदि भेद से आठों प्रकार का ज्वर, जीर्णज्वर जलदोष से हुआ ज्वर, नाना दोषों से हुआ ज्वर, सतत सन्तत आदि विषमज्वर--चाहे वे साध्य हों वा असाध्य, क्षयज्वर, धातुगत ज्वर, काम शोक वा भूतावेश से उत्पन्न ज्वर, त्रिदोषज ज्वर, अभिघातज तथा अभिचारज ज्वर, महाघोर अभिन्यास ज्वर, विषम ज्वर, तृतीयक, शीतपूर्व ज्वर, दाहपूर्व ज्वर, त्रिदोषज विषम ज्वर, प्रलेपक ज्वर, अर्धनारीश्वर ज्वर, प्लीहज्वर, खांसी चातुर्थकविपर्यय ज्वर, पाण्डु रोग, कामला, अग्निमान्द्य तथा अर्श, इनको एक सप्ताह में निश्चित नाश करता हैं। खाने को पथ्य शालि चावल और छाछ, विडनमक मिलाकर देने चाहिये। ककार पूर्ववाले ककड़ी करेला आदि आठ द्रव्य न खावें। रोगी आराम होने के पश्चात तब तक मैथुन न करे जब तक बलवान न हो जाये। यह सर्वज्वरहरलौह परम दुर्लभ योग हैं ॥२४०-२५२॥

अथ महाराजवटी—

रसगन्धकमभ्रञ्च प्रत्येकं कर्षसम्मितम्।
वृद्धदारकवङ्गञ्च लौहं कर्षार्द्धकं क्षिपेत् ॥२५३॥

स्वर्णं ताम्रञ्च कर्पूरं प्रत्येकं कर्षपादिकम् ।
शक्राशनं वरी चैव श्वेतसर्जलवङ्गकम् ॥२५४॥
कोकिलाक्षं विदारी च मुषली शूकशिम्बिकम् ।
जातीफलं तथा कोषं बला नागबला तथा ॥२५५॥
माषद्वयमितं भागं तालमूल्या रसेन च ।
पिष्ट्वा च वटिका कार्या चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः ॥२५६॥
मधुना भक्षयेत्प्रातर्विषमज्वरशान्तये ।
धातुस्थांश्च ज्वरान् सर्वान् हन्यादेव न संशयः ॥२५७॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ।
ज्वरं नानाविधं हन्ति कासं श्वासं क्षयं तथा ॥ २५८
बलपुष्टिकरी नित्यं कामिनीं रमयेत् सदा ।
न च शुक्रं क्षयं याति न बलं ह्रासतां व्रजेत् ॥ २५९
ऊर्ध्वगं श्लेष्मजं हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्रमेहं रक्तपित्तकम् ।
महाराजवटी ख्याता राजयोग्या च सर्वदा ॥ २६०

महाराज वट्याम्—वृद्धदारकं=विधारा इति, कर्षपादिकं=कर्ष चतुर्थांशम्, शक्राशनं=विजया-वरी=शतावरी, श्वेतसर्जो=राल इति, कोकिलाक्षं=तालमखानाइतितस्यबीजम्, विदारी=क्षीर विदारी, मुषली=तालमूली,शूकशिम्बिक=मात्मगुप्ताबीजम्

महाबला=गुलशकरी तिलोके, ताल मूली=मूषली तस्या रसेन काथेन वा, धातुस्थान=रसादिधातुस्थान्, नानाविधं=ज्ञाताऽज्ञातकारणम्। ऊर्ध्वगश्लेष्मजं=ऊर्ध्वगंच तत् श्लेष्मज मिति तत्--श्वसनकादिफुस्फुसगतंप्रतिश्यायज्वरादि जनितं मस्तिष्कगञ्चेति सन्निपातम्॥ २५३---२६०॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, एक-एक कर्ष विधारे के शुद्ध बीज आधा कर्ष, बङ्गभस्म आधाकर्ष, लोहभस्म आधा कर्ष, स्वर्णभस्म, ताम्रभस्म, कपूर, प्रत्येक चौथाई कर्ष, भांग के बीज, शतावर का चूर्ण, श्वेत राल, लोंग का चूर्ण, तालमखाना, विदारीकन्द का चूर्ण, मूसली का चूर्ण, कौंच के बीज का चूर्ण, जायफल का चूर्ण, जावित्री का चूर्ण, बला का चूर्ण, नागबला चूर्ण, इन में से प्रत्येक द्रव्य दो-दो माशे लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर मूसली के रस से घोट चार रत्ती की गोली बनावें। इसे शहद से मिलाकर प्रातःकाल खावे तो विषमज्वर नाश होता है। यह धातुस्थ ज्वरों को निश्चयसे नष्ट करती है। नाना प्रकार के वात पित्त, कफ और सन्निपात के ज्वर खांसी श्वास तथा क्षय को हटाता है। बल-पुष्टिकारक है। नित्य स्त्री को भोगने की सामर्थ देती है, न तो शुक्रक्षय होता है, न बल कम होता है। ऊर्ध्वग श्लेष्मज रोग तथा सन्निपात को दूर करती हैं। कामला, पाण्डु, प्रमेह, रक्तपित्त, इन सब रोगों को दूर करती हैं। यह राजाओं के योग्य है। इसका नाम महाराजवटी है॥२५३-२६०॥

अथ अपरचिन्तामणिरसः—

हाटकं रजतं तालं मुक्ता गन्धकपारदौ ।
त्रिकटु कुनटी चैव कस्तूरी च पृथक् समम् ॥ २६१
जलेन वटिका कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानतः ।
चिन्तामणिरसो ह्येष ज्वराष्टानां निकृन्तनः ॥ २६२

चिन्तामणिरसे—हाटकं=सुवर्णम,कुनटी=मनःशिला, द्विगुञ्जाफलमानतः=द्विरक्ति मात्रया, सन्निपात ज्वरस्य निरामावस्थायां विषमे च। दौर्बल्य--गात्रवेदनाकासादिषु—एवं वृद्धानां मृदुज्वरे कार्श्ये क्षये जीर्ण ज्वरे च पिप्पली चूर्ण मधुना ॥ २६१-२६२॥

स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, शुद्ध हड़ताल, मोतीभस्म, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध मनःशिला, कस्तूरी, समभाग ले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर जल से खरलकर दो रत्ती की गोली बनाये। यह चिन्तामणिरस आठों ज्वरों का नाश करता है ॥ २६१-२६२ ॥

अथ त्रैलोक्य-चिन्तामणिरसः—

भागद्वयं स्वर्णभस्म द्विभागं तारमभ्रकम् ।
लौहात् पञ्च प्रवालञ्च मौक्तिकं त्रयसम्मितम् ॥२६३॥
भस्मसूतं सप्तकञ्च सर्वं मद्यं न्तुक न्यया ।
छायाशुष्का वटी कार्य्या छागीदुग्धानुपानतः ॥२६४॥
क्षयं हन्ति तथा कासं गुल्मञ्चापि प्रमेहनुत् ।
जीर्णज्वरहरश्चायं उन्मादस्य निकृन्तनः ।
सर्वरोगहरश्चापि वारिदोषनिवारणः ॥२६५॥

त्रैलोक्यचिन्तामणौ—तारं=रजतम्, त्रय सम्मितं=त्रि भागम्, भस्मसूतं=रससिन्दूरम्। क्षये मधुनवनीतेन; कासेविभीतकत्वचा वासाक्वाथेन वा प्रमेहे मधुमेहे च मधूदुम्बरफलचूर्णेन; जीर्णज्वरे यकृत्प्लीह वृद्धौ अनिद्रा शिरः शूलादिषु स्वल्प पञ्चमूल कृतक्षीर पाकेन कोष्ठबद्धतायां दशमूलषट् पलघृतेन; उन्मादे—मधुत्रिफला-जलेन वातोन्मादे—सर्पगन्धाचूर्णेन माषकमितेन प्रत्यहं द्विः। अपतन्त्रके (हिस्टीरिया) धारोष्णदुग्धेन, पक्षाघाते दशमूलमाष-बलान्यतरक्वाथेन, भ्रमे ब्राह्मीरसेन अम्लपित्तजाध्मानभ्रमानिद्रा-हस्तपाद दाहातिसारेषु च ददते, बलपुष्टिकरोऽयम्। मनःकम्पे शाल पर्णीक्षीरेण, शंखपुष्पीचूर्णेन वा। सद्यः प्रसवकरणार्थमप्यस्य प्रयोगो भवति दुग्धेन। येच रोगशोकाद्यपहृता पठन व्याख्यान खिन्ना वा तेषां च्यवनप्राश—धारोष्णदुग्धेन। किं बहुना सर्व-रोगहरः सिद्धफलीचायम्। वारिदोषनिवारणः—यत्र विषमज्वर औषधान्तरे निंवृत्तोऽपि पुनरावर्त्तते तत्र गुडूचीपिप्पलीक्वाथेनानेन वारिदोषजो ज्वरः प्रतिनिवर्तते। भागत्रय स्वर्णभस्मदानेन तन्त्रान्तरोक्त बृहद्वातचिन्तामणेरभिन्नोऽयम्॥ २६३—२६५॥

स्वर्णभस्म दो तोला, चांदी भस्म दो तोला, अभ्रकभस्म दो तोला, लौहभस्म पांच तोला, मूंगाभस्म और मोती भस्म तीन-तीन तोला ले। रससिन्दूर सात तोला ले, घीकुमारी के रस से खरल कर छाया में सुखा एक रत्ति की गोली बनावें। इसे बकरी के दूध के अनुपान से पीने से क्षय कास गुल्म तथा प्रमेह दूर होता है। यह जीर्णज्वर और उन्माद का नाशक है। सब रोगों को हरता

है। पानी के दोष से होने वाले ज्वर आदि रोगों को भी यह त्रैलोक्यचिन्तामणिरस दूर करता है ॥ २६३—२६५ ॥

अथ बृहच्चिन्तामणिरसः—

रसं गन्धं विषञ्चैव त्रिकटु त्रैफलं तथा ।
शिलाह्वा रौप्यकं स्वर्णं मौक्तिकं तालकं समम् ॥२६६॥
मृगकस्तूरिकायाश्च ग्राह्यं पादमाषिकं भिषक् ।
भृङ्गराजरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन वा ॥२६७॥
आर्द्रकस्य रसेनैव वटीं कुर्यात् द्विगुञ्जिकाम् ।
चिन्तामणिरसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः ॥२६८॥
सन्निपातज्वरहरः कफरोगं विनाशयेत् ।
एकजं द्वन्द्वजञ्चैव विविधं विषमज्वरम् ॥२६९॥
अग्निमान्द्यं शिरःशूलं विद्रधिं सभगन्दरम् ।
एतान्येवं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥२७०॥

बृहच्चिन्तामणौ- त्रैफलं=त्रिफला, शिलाह्वा=मनः शिला, रौप्यकं=रजतम्, रसादितालकान्ताः समभागाः। कस्तूरी रसार्धभागा वा इति साम्ये न तु विकल्पार्थः। 'व वा यथा तथैवैवं साम्ये, अ.। यथा भृङ्गराजस्य भावना, एवं तुलस्या अपि भावना इति वा शब्दार्थः। सर्वरोगकुलान्तकः=सर्वेषां रोगाणां कुलस्य शस्य वं अन्तको निवर्तकः। दीर्घकालं सेव्यमानोऽनिश्चित रोगानपि निवर्त्तयति ॥ २६६-२७० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण, प्पली चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, शुद्ध मनसिल, ांदी भस्म, सोना भस्म, मोतीभस्म, हड़ताल शुद्ध, एक-एक तोला, कस्तूरी छः माशा ले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर ंगरे के रस से तथा तुलसी के स्वरस से घोटे। पश्चात् अदरक रस से मर्दन कर दो रत्ती की गोली बनावे। यह चिंतामणिरस रोगों को दूर करता है। सन्निपात ज्वर कफरोग, एकज, द्वज, विविध विषम ज्वर, अग्निमान्द्य, शिर दर्द, विद्रधि, भग-, इन सब रोगों को दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को। २६६—२७०॥

अथ पुटपाकविषमज्वरान्तकलौहम्—

हिङ्गुलसम्भवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलम्।
रसपर्पटीवत् पाच्यं सूताङ्घ्रि हेमभस्मकम् ॥२७१॥
लौहं ताम्रमभ्रकञ्च रसस्य द्विगुणं क्षिपेत्।
वङ्गञ्चैव प्रवालञ्च रसार्द्धञ्च विनिक्षिपेत् ॥२७२॥
मुक्ता शङ्खं शुक्तिभस्म रसपादिकमेव च।
मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥२७३॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय द्विगुञ्जाफलमानतः।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं कणाहिङ्गु ससैन्धवम् ॥२७४॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफोद्भवम्।
सोहानं यकृतं गुल्मं [illegible] ॥२७५॥

सन्ततं सतताख्यञ्च ज्याहिकं चातुराहिकम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथं मेहमरोचकम् ॥२७
ग्रहणीमामदोषञ्च कासं श्वासञ्च दारुणम् ।
मूत्रकृच्छ्रातिसारञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥२८

पुटपक्वविषमज्वरान्तकलोहे—हिंगूलसम्भवं = हिंगुलात् पातनरीत्या गृहीतम्, रसपर्पटीवदिति = पर्पटी कर्तव्येत सूताङ्घ्रिहेमभस्मकं = पारदचतुर्थांशनिरुत्थं सुवर्णभस्म, व गैरिकं चैव प्रबालं च रसार्धकम् = इति पाठान्तरे, अर्धं गैरिकस्याधिको ज्ञेयः । रसपादिकं = सूतचतुर्थांशम् । मुक्ता मुक्ताशुक्तिसम्पुटे । तदभावे शम्बूकसम्पुटेऽपि कार्यं भवति । केचन पुटपाकात्प्राक् कुमारीरसभावनामिच्छ पुटपाके = यदा च गन्धकस्य गन्धोऽनुभूयते तदा पाकं जानी मा. २ र. । कणेत्यादि प्रत्येकं द्विरक्तिकं आनाहदशायामनु मदम् । कामलायां फलत्रिकादिक्वाथेन, गुडूचीस्वरस वा । शोथे पुनर्नवास्वरसेन । मेहे मूत्रणकालदाहे, एवं कि कालं स्थिते मूत्रे तदधः चूर्णकवत् पदार्थे दृष्टे (फोस्फेट हरिद्रा मधुना विशिष्टमुपकरोति । ग्रहण्यां जीर्णप्रवाहिकायां मधुजीरकेन । वा माषकत्रयमोषद्‌गोलं दुग्धशर्करा मधु प्रयोजयेत् । निरामविषमज्वरे, औषधान्तरैरनिवृत्ते रक्तिका क्विनीन (क्वीनाईन) सहैनं प्रत्यहं त्रिर्दत्ते पाश्चात्यचिकि नुयायिनः कार्तिकादयो ... । साधारणज्वरे निगु

शेफालीपत्राण्यत्तरस्वरसेन । विषमज्वरेषूदरामयश्चेदनेन लौहेन सद्यो नश्यतीति (भै. र. टीका) क्षये शर्करामाक्षिकनवनीतेन, मधुयुतवासायष्टीक्वाथेन, तोलकद्वयरक्तवृन्ताक (टिमाटर) स्वरसेन वा देयम् ॥ २७१--२७७ ॥

हिंगुल से निकाला हुआ पारा एक तोला शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की खूब घोटकर कज्जली करें। फिर लोहे की कड़छी में डाल मन्द आंच देकर रसपर्पटी बनालें। इसे पीसकर स्वर्णभस्म तीन माशा, लौहभस्म दो तोला, ताम्रभस्म दो तोला, अभ्रकभस्म दो तोला, वङ्गभस्म छः माशा, प्रवाल भस्म छः माशे, मोतीभस्म तीन माशे, शंखभस्म तीन माशे तथा मोती की सीप की भस्म तीन माशे डालें। फिर सबको मिला पीस जल से घोटकर सीपियों में भर कपड़मिट्टी करें। पश्चात् आठ जंगली उपलों की आग से कपोत पुट देवें। जब गन्धक की गन्ध आने लगे तभी उन्हें निकाल लें और सीपियों में से औषध निकाल कर रख लें। इस पुटपाक विषमज्वरान्तक लौह को दो रत्ती लेकर उसमें पिप्पली, हींग और सेन्धा नमक मिलाकर प्रातःकाल खावे। यह वात पित्त कफ से उत्पन्न आठों प्रकार के ज्वर, प्लीहा, यकृत, गुल्म, साध्य तथा असाध्य सतत सन्तत त्र्याहिक चातुर्थक ज्वर, कामला, पाण्डु, शोथ, प्रमेह, अरुचि, ग्रहणी, आमदोष, भयंकर खांसी और दमा, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार; इन सब रोगों को अवश्य अच्छा करता है ॥ २७१--२७७ ॥

अथ बृहद्विषमज्वरान्तकलौहम् —

शुद्धसूतं तथा गन्धं कारयेत् कज्जलीं शुभाम् ।
मृतसूतं हेमतारं लौहमभ्रञ्च ताम्रकम् ॥२७८

तालसत्त्वं वङ्गभस्म मौक्तिकं सप्रवालकम् ।
सुवर्णमाक्षिकञ्चापि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥२७९

निर्गुण्डी नागवल्ली च काकमाची सपर्पटी ।
त्रिफला कारवेल्लञ्च दशमूली पुनर्नवा ॥२८०

गुडूची वृषकश्चापि सभृङ्गकेशराजकः ।
एतेषाञ्च रसेनैव भावयेत् त्रिदिनं पृथक् ॥२८१

गुञ्जामानां वटीं कुर्यात् शास्त्रवित् कुशलो भिषक्
पिप्पलीगुडकेनैव लिहेच्च वटिकां शुभाम् ॥२८२

ज्वरमष्टविधं हन्ति निरामं साममेव वा ।
सप्तधातुगतञ्चापि नानादोषोद्भवं तथा ॥२८३

सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ।
अभिघाताभिचारोत्थं ज्वरं जीर्णं विशेषतः ॥२८४

बृहद्विषमज्वरान्तक लौहे—मृतसूतं=रससिन्दूरम्, हेम=
सुवर्णभस्म, तारं=रजतभस्म, तालसत्त्वं=हरितालस्य सत्व

जेपाल सत्व वातारि, वीजमिश्रं च तालकम् ।
कूपीस्थं वालुका यन्त्रे सत्वं मुञ्चति यामतः ॥

इत्युक्तम् । वस्तुतस्तु तालसत्वं गौरीपाषाणा (संखिया) आविरिच्यते । मौक्तिक प्रवालौ शुद्धावेव ग्राह्योन तु तद्भस्म । नागवल्ली = पान इति, काकमाची = मकोय इति, पर्पटी = पित्तपापड़ा इति । दशमूली—मिलिता भावनाद्रव्यम्, वृषको = वासकः, सभृङ्गकेशराजकः = भृङ्गराजद्वयम् । एतेषां स्वरसेन पृथक् पृथक् त्रिदिनं भावना । मा. १ र. । पिप्पली माषकमिता पुराणगुड़ेन अर्धतोलकमितेन प्रातः सायं निरामज्वरे च धारोष्णदुग्धानुपानेन । सप्त धातुगतं = रसादिसप्तधातुगतम्, नानादोषोद्भवं = दोषसङ्घातजम्, असाध्यं = असाध्य कल्पम्, अभिघातो = लगुड़ादिना, अभिचारो = मन्त्रादिना मारणादि प्रयोगः । विशेषतो = यत्र जीर्णशीर्णो रोगी हृत्कम्पयुतश्च यत्र वा कस्यचिच्छरीरावयवस्य शोथेन ज्वरो रक्तहीनता, यत्र वा श्वसनकआन्त्रिकमसूरिकाद्यनन्तरमल्प-मात्रया सायं दीर्घकालमनुवर्तते ज्वरस्तत्रास्य प्रयोगो रक्त-वर्धनाय च ॥ २७८—२८४ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; एक २ तोला लेकर कज्जली करें । फिर रससिन्दूर, स्वर्णभस्म, चांदीभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, हड़ताल का सत्व, बंगभस्म, मोतीभस्म, मूंगाभस्म तथा स्वर्णमाक्षिकभस्म; इन सब द्रव्यों को एक २ तोला लेकर उसमें मिलाकर पीसें । फिर संभालूके रससे, पानके रससे, मकोयके रससे पित्तपापड़ा के रस से, त्रिफला के क्वाथ से, करेला के रस से, दशमूल के क्वाथ से, पुनर्नवा के रस से, गिलोय के रस से,

बांसा के रस से, भांगरे के रस से, केशराज के रस से तीन२ भावनायें देकर एक रत्ति की गोली बना लें। इस गोली को पिप्पली और गुड से प्रातःकाल देना चाहिये। यह आठों प्रकार के ज्वर-निराम हों वा साम, सप्तधातुगत ज्वर, नानादोषों से उत्पन्न ज्वर, सतत सन्तत अन्येद्युष्क त्र्याहिक चातुर्थक आदि विषमज्वरसाध्य हों या असाध्य, तथा अभिघात एवं अभिचार से उत्पन्न ज्वरों को हटाता है। जीर्ण ज्वरों में विशेषतः जादूकर है। ॥ २७८--२८४ ॥

अथ शीतभञ्जीरसः (प्रकारभेदेन)

तालकं दरदोद्भूतपारदो गन्धकः शिला।
क्रम वृद्ध्या ताम्रपात्रीं द्रवैरेतैर्विलेपयेत् ॥२८५॥
अधोमुखीं दृढे भाण्डे तां निरुध्याथ पूरयेत्।
चुल्ल्यां वालुकया घस्रमग्निं प्रज्वालयेद् दृढम् ॥२८६॥
शीते सञ्चूर्ण्य माषोऽस्य नागवल्लीदले स्थितः।
भक्षितो मरिचैः सार्द्धं समस्तान् विषमज्वरान्।
शीतदाहादिकं हन्यात् पथ्यं शाल्योदनं पयः॥२८७॥

प्रकारभेदेनशीतभञ्जीरसे—दरदोद्भूतपारदः=हिंगुलाकृष्टसूतोरसः, शिला=मनः शिला, क्रमवृद्ध्या=तालकस्यैको भागः, सूतस्य भागद्वयं गन्धकस्य भागत्रयं शिलायाश्चत्वारो भागाः,

एवं मिलिता दशभागा भवन्ति जलेन सम्पूर्णं मर्दयेत्। ताम्र-पात्रीं = लघुताम्रपात्र मित्यर्थः, तदभ्यन्तरे लेपनं तां=ताम्रपात्रीं दृढभाण्डतलदेशेऽधो मुखीं संस्थाप्य सन्धिरोधं कृत्वा तदुपरि बालुकाः प्रपूरयेत। चुल्यां संस्थाप्य, एकदिनं वह्निं दद्यात्। माषक मात्रास्य पर्णपत्रेण एकादश मरिचैः सार्धं प्रातरेक-वारमेव दत्वा ज्वरनाशनं करोति। व्यवहारस्तु अर्धरक्तिमात्रया प्रत्यह त्रिश्चतुर्वा ॥ २८५—२८७ ॥

शुद्ध हड़ताल एक तोला, हिंगुल से निकाला हुआ पारा दो तोला, शुद्ध गन्धक तीन तोला, शुद्ध मनसिल चार तोला लें। कज्जली में सब द्रव्य मिला पीसें। जल से मर्दन करके इसको एक छोटे से ताम्र के पात्र में लीप दें। इस पात्र को नीचे की ओर मुख करके एक दृढ़ भाण्ड में रख दें। अब एक शराव उस पर अधोमुख रख सन्धिबन्धन कर दें। ऊपर से दृढ़ भाण्ड में रेता भर दें। फिर चूल्हे पर रख नीचे से एक दिन अर्थात् बारह घण्टे तक तेज आंच दें। स्वांगशीतल होने पर रेता निकाल उस शरावे को हटा औषध निकाल पीसकर रखें। इसे १ माष प्रमाण में लेकर कालीमिर्चों का चूर्ण मिला पान के पत्ते में रखकर खायें तो समस्त विषम ज्वर तथा शीत दाह आदि दूर होते हैं। इसमें पथ्य दूध और चावल हैं। मा. २ र. ॥ २८५—२८७ ॥

अथ चिन्तामणिः (प्रकार भेदेन)

तालकं शुक्तिकाचूर्णं शिखिग्रीवं समांशिकम्।
संपिष्य कारयेत् सर्वं चक्रिकासन्निभं शुभम् ॥२८८॥

शरावपिहितं रात्रौ पचेद् गजपुटेन तु।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य भक्षयेत् माषमात्रकम्।
शर्करासहितं सेव्यं सर्वज्वरहरं परम्॥ २८९

प्रकारभेदेन चिन्तामणौ— शुल्वकं= ताम्रभस्म, चूर्णं=... भस्म, शिखिग्रीवं=मयूरग्रीवाकान्तितुल्थं तूतिया इति, स... शिकं=समभागं जलेन सम्पिष्य चक्रिकासदृशं कृत्वा—आ... संशोष्य शरावद्वयसम्पुटे गजपुटे पचेत्। मा० १ माषिका द्विगु... शर्करया प्रातरेकैव देया। रक्तिमात्रया प्रत्यहं त्रिरपि प्रयुज्य... कालज्वरे (काला अजार) विषमज्वरे च यत्र पिडकाप्रादुर्भा... एवं कुष्ठिनो विषमज्वरे शर्करोदकेन प्रत्यहं त्रिः प्रयो... ॥ २८८·२८९ ॥

शुद्ध हड़ताल, सीसभस्म; शुद्ध नीलाथोथा; समभाग लें।... भर पीसकर जल से घोट टिकिया बना लें। शुष्क होने पर... को एक शराब में बन्द करके गजपुट में फूंक दे। स्वाङ्गशी... होने पर निकाल कर पीस लें। इसे एक माषा लेकर के खांड... साथ खावें तो सब ज्वर दूर होते हैं॥ २८८—२८९ ॥

अथ ज्वरांकुशः—

ताम्रतो द्विगुणं तालं मर्दयेत् सुपर्वीद्रवैः।
प्रपुटेत् भूधरे शीते वज्रीक्षीरैर्विमर्दयेत् ॥२९०
प्रपुटेत् भूधरे पश्चात् पञ्चगुञ्जामितं शुभम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव सर्वज्वरनिकृन्तनः ॥२९१

ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकञ्चातुराहिकम् ।
विषमं चापि शीताढ्यं ज्वरं हन्ति ज्वरांकुशः ।।२६२।।

ज्वरांकुशे—तालं=हरितालम्, सुषवीद्रवैः=कारवेल्ली रसैः, भूधरे= वालुकागूढ़ सर्वाङ्गां गर्ते मूषां रसान्विताम् ।
दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं तद्भूधराह्वयम् । र.र.स.६.४१।

ततः स्वाङ्गशीतं वज्रीक्षीरैः=स्नुहीक्षीरैर्विमर्द्य पुनर्भूधरे पचेत्, पश्चादपि स्वाङ्गशीतं पञ्च गुञ्जमात्रया मध्वार्द्रकरसेन देयः। प्रौढ़ानामेकस्मिन् दिन एकैव मात्रा देया। एकरक्तिमात्रया प्रत्यहं त्रिश्चतुर्वेति। सर्वप्रकारविषमज्वरे ज्वरागमनात्प्राक् प्रयुज्यते ॥ २६०-२६२ ॥

ताम्रभस्म एक तोला, शुद्ध, हडताल दो तोला, दोनों को मिला करेले के रसमें घोटकर भूधरयन्त्र में पुट देवे। स्वांगशीतल होने पर निकाल थोहर के दूध में घोट फिर भूधर यन्त्र में पुट दे। शीतल होने पर निकाल कर पांच रत्ति मात्रा में अदरक के रस से खिलावे। यह सर्व ज्वरों का नाशक है। ऐकाहिक, द्व्याहिक, तृतीयक, चातुर्थक, विषमज्वर, शीतज्वर, इन सब को यह ज्वराङ्कुश दूर करता है। २६०-२६२।

अथ मेघनादो रसः—

आरं कांस्यं मृतं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यञ्च गन्धकम् ।
रसेन मेघनादस्य पिष्ट्वा रुध्वा पुटे पचेत् ।।२६३।।

भक्षयेत् पर्णखण्डेन विषमज्वरनाशनम् ।
अस्य मात्रा द्विगुञ्जा स्यात् पथ्यं दुग्धौदनं हितम् ।
पञ्चामृतपलञ्चैकमनुपानं प्रयोजयेत् ॥२६४॥

मेघनादे— आरं=पित्तलभस्म, गन्धकस्य भागत्रयम् । मेघनादस्य=तण्डुलीयकस्य रक्ततण्डुलीयकं वरं मन्यन्ते, पुट इति- शरावसम्पुटान्तःस्थं करीषेष्वग्निमानवित् ।

पचेच्चुल्यां द्वियामं वा रसं तत्पुटयन्त्रकम् । र. र. स. ६-४३

स्वाङ्गशीतं द्विगुञ्ज मात्रया पर्णखण्डेन प्रत्यहं ज्वरागमनात्प्राक् पित्त कफ प्रधान कास सर्वाङ्ग शूलयुत विषमज्वरे प्रयोगः । पञ्चामृतपलम्— गुडूची गोक्षुरश्चैव मुशली मुण्डिका तथा ।

शतावरीति पञ्चानां योगः पञ्चामृताभिधः ॥ वै० श० सि०

अस्मैव क्वाथस्य पलैक मनुपानम् । नतु दुग्धादिपञ्चकस्य पञ्चामृतस्य । आरमत्राभ्रं, तारं, सारमिति पाठान्तरे नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः । सर्वज्वरातिसारघ्नं क्वाथ मस्यानुपाययेत् । तरुणं वा ज्वरं जीर्णं तृष्णां दाहं चनाशयेत् । बसवराजीये इत्यधिकः पाठः ॥ २६३-२६४ ॥

पित्तल भस्म, कांस्यभस्म;ताम्रभस्म एक २ तोला, शुद्ध गन्धक तीन तोला । सब को पीस लाल चौलाई के रस में घोट पिण्डी बांध सम्पुट कर पुट में फूंक दे । इस की दो रत्ति की मात्रा लेकर पान के पत्तों के रस से खावे तो विषमज्वर नाश होते हैं । पथ्य में दूध चावल दे । अनुपान में पञ्चामृत (गिलोय, गोखरू, मूसली, मुण्डी, शतावर) इन का क्वाथ एक पल पीवे ॥ २६३-२६४ ॥

अथ शीतज्वरहरो रसः—

सूतमाक्षिकगन्धानां भागाश्चारुष्करस्य च ।
तथाऽष्टौ तालकाच्चूर्णात् रविदुग्धस्य षोडश ॥२६५

स्नुहीक्षीरस्य चैवाष्टौ सर्वं मृद्वग्निना पचेत् ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य ततः खल्ले विमर्दयेत् ।
शीतज्वरहरो नाम्ना रसोऽयं परिकीर्त्तितः ॥२६६॥

शीतज्वरहरे—अरुष्करस्य=भल्लातकस्य, सूतादिचतुर्णां-प्रत्येकमेकोभागः, तालकाच्छुद्धतालकात्, चूर्णात्=शुक्तिचूर्णात्, प्रत्येक मष्टौ भागाः । रविदुग्धस्य=अर्कदुग्धस्य षोडष भागाः । स्नुहीक्षीरस्य अष्टौ, सर्वं मसृणं विमर्द्य मृद्वग्निना पचेत् स्वाङ्गशीतं पुनरपि खल्ये विमर्दयेत् । शा. १. र. बद्धकोष्ठे विषमज्वरेऽयं विरेचनार्थं प्रयुज्यते ॥२६५-२६६॥

शुद्ध पारा एक तोला; शुद्ध गन्धक एक तोला; दोनों की कज्जली करे । फिर स्वर्णमाक्षिकभस्म एक तोला, शुद्ध भिलावा एक तोला, शुद्ध हड़ताल का चूर्ण आठ तोला, आक का दूध सोलह तोला, थोहर का दूध आठ तोला । सब को पीसकर मन्दाग्नि से पुटपाक विधि से पका स्वाङ्गशीतल होने पर खरल में डाल पीसलें । यह शीतज्वर को दूर करता है ॥२६५-२६६॥

अथ शीतभञ्जीरसः (प्रकारभेदेन)

पारदं रसकं तालं तुत्थं टङ्कणगन्धकम् ।
सर्वमेतत् समं शुद्धं कारवेल्लरसैर्दिनम् ॥२६७॥

मर्द्दयेत् तेन लिम्पेच्च ताम्रपात्रोदरं भिषक् ।
अंगुलार्द्धार्द्ध मानेन तं पचेत् सिकताह्वये ॥२९८॥
यन्त्रे यावत् स्फुटन्त्येवं व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ।
ततस्तत् शीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदरात् बुधैः ॥२९९॥
माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेत् मरिचैः समम् ।
शीतभञ्जीरसो नाम त्रिदिनान्नाशयेज्ज्वरम् ॥३००॥

अन्यशीतभञ्जीरसे-रसकं=खर्परम्, तुत्थं=तूतिया इति, कारवेल्ल रसैः=करेला इति ख्यातशाकस्य पत्ररसै फलरसै वा दिनं विमर्द्य तेन ताम्रपात्रस्य=ताम्रकटोरिकायाः, उदरं= अन्तः प्रदेशं अंगुलार्धार्धमानेन=अंगुलिचतुर्थांशेन, लिम्पेत् । ततस्तामधोमुखीं स्थालिकाभ्यन्तरे कृत्वा बदरीपत्रकल्केन सन्धिरोधं विधाय तदुपरि वालुकाः प्रपूरयेत् । वालुकोपरि च व्रीहि निक्षेपः । चुल्यां निवेश्य तावदग्निं दद्यात् यावत् व्रीहयः स्फुटन्ति, ततः स्वाङ्गशीतं समभागमरिचैः सह मेलयित्वा माषमात्रं पर्णखण्डेन प्रातस्त्रिदिनं प्रदेयः । शीतपूर्वक ज्वरे वातरक्त कुष्ठिनां विषमे, कफपित्त प्रधान विषमेचास्य प्रयोगो द्विरक्ति मात्रया । विषमज्वरे सुप्रथितोऽयं योगः ॥ २९७-३०० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध खपरिया, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध नीलाथोथा, भुना सुहागा; सम भाग लेकर पीसे और करेले के रस से एक दिन घोटे । फिर इस कल्क से एक ताम्बे के पात्र के अन्दर की

और चौथाई अंगुल तक लेप कर दे, फिर उसे उलटा मुंह करके एक हांडी में रख और उस ताम्रपात्र से बड़ा एक और मिट्टी का पात्र लेकर उससे ताम्रपात्र को ढक दे। बेर के पत्तों से सन्धिलेप कर ऊपर हांडी के शेष भाग में बालू भरदे। उसके ऊपर कुछ धान डाल दे। नीचे से पात्र को ज्वाला दे। आग तब तक देनी चाहिये जब तक ऊपर के धान न फूट जांय। पश्चात् शीतल होने पर ताम्र के पात्र में से इस रस को निकाल पीसकर संभाल रखे। इस रस को एक माषा मात्रा में और मरिचचूर्ण के साथ पान के पत्ते में रख खाने से तीन दिन में ज्वर नाश हो जाता है इस का नाम शीतभञ्जीरस है ॥२९७-३००॥

अथ पञ्चाननो रसः—

रसकं तालकं तुत्थं टङ्कणं रसगन्धकम् ।
तुल्यांशं सुषवीतोयैर्मर्दयेत् यामयुग्मकम् ॥३०१॥
कृत्वा गोलं ताम्रपात्रेणाधोवक्त्रेण रोधयेत् ।
स्थालीं मृत्कर्पटैर्लिप्त्वा पचेत् चुल्ल्यां दिनं ततः॥३०२
तच्छीतं ताम्रभस्मापि गृह्णीयात् सुरसाजलैः ।
यामं मर्द्यं ततो वल्लं तुलसीमरिचैर्युतम् ॥३०३॥
हन्ति सर्वं ज्वरं घोरं विषमञ्च त्रिदोषजम् ।
धात्रीकल्केन वा युक्तं दाहाख्यं विषमं जयेत् ॥३०४॥

पथ्यं दुग्धौदनं दद्यात् मुद्गयूषं सशर्करम् ।
ज्वरे धातुगते दद्यात् पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ।
अयं पञ्चाननो नाम विषमज्वरनाशनः ॥३०५॥

पञ्चाननरसमाह—रसकमिति । अयमन्य शीतभञ्जीरसाद् भिन्नोऽनुपानादिकं त्वधिकमत्र । सुषवी=कारवल्ली, ताम्रभस्मापीति=ताम्रपात्रोदरान्तर्भागस्य गन्धकपारदयोगेन भस्मीभूताम्रमित्यर्थः । तोलकमितपृथक्ताम्रभस्मदानं कस्यचित् रसग्रन्थपरिभाषाऽज्ञानं सूचयति । धात्री=आमलकी, दाहाख्यं=दाहपूर्वम् । पथ्ये दुग्धोदनं मुद्गयूषशर्करयोर्विकल्पः । धातुगते=रसादि सप्तधातुगते ॥ ३०१—३०५ ॥

शुद्ध खपरिया, शुद्ध हडताल शुद्ध नीलाथोथा, शुद्ध सुहागा, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक; एक एक तोला लें । कज्जली में अन्य द्रव्य मिला करेले के रस से दो पहर अर्थात् छः घण्टे तक मर्दन करे फिर उसका गोला बना एक हांडी में रख ऊपर से एक ताम्रपात्र का उलटा मुंह करके उसे ढक दें । एक शराव से ढक कर सन्धिलेप करें और पूर्ववत् हांडी को बालू से भर दें हांडी पर कपड़ मट्टी कर लेनी चाहिये । इसे चूल्हे पर रख दें और दिन भर की आंच दें स्वांगशीतल होने पर ताम्रपात्र के नीचे की औषध और ताम्र भस्म वही भस्मीभूत ताम्रपात्र पीसकर तुलसी के रस से एक पहर तक मर्दन करके सुखाकर रख ले । इसे पञ्चानन रस कहते हैं । इसकी रत्ति की मात्रा लेकर तुलसी और मिरच के साथ देने से सब घोर विषम ज्वर तथा त्रिदोषज ज्वर दूर होते हैं।

आंवले के कल्क से मिलाकर दें तो दाह ज्वर नामक विषम ज्वर दूर होता है। पथ्य में दूध चावल या मूंग का रस खांड मिलाकर दें। धातुगत ज्वर में इस पञ्चानन रस को पिप्पलीचूर्ण और शहद मिलाकर देना चाहिये। यह पञ्चानन रस विषमज्वर-नाशक है॥ ३०१-३०५॥

अथ वमनयोगः—

कुमारीमूलकर्षैकं पिबेत् कोष्णजलेन तु।
विषमन्तु ज्वरं हन्ति वमनेन चिरन्तनम्॥३०६॥

ज्वरनाशकरसादिप्रयोगसमये त्वरितज्वरनाशकवमन योगमाह—कुमारीति-कर्षैकं=उदुम्बरमितम्। कुमारीमूलं सम्यक् पेषयित्वा प्रस्थमितकोष्णजलेन यथा शक्यं पाययेत्। तोलकमित-लवण प्रक्षेपोप्यत्रोचितः। वमनेन पुराणं विषमं नाशयति॥३०६॥

घीकुमार की जड़ को पीसकर एक कर्ष लें और उसे गुनगुने पानी से पीवें। वमन होकर पुराना विषमज्वर दूर हो जाता है॥ ३०६॥

अथ विश्वेश्वरो रसः—

दरदं गन्धकं सूतं तुल्यांशं मर्दयेद् द्रवैः।
अश्वत्थजैस्त्र्यहं पश्चात् रसैः कानकमूलजैः॥३०७॥
निदिग्धिकारसैः काकमाचिकाया रसैः पुनः।

द्विगुञ्जां वा त्रिगुञ्जां वा गोक्षीरेण प्रदापयेत् ।
रात्रिज्वरं निहन्त्याशु नाम्ना विश्वेश्वरो रसः ॥३०८॥

विश्वेश्वरे – अश्वत्थजैः = पिप्पलत्वग्भवक्वाथैः । धत्तूरमू कण्टकारिकाकमाचीरसेन प्रत्येकं भावनात्रयम् । गोक्षीरेण धारोष्णेन । योहि विषमज्वरः दिवानिःशेषो भवति रात्रौ पुन समायाति तत्रास्य प्रयोगः । यश्च दिवापि किञ्चिद्वर्तते एव त नास्य विशेषकार्यकारिता । कानकमूलजैरित्यत्र कोलकमूल जैरिति पाठः, एवं कोलकमूलं बदरवृक्षमूलत्वक् इति व्याख्या च नातिरमणीयं बदरमूलस्य ज्वरघ्नशक्तेरश्रवणात् । प्रामाणि व्याख्याकारैर्धत्तूरमूलस्यैव व्याख्यानाद्धत्तूरस्य विशेष ज्वरघ्नत्वाच्च ॥ ३०७-३०८ ॥

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, समभाग लें। पहले पारे गन्धक की कज्जली करें, फिर हिंगुल मिला पीस लें अनन्तर पीपल वृक्ष की छाल के क्वाथ में तीन दिन तक मर्द करें। फिर धतूरे की जड़ के रस में तीन दिन, फिर कण्टका के रस वा क्वाथ में तीन दिन, फिर मकोय के स्वरस में ती दिन मर्दन कर दो रत्ति या तीन रत्ति की गोलियां बना लें इसे गौ के दूध से दें तो रात आने वाला ज्वर दूर होता है इसका नाम विश्वेश्वर रस है ॥ ३०७--३०८ ॥

अथ त्र्याह्निकारि रसः—

रसकेन समं शङ्खं शिखिग्रीवञ्च पादिकम् ।
गोजिह्वया जयन्त्या च तण्डुलीयैश्च भावयेत् ॥३०९

प्रत्येकं सप्त सप्ताथ शुष्कं गुञ्जाचतुष्टयम् ।
जरणेन घृतेनाद्यात् त्र्याहिकज्वरशान्तये ॥३१०॥

त्र्याहिकारिरसे—रसकेन = खर्परेण, शिखिग्रीवं = तुत्थकम् तद्यादिक = मेकभागापेक्षया चतुर्थांशम्, गोजिह्वा = गाजुषां इति, तण्डुलीयः चौलाई इति, प्रत्येकं सप्तभावना, जरणेन = जीरकेण, रसकेन समंशङ्खमत्र रसेन गन्धं शङ्खं चेति क्वचित्पाठः । मात्रा १. र. ॥ ३०६-३१० ॥

शुद्ध खपरियाभस्म, शङ्खभस्म; एक २ तोला लें, शुद्ध नीला थोथा छः माशे लें । गोजिया का रस, जयन्ती का रस तथा चौलाई का रस; प्रत्येक की सात २ भावनायें दें । सूखने पर इसकी चार रत्ति की मात्रा ले पुराने घी से खावें तो तृतीयक ज्वर दूर होता है ॥ ३०६-३१० ॥

अथ चातुर्थकारिः—

हरितालं शिलातुत्थं शङ्खचूर्णञ्च गन्धकम् ।
समांशं मर्दयेत् प्राज्ञः कुमारीरसभावितम् ॥३११॥
शरावसम्पुटे कृत्वा पश्चाद् गजपुटे पचेत् ।
कुमारिकारसेनैव वल्लमात्रा वटीकृता ॥३१२॥
दत्ता शीतज्वरं हन्ति चातुर्थकं विशेषतः ।
मरिचघृतयोगेन तक्रं पीत्वा चरेद्वटीम् ।
एतया वमनं भूत्वा ज्वरस्तस्माद्विनश्यति ॥३१३॥

चातुर्थकारि रसे—तालादि पञ्चद्रव्याणि कुमारी रसेन मर्दयित्वा शरावसम्पुटे कृत्वा गजपुटे पचेत्। ततः स्वाङ्गशीतमादाय कुमारिका रसेनैव त्रिरक्तिकावटी मरिचघृतयोगेन। तक्रमाकण्ठमित शेषः। पीत्वा वटीं सेवेत वमनेन शीतज्वरं विशेषतः चातुर्थकं हन्ति। गजपुटलक्षणंच—

सपादहस्तमानेन कुण्डे निम्ने तथा ऽऽ तते।
वनोपलसहस्रेण पूर्णे मध्ये विधारयेत्॥
पुटनद्रव्यसंयुक्तां कोष्ठिकां मुद्रितां मुखे।
अधोऽर्धानि करण्डानि अर्धान्युपरि निक्षिपेत्॥
एतद्गजपुटं प्रोक्तं ख्यातं सर्वपुटोत्तमम्॥ ३११-३१३॥

शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनसिल, शुद्ध नीलाथोथा, शङ्खभस्म शुद्ध गन्धक; समभाग लेकर घीकुमारी के रस से पीसे। सूखने पर सम्पुट कर गजपुट में फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर इसे निकाल घीकुमारी के रस से घोट ३ रत्ति की गोली बनाले इसे देने से शीतज्वर, विशेष करके चातुर्थक ज्वर दूर होता है रोगी तक्र में मिरचचूर्ण और घी मिलाकर पहले पीले फिर गोली खावे। इससे वमन होकर ज्वर दूर हो जायगा। ३११—३१३॥

अथ चिन्तामणि रसः (प्रकारभेदेन)—

रसं गन्धं विषं शुल्वं मृतमभ्रं फलत्रिकम्।
त्र्यूषणं दन्तिबीजञ्च समं खल्ले विमर्दयेत्॥३१४॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तद् वस्त्रगालितम्।
चिन्तामणिरसोऽजीर्णे ह्येष वै शस्यते सदा॥३१५॥

ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलहरः परः।
गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा देयमार्द्रकवारिणा ॥३१६॥

प्रकारभेदेन चिन्तामणौ—शुल्वं=ताम्रभस्म, दन्तिवीजं शुद्धं ग्राह्यम्। द्रोणपुष्पी = गुम्मा इति तद्रसेन सप्तभावना देया। मा. १ र. अजीर्णे प्रशस्यते, शूले, आर्द्रकवारिणा देय। विषमज्वरे शोथे श्वासकृच्छ्रतायां चायं प्रशस्यते। देयमार्द्रकवारिणेत्यत्र आमरोगहरं परमिति पाठान्तरम्। बालवृद्धगर्भिणीभ्यो नायं योज्यः ॥ ३१४-३१६ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, आंवला चूर्ण, सोंठ चूर्ण, मरिच चूर्ण; पिप्पली चूर्ण, शुद्ध दन्तीबीज, समभाग ले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला गूमा के रस से भावनायें दे। जब सूख जावे तब वस्त्र से छान शीशी में रख ले। यह चिन्तामणि रस अजीर्ण रोग में बड़ा अच्छा है। आठों प्रकार के ज्वरों को नाश करता है। सब शूल दूर करता है। एक रत्ति या दो रत्ति मात्रा में इस रस को लेकर अदरक के स्वरस से देना चाहिये ॥ ३१४–३१६ ॥

अथ बृहच्चिन्तामणिरसः (प्रकारभेदेन)

रसगन्धकलौहानि ताम्रं तारं हिरण्यकम्।
हरितालं खर्परञ्च कांस्यं वङ्गञ्च विद्रुमम् ॥३१७॥
मुक्ता माक्षिककाशीशं शिला च टङ्कणं समम्।
कर्पूरं च समं दत्त्वा भावना सप्तसप्तकम् ॥३१८॥

भार्गी वासा च निर्गुण्डी नागवल्ली जयन्तिका।
कारवेल्लं पटोलञ्च शक्राशनपुनर्नवे ॥३१९॥
आर्द्रकञ्च ततो दद्यात् प्रत्येकं वारसप्तकम्।
चिन्तामणिरसो नाम सर्वज्वरविनाशनः ॥३२०॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्।
द्वन्दजं विषमाख्यञ्च धातुस्थञ्च ज्वरं जयेत् ॥३२१॥
कासं श्वासं तथा शोथं पाण्डुरोगं हलीमकम्।
प्लीहानमग्रमांसञ्च यकृतञ्च विनाशयेत् ॥३२२॥

प्रकारभेदेन बृहच्चिन्तामणौ—तारं=रजतम्, हिरण्यं=सुवर्णम्, विद्रुमं=प्रवालम्, काशीशं=धातुकाशीस भस्म, शिला=मनः शिला, समदश द्रव्याणि समांशानि यथायथं मसृणं विमर्द्य, निर्गुण्डी=सिम्हालू इति, शक्राशनं=विजया, दशभिरौषधैः प्रत्येकं सप्त भावना देयाः। सर्वज्वरविनाशनः=सन्तत, सतत, सतत् विपर्यय, अन्ये द्युष्क, तृतीयक, घोरतृतीयक, चातुर्थक, चातुर्थक विपर्यय, वातबलासकादिज्वराणां निरामावस्थायामेतेषामेव दीर्घकाल व्याप्तौ च यकृत्प्लीहकासशोथादिषु विशेषोपकारी। अनुपानं मधुपिप्पली, यकृत्प्लीहवृद्धौ हिंगुसैन्धवपिप्पल्यः। धातुस्थं रसादिगतम्। पाण्डौ हलीमके च मूलकस्वरसेन, अग्रमांसं प्राग् (२१० श्लो० ज्वरे) व्याख्यातम्। समं सममिति द्वितीय सम शब्दो पादपूर्णार्थः। ननु कर्पूरस्य सर्वसमभाग द्योतनार्थः

एवं सप्तसप्तकमत्रान्यतरसप्तशब्दोज्ञेयः। अथवा सप्तगुणितंसप्तकं सप्तसप्तकम् नपञ्चाशादित्यर्थोज्ञेयः । तेन ऊनपञ्चाशद्भावनेति फलितोर्थः ।। ३१७-३२२ ।।

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध हड़ताल, खपरियाभस्म, कांस्यभस्म, बंगभस्म, मूंगाभस्म, मोतीभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध कासीस, शुद्ध मनसिल, भुना सुहागा, कपूर; समभाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर पीस भारंगी, बांसा संभालू, पान, जयन्ती, करेला पटोलपत्र, भांग, पुनर्नवा, अदरक। इन में से एक २ द्रव्य की सात सात वार भावना देनी चाहिये। यह चिन्तामणि रस सब ज्वरों को दूर करता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक द्वन्दज, विषम तथा धातुस्थ ज्वरों को जीतता है। खांसी, दमा, शोथ, पाण्डुरोग, हलीमक, तिल्ली, अग्रमांस, यकृतवृद्धि इन सब रोगों को दूर करता है ।। ३१७ – ३२२ ।।

महाज्वराङ्कुशः ।

पारदं गन्धकं ताम्रं हिंगुलं तालमेव च ।
वङ्गं लौहं माक्षिकञ्च खर्परञ्च मनः शिला ।।३२३।।
मृताभ्रकं गैरिकञ्च टङ्कणं दन्तिबीजकम् ।
सर्वाण्येतानि द्रव्याणि चूर्णयित्वा विभावयेत् ।।३२४।।
जम्बीरविजयाचित्र—तुलसीतिन्तिडीरसैः ।
एभिर्दिनत्रयं भाव्यं निर्जने रौद्रसङ्कुले ।।३२५।।

चणमात्रां वटीं कृत्वा छायाशुष्काञ्च कारयेत् ।
मन्दाग्निदीपनी चैव सर्वज्वरविनाशिनी ॥३२६॥
द्वन्दजं सर्वजञ्चैव चिरकालसमुद्भवम् ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च ज्वरञ्च सान्निपातिकम् ॥३२७॥
चातुर्थकं तथाऽत्युग्रं जलदोषसमुद्भवम् ।
सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥
(नातः परं किञ्चिदस्ति ज्वरनाशाय भेषजम् ।)
महाज्वराङ्कुशो नाम रसोऽयं मुनिभाषितः ॥३२८॥

महाज्वरांकुशे—खर्परं=यशदभस्म, मृताभ्रक-अभ्रकभस्म निश्चन्द्रग्रहणम्, दन्ति बीजं शोधितम्, विजया=भङ्गा, चित्रं=रक्तचित्रकम् तिन्तिड़ी=इमली इति तस्याश्च अपक्वफलरसो देयः, निर्जने=एकान्ते रौद्रसंकुले=रौद्रेण=आतपेन संकुले=आकीर्णे प्रखरातप इत्यर्थः। चिरकालसमुद्भवं मासत्रयात् ततः पूर्वतो वा पक्षान्मासाद्वा प्रवृत्त मुग्रं ज्वरं जलदोषसमुद्भवं=पुनः पुनरावर्त्तमानं तीव्रगं विषमज्वरम्। मुनिभाषितो=मुनिभिरित्यभ्युच्चयार्थं मुनिनामग्रहणम् । मृताभ्रकमत्र स्वर्णभस्म, दन्ति बीजमत्र रूप्यमेव च भाव्यमत्र रौद्रे निर्जने इत्यत्र निर्जले रौद्रसंकुलेत्यत्र खल्वगह्वर इति पाठान्तराणि मृताभ्रं दन्तिवीजकमितिपाठ द्वयं न बहुपुस्तका हतम् ॥३२३-३२८॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध हड़ताल, वंग भस्म, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, खपरभस्म, शुद्ध मनसिल, अभ्रकभस्म, शुद्ध गेरू, भुना सुहागा, शुद्ध दन्तीबीज; समभाग ले । पहले कज्जलीमें अन्य द्रव्य मिला जम्बीर, भांग, चीता, तुलसी, इमली, इन सबके रस से तीन २ दिन

भावना दे। एकान्त स्थान में धूप में भावना देनी चाहिये। फिर चने के समान गोली बना छाया में सुखा ले। यह गोली मन्दाग्नि को दूर करके अग्नि का दीपन करती है, सब रोगों का नाश करती है। द्वन्दज वा सन्निपातज पुराना ज्वर, एकाहिक, द्व्याहिक सन्निपात ज्वर, चातुर्थक, जलदोष से उत्पन्न उग्र ज्वर; इन सब को इस प्रकार दूर करती है जिस प्रकार अन्धकार को सूरज दूर करता है। इससे बढ़ कर ज्वरनाश के लिये अन्य औषध नहीं। यह मुनि का कहा हुआ महाज्वरांकुश रस है ॥३२३--३२८॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तो महाज्वराङ्कुशः—

पारदं हिंगु लंताम्रं माक्षिकं तुत्थमेव च।
वङ्गं मृतञ्च गन्धञ्च खर्परञ्च मनःशिला ॥३२९॥
तालकं घनपाषाणं गैरिकं टङ्कणं तथा।
दन्तीबीजानि सर्वाणि चूर्णयित्वा विभावयेत्।
भावना पूर्ववत् देया वटीं कुर्याच्च पूर्ववत् ॥३३०॥

तन्त्रान्तरीयमहाज्वराङ्कुशे-घनपाषाणं=कान्तलौहभस्म। घनमभ्रम्, पाषाणं नामैकदेश ग्रहण न्यायेन कान्तपाषाणं ग्राह्यमिति विचारकाः। पूर्ववदिति जम्बीरादिभिः, बटी चणकमात्रा कार्या

॥ ३२९ ३३० ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध हिंगुल, ताम्रभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्धतुत्थ, वंगभस्म, शुद्ध गन्धक, खर्परभस्म, शुद्ध मनसिल, शुद्ध-हड़ताल, अभ्रकभस्म, शुद्ध गेरू, भुना सुहागा, शुद्ध दन्तिबीज; समभाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर ऊपर के महाज्वरां-

कुश रस में कहे हुए सब द्रव्यों की भावना देकर चने के बराबर गोली बनावें। पूर्व के समान ही यह सब ज्वरों को दूर करती है।

अथ सर्वतोभद्ररसः—

विशुद्धं गगनं ग्राह्यं द्विकर्षं शुद्धगन्धकम्।
तोलकं तोलकार्द्धञ्च हिंगुलोत्थरसं तथा ॥३३१॥
कर्पूरं केशरं मांसी तेजपत्रं लवङ्गकम्।
जातीकोषफलञ्चैव सूक्ष्मैला करिपिप्पली ॥३३२॥
कुष्ठं तालीशपत्रञ्च धातकीचाचमुस्तकम्।
हरीतकी च मरिचं शृङ्गवेरविभीतकम् ॥३३३॥
पिप्पल्यामलकञ्चैव शाणभागं विचूर्णितम्।
सर्वमेकीकृतं पिष्ट्वा वटीं कुर्य्याद् द्विगुञ्जिकाम् ॥३३४॥
भक्षयेत् पर्णखण्डेन मधुना सितयाऽपि वा।
रोगं ज्ञात्वाऽनुपानञ्च प्रातः कुर्याद्विचक्षणः ॥३३५॥
हन्ति मन्दानलान् सर्वानामदोषं विसूचिकाम्।
पित्तश्लेष्मभवं रोगं वातश्लेष्मभवं तथा ॥३३६॥
आनाहं मूत्रकृच्छ्रञ्च संग्रहग्रहणीं वमिम्।
अम्लपित्तं शीतपित्तं रक्तपित्तं विशेषतः ॥३३७॥
चिरज्वरं पित्तभवं धातुस्थं विषमज्वरम्।
कासं पञ्चविधं हन्ति कामलां पाण्डुमेव च ॥३३८॥

सर्वलोकहितार्थाय शिवेन कथितः पुरा ।
सर्वतोभद्रनामायं रसः साक्षात् महेश्वरः ॥३३६॥

सर्वतोभद्रे —गगनमभ्रकम्, विशुद्धं=निश्चंद्रम्, द्विकर्षं=तोलद्वयम्, गन्धकं,तोलक कथितम् । रसस्यार्धतोलकम्, केशरं=नागकेशरम्, मांसी=बालछड़ इति, तेजपत्रं=पत्रज इति, करिपिप्ली=गज-पिप्पली, धातकी=धातकीपुष्पम्, चोचं=दालचीनी इति शृङ्गवेरं=शुण्ठी, कर्पूरादीनि शाणभागं=माषकचतुष्टयं कज्जलीं विधाय शेषद्रव्यं सूक्ष्मपटगालितं कृत्वा एकीकृत्य जलेन मर्दयित्वा द्विरक्तिमिता वटी पर्णखण्डमधुसितानुपानेन देया । वेति समुच्चये, आमदोषं जीर्णप्रवाहिकाजनितम्, अपक्वरसजं वा, धातुस्थं=रसादि धातुस्थम्,ज्वररहितः कास श्चिरकालसेवनेनास्य समूलं विनश्यति । शुष्ककासे मधुवासकपत्रस्वरसानुपानेन मधुपर्णपत्ररसेन वा तरले मधुपिप्पलीचूर्णयोगेन उदरामये मधु जीरकेण योज्यः । संग्रहण्यां विशेषलाभकरो ऽपि क्षयजप्रलेपके प्रयुज्यते ॥ ३३१-३३६ ॥

अभ्रकभस्म दो कर्ष, शुद्ध गन्धक एक तोला, हिंगुल से निकला हुआ पारा आधा तोला ले। कपूर, नागकेशर चूर्ण, लौंग का चूर्ण, जयफल का चूर्ण, बालछड़ चूर्ण, तेजपात क चूर्ण, जावित्री चूर्ण, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण, गजपीपल का चूर्ण, कूठ का चूर्ण, तालीशपत्र चूर्ण, धाय के फूलों का चूर्ण दारचीनी चूर्ण, मोथा चूर्ण, हरड़ चूर्ण, मरिच चूर्ण, सोंठ चूर्ण, बहेड़ा चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, आंवला चूर्ण; एक २ शाण ले ।

कज्जली में अन्य द्रव्य मिला जलसे पीस दो रत्ति की गोली बना ले। इसे पान के रस से अथवा शहद से या मिश्री से खावे प्रातः काल इसे खाकररोगानुसार अनुपान करे। यह मन्दाग्नि, आमदोष, विसूचिका, पित्तश्लेष्मज रोग, वातश्लेष्मज रोग आनाह, मूत्रकृच्छ्र संग्रहग्रहणी, वमन, अम्लपित्त, शीतपित्त विशेष करके रक्तपित्त, पुराना ज्वर, पित्तज्वर, धातुस्थ ज्वर, विषम, पांच प्रकारकी खाँसी, कामला, पाण्डु; इन रोगोंको दूर करता है, यह सर्वतोभद्र रस साक्षात् महेश्वर अर्थात् महासामर्थ्यशाली है। सब लोकों के हित के लिये इसे शिवजी ने पूर्व कहा था ॥ ३३१-३३६ ॥

अथ बृहज्ज्वरान्तकलौहम्—

रसं गन्धं तोलकञ्च जातीकोषफले तथा।
हेमभस्म तु पादैकं तोलार्द्धं रूप्यलौहकम् ॥३४०॥
शिलाजत्वभ्रकञ्चैव भृङ्गराजञ्च मुस्तकम्।
केशराजमपामार्गं लवङ्गञ्च फलत्रिकम् ॥३४१॥
वराङ्गवल्कलञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च।
सैन्धवञ्च विडञ्चैव गुडूचीचूर्णमेव च ॥३४२॥
कण्टकारीं रसोनञ्च धान्यकं जीरकद्वयम्।
चन्दनं देवकाष्ठञ्च दार्वीन्द्रयवमेव च ॥३४३॥
किराततिक्तकं वालं तोलकञ्च समाहरेत्।
द्वितोलं मरिचं देयं भावयेदार्द्रकद्रवैः ॥३४४॥

माषार्द्धं भक्षयेत् प्रातर्मधुना मधुरीकृतम् ।
ज्वरं नानाविधं हन्ति शुक्रस्थं चिरकालजम् ॥३४५॥
साध्यासाध्यविचारोऽत्र नैव कार्य्यो भिषग्वरैः ।
अन्तर्धातुगतञ्चैव नाशयेन्नात्र संशयः ॥३४६॥
भूतोत्थं श्रमजञ्चापि सन्निपातज्वरं तथा ।
असाध्यञ्च ज्वरं हन्ति यथा सूर्योदयस्तमः ॥३४७॥
गरुडञ्च समालोक्य यथा सर्पः पलायते ।
तथैवास्य प्रसादेन ज्वरः सोपद्रवो ध्रुवम् ॥३४८॥
बलदं पुष्टिदञ्चैव मन्दाग्निनाशनं परम् ।
वीर्य्यस्तम्भकरञ्चैव कामलापाण्डुरोगनुत् ॥३४९॥
सदा तु रमते नारीं न वीर्य्यक्षयतां व्रजेत् ।
प्रमेहं विविधञ्चैव विविधां ग्रहणीं तथा ।
अनुपानविशेषेण सर्वव्याधि विनाशयेत् ॥३५०॥

बृहज्ज्वरान्तक लौहे—हेमभस्म पादैकमेकपादं एकभागचतुर्थांशमित्यर्थः। साधुवनवाय दिनैर्वामितेव व्यवहारादेव ज्ञेयम् तोलार्धमिति रूप्यलौहयोः पृथक् तोलार्धम्। केशराजो भृङ्गराजभेदः अपामार्गः चिरचिटा इति, वराङ्गवल्कलं=दालचीनी इति, गुडूचीचूर्णं, चूर्णं=शुक्तिका चूर्णं गुडूचीचूर्णं शब्देन=गुडूची सत्वं व्यवहरन्ति वृद्धा इति टीकान्तरम्। रसोनस्य दुग्धभावनया शोधनं केचिदिच्छन्ति, जीरकद्वयं स्थूलजीरकं कृष्णजीरकञ्चेति,

चन्दनं=श्वेत चन्दनम्, देवकाष्ठं=देवदारु इति तस्य च सारो ग्राह्यः। शार्वी=दारुहरिद्रा, अस्या स्त्वग् ग्राह्या। किरात-तिक्तकं=चिरायता इति, बालं=ह्रीबेरम्। रसादिबालकान्ताः प्रत्येकं तोलकमिताः, सूक्ष्मवस्त्र गालिताः, मरिचं, द्वितोलक मार्द्रक रसैः सप्तवारं भावना इति व्यवहारः, शुक्रस्थं=येषां स्वप्नदोषादिना शुक्रक्षयो भवति तेषां साधारणोपि ज्वरश्चिरकाल मवतिष्ठते तादृशज्वरोऽत्र शुक्रस्थशब्देन ज्ञेयः। अन्यथा—'शुक्रस्थस्तु न सिध्यति' इति वाक्य विरोधः स्यात्। अन्तर्धातुगतं=रसादि-धातुस्थं। भूतोत्थं = भूताभिषङ्गजम्। असाध्यं चेति औषधान्तरैरनिवृत्तम साध्यकल्पमित्यर्थः। वीर्यस्तम्भकरं= वीर्यरोधकम्, तथाहि—यो ज्वरः सप्ताहात्पश्चाद्वा पुनः पुनः प्रवर्त्तते, अल्पवेगतया स्वल्प कालस्थायी च। यत्र च समये समये अतिसारस्तत्र कृष्णजीरकचूर्णं मधुना। सज्वर विज्वर यकृत्प्लीहवृद्धौ पञ्चकोलक्वाथेनेत्यादि बोध्यम्। बृहज्ज्वरान्तक लौहस्य पाठे। नागार्जुनीयसिद्धप्रयोगतन्त्रोक्त इति जीवानन्द-कृत टीका॥ ३४०-३५०॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला ले, दोनों की कज्जली करे। फिर इसमें जायफल एक तोला, जावित्री एक तोला, स्वर्ण भस्म तीन माशे, चांदीभस्म आधा तोला, लौहभस्म आधा तोला, शुद्ध शिलाजीत, अभ्रकभस्म, भांगराचूर्ण, मोथा-चूर्ण, केशराजचूर्ण, अपामार्गचूर्ण, लौंगचूर्ण, हरड़चूर्ण, बहेड़ा-चूर्ण, आंवलाचूर्ण, दारचीनी चूर्ण, पिप्पलामूल चूर्ण, सेंधानमक

बिडनमक, गिलोय का चूर्ण, प्रायः "गिलोय का सत" डालने का व्यवहार है कण्टकारी चूर्ण, लशुन, धनियांचूर्ण, सफेद जीरा चूर्ण, काला जीरा चूर्ण, लालचन्दन चूर्ण, देवदारु चूर्ण, दारुहल्दी चूर्ण, इन्द्रजौ चूर्ण, चिरायता चूर्ण, सुगन्ध बाला चूर्ण एक २ तोला और मरिच चूर्ण दो तोला डाल सब द्रव्यों को एकत्र घोट अदरकके रसकी सात भावना दे। इसे सुखा शीशी में रख ले। इसको आधा माषा ले शहद से मीठा करके प्रातः काल खावे तो नाना प्रकार के ज्वर, पुराना ज्वर, शुक्रगत ज्वर दूर होते हैं। इस रस को देते समय विद्वान् वैद्य साध्य या असाध्य का विचार न करे, असाध्य में भी दे दे। धातुओं के अन्दर पहुंचे हुए ज्वर को भी यह नाश करता है—यह बात असन्दिग्ध है। भूतज्वर, श्रमज्वर, सन्निपात ज्वर और असाध्य ज्वर को भी यह ऐसे दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को, गरुड़ को देखकर जैसे सांप भाग जाते हैं वैसे ही इस रस की कृपा से उपद्रव सहित ज्वर भाग जाते हैं। यह रस बलदायक, पुष्टिकर, मन्दाग्निनाशक, वीर्यस्तम्भकारक, कामला—पाण्डुरोगनाशक है। इसे सेवन करने वालों को नित्य नारी से रमण करने की सामर्थ्य रहती है। वीर्य भी क्षय को प्राप्त नहीं होता। यह विविध प्रकार के प्रमेह, विविध ग्रहणी रोग तथा अन्य सब रोगों को भी भिन्न २ रोग नाशक विशेष अनुपानों से दूर करता है ॥२४०-२५०॥

अथ चूडामणिरसः—

मृतं सूतं प्रवालञ्च स्वर्णं ताराञ्च वङ्गकम्।
शुल्वं मुक्ता तीक्ष्णाभ्रं सर्वमेकत्र योजयेत ॥२५१॥

पिष्ट्वा जलेन वटिका कार्य्या वल्लप्रमाणतः।
धातुस्थं सन्निपातोत्थं ज्वरं विषमसम्भवम् ॥३५२॥
कामशोकसमुद्भूतं त्रिदोषजनितं तथा।
कासं श्वासञ्च विविधं शूलं सर्वाङ्गसम्भवम् ॥३५३॥
शिरोरोगं कर्णशूलं दन्तशूलं गलग्रहम्।
वातपित्तसमुद्भूतं ग्रहणीं सर्वसम्भवाम् ॥३५४॥
आमवातं कटीशूलमग्निमान्द्यं विसूचिकाम्।
अर्शांसि कामलां मेहं मूत्रकृच्छ्रादिकञ्च यत् ॥३५५॥
तत्सर्वं नाशयत्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान्।
चूडामणिरसो ह्येष शिवेन परिकीर्त्तितः ॥३५६॥

चूड़ामणिरसे—मृतसूतं=रससिन्दूरं, तारं=रजतं शुल्वं=ताम्रम्, तीक्ष्णं=खर सारादिषड्विधतीक्ष्ण लोहान्यतमम्, वल्लप्रमाणो=गुञ्जाद्वयेन, विषमसम्भवं=विषमज्वर निवृत्तावल्पदोषशेषतया यो ज्वरो हस्तपादनेत्रदाहादिकं करोति तादृशमित्यर्थः। सर्वाङ्गसम्भवं शूलम्=एतत्प्रायोयकृद्दोषेण दृश्यते। सर्वसम्भवां=त्रिदोषजां, कटीशूलं=वृक्कदोषेण स्त्रीणां गर्भाशयदोषेण च प्रायो भवति। दशमूलानुपानेन चात्र रसो देयः, दाह पाण्डु कामला हलीमके मध्वार्द्रकरसेन। जीर्णज्वरे गुडुचीपिप्पलीक्वाथेन वातप्रधानतायां विशेषोपकारकः कासश्वासयो द्राक्षावासायष्टीमधु·

ककाथेन, अर्शःसु त्रिफलाचित्रकचूर्णेन, मेहे कृच्छ्रे चामलकीस्वरसेन मधुमधुरेण देयः। शिवेनेति-तु शिवनामग्रहणमभ्युदयार्थम् मा. २ र. ॥३५१-३५६॥

भाषा—रससिन्दूर, मूगा भस्म, सुवर्ण, चांदी, वङ्ग, ताम्र, मोती, तीक्ष्ण लोह, अभ्रक इन सबकी भस्मों को सम भाग ले एक जगह मिला पानी से दो रत्ती की गोली बना शीशी में डाट लगा कर रख दे। इसको एक गोली सुबह शाम गिलोय के स्वरस से दे तो सप्त धातुगत सन्निपात ज्वर दूर होता है। विषमज्वर अच्छा होने के बाद हस्त पाद नेत्र दाह युक्त जो अल्प ज्वर होता है, उसमें दे। कामज, शोकज, त्रिदोषज आदि ज्वर, कास, त्रिविध श्वास, सर्वाङ्गगत शूल, शिरोरोग, कर्णशूल, दन्तशूल, गलग्रह, वातपित्त के रोग, सब दोषों से उत्पन्न ग्रहणी आमवत, कमर के शूल, मन्दाग्नि, विसूचिका, अर्श, कामला, मेह, मूत्रकृच्छ्र, तथा अन्यान्य रोगों को भी उसी प्रकार नष्ट करता है, जैसे विष्णु भगवान का चक्र राक्षसों को। यह चूड़ामणि रस शिव जी ने कहा है। मा० २ र. ॥३५२-३५७॥

अथ भानुचूड़ामणिः—

सुवर्णं रससिन्दूरं प्रवालं वङ्गमेव च।
लोहं ताम्रं तेजपत्रं यमानीं विश्वभेषजम् ॥३५७॥
सैन्धवं मरिचं कुष्ठं खदिरं द्विहरिद्रकम्।
रसाञ्जनं माक्षिकञ्च समभागञ्च कारयेत् ॥३५८॥

वारिणा वटिका कार्य्या रक्तिद्वयप्रमाणतः।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥३५६॥

भानुचूड़ामणौ-तेजपत्रम्=तेजपात इति, खदिरं=खदिरसा[र] द्विहरिद्रकम्=हरिद्रा दारुहरिद्रे तत्र हरिद्रा कन्दः, दारुहरिद्रा[याः] मूलत्वक् योज्या, रसाञ्जनम्=दारुहरिद्रात्वक् कृतो घनीभू[त] रसौत इति, सर्वज्वर कुलान्तकृदिति—रक्तपित्तज्वरे [वा]... स्वरसेन कासयुतज्वरे च मधुमधुरेण, मनः कम्पे नाड़ीग[ति] वृद्धौ च बला, मांसी, शालपर्णीकृतक्षीरपाकेन योज्यः ॥३५७-३[५६]॥

भाषा—स्वर्ण, रससिन्दूर, मूंगा, वङ्ग, लोह, ताम्र, तेज[पात] अजवायन, सौंठ, सैंधा नमक, मरिच, कूंट, खैरसार, हल[्दी] दारु हल्दी, रसौत, सोनामाखी, इन्हें सम भाग ले जल से पी[स] दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। इसे प्रातःकाल ही खावे तो स[ब] प्रकार के ज्वरों को दूर करता है। मा० २ र. ॥३५७-३५६॥

अथ बृहच्चूड़ामणि रसः—

कस्तूरिकाविद्रुमरौप्यलौहं तालं हिरण्यं रससिन्दुरश्च।
सुवर्णसिन्दूरलवङ्गमुक्ताः चोचं घनं माक्षिकराजपट्टम् ॥३[६०]॥
गोक्षूरजातीफलजातिकोषं मरीचकर्पूरशिखिग्रिवश्च।
प्रगृह्य सर्वं हि समं प्रयत्नादथाश्वगन्धाद्विगुणं हि वैद्यः ॥३[६१]॥
वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं मुनिसंख्यया।
निर्गुण्डीफञ्जिकावासा-रविमूलत्रिकण्टकैः ॥३६२॥

तद्वीर्यं कथयिष्यामि वातिकं पैत्तिकं ज्वरम् ।
कफोद्भवं द्विदोषोत्थं त्रिदोषजनित तथा ॥३६३॥
सन्ततं सततं हन्ति तृतीयकचतुर्थकौ ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च विषमं भूतसम्भवम् ॥३६४॥
नाशयेदचिरादेव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
चूड़ामणिरसो ह्येष शिवेन परिभाषितः ॥३६५॥

बृहच्चूड़ामणौ -- विद्रुमः=प्रवालः, तालम्=हरितालम्, हिरण्यम्=सुवर्णम्, सिन्दुरेति ह्रस्व उकारश्छन्दोनुरोधात्, चोचम्=दारुसिता, घनम्=अभ्रम्, राजपट्टम्=कान्तपाषाणम्, शिखिग्रिवम्=तुत्थम, मरीचे दीर्घ ईकार ग्रिवे ह्रस्व इकारश्च छन्दोनुरोधात । कस्तूर्यादिविशंतिद्रव्याणि समं=समानमानानि, अश्वगन्धाद्विगुणमेकभागापेक्षया । फञ्जिका=भार्गी, निर्गुण्ड्यादिपञ्चभिः मुनिसंख्यया=सप्तभावना प्रत्येकं देया । जीर्णविषमे पाण्डुतायां यकृद्दोषे बलपुष्ट्यर्थञ्च-योज्यः, भूतसम्भवमदृश्यजीवाणुजम् मा० १ र. ॥३६०-३६५॥

भाषा—कस्तूरी, मूंगा, चांदी, लौह, हरताल, स्वर्ण, रससिन्दूर, स्वर्ण सिन्दूर, लौंग, मोती, दालचीनी, अभ्रक, सोना माखी, कान्तलौह, गोखरू, जायफल, जावित्री, मरिच, कपूर, तूतिया एक एक भाग असगन्ध दो भाग पुनः निम्न औषधों के स्वरस वा क्वाथ से सात २ भावना दे। संभालू, भार्गी, वासा,

आंक की जड़ की छाल, गोखरू इससे वात, पित्त, कफ, द्विदोषज, त्रिदोषज, सन्तत, सतत, तृतीयक, चातुर्थिक, एक दिन का, दो दिन का, ये विषम ज्वर और अदृश्य जीवाणु जन्य ज्वर उसी प्रकार नष्ट होते हैं, जसे इन्द्र के वज्र से वृक्ष इस रस को शिव जी ने कहा है। मा० १ र. ॥३६०-३६५॥

अथ बृहज्ज्वरचूड़ामणिरसः—

स्वर्णं सुवर्णसिन्दूरं लौहं तारं मृगाण्डजाम् ।
जातीफलं जातीकोषं लवङ्गञ्च त्रिकण्टकम् ॥३६६॥
कर्पूरं गगनञ्चैव चोचं मरिच तालकम् ।
प्रत्येकं कर्षमानन्तु तुरङ्गश्च द्विकार्षिकम् ॥३६७॥
विद्रुमं भस्मसूतश्च मौक्तिकं माक्षिकं तथा ।
राजपट्टं शिखिग्रीवं सर्वं सञ्चूर्ण्य यत्नतः ।
खल्ले तु चूर्णमादाय भावयेत् परिकीर्त्तितैः ॥३६८॥
निर्गुण्डीफञ्जिका वासा-रविमूलत्रिकण्टकैः ।
ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥३६९॥

इति रसेन्द्रसारसंग्रहे ज्वराधिकारः ।

अत्र-योग द्वये द्रव्याणि भावनाद्रव्याणि च समानानि । अतो बृहच्चूड़ामणिं व्याख्ययैव वृहज्वरचूड़ामणेः पाठो व्याख्यातः। मरिचेत्यत्र मुषलेति काचित्कोऽपपाठः ॥३६६-३६९॥

॥ इत्यानन्दीटीकायां ज्वराधिकारः ॥

भाषा—उपरोक्त दोनों योगों का पाठ तथा भावना द्रव्य

समान हैं इसलिये बृहज्ज्वरचूड़ामणि की व्याख्या बृहचूड़ामणि-रस की व्याख्या से गतार्थ है ॥३६६-३६६॥

अथ ज्वरातिसार चिकित्सा ।

अथ मृतसञ्जीवनी वटी--

मागधी वत्सनाभश्च तयोस्तुल्यश्च हिङ्गुलम् ।
मृतसञ्जीवनी ख्याता जम्बीररसमर्दिता ॥१॥
मूलकस्य च बीजानां वटिका तुल्यरूपिणी ।
पानीया शीततोयेन ज्वरातिसारनाशिनी ।
विसूच्यां सन्निपाते च ज्वरे चैवातिदुस्तरे ॥२॥

मृतसञ्जीवन्याम्--ज्वरातिसारो रोगान्तरोपसर्गरूप एव प्रायोभवति, क्वचिच्छर्दिरप्यनेन सह दृश्यते। मागधी=पिप्पली, वत्सनाभं प्रथमं पक्वजम्बीरस्वरसेन मसृणं मर्दयित्वा तत्र मागधी चूर्णं हिङ्गुलञ्च देयम्। अत्र हिङ्गुलस्य भागद्वयं प्रदाय पूर्वोक्त (ज्व. श्लो. २) हिङ्गुलेश्वराद्विशेषः कृतः टीकागुणपाठश्च तत एव ज्ञेयः ।१-२।

भाषा--पीपल छोटी के तण्डुल १ भा., विष १ भा., हिङ्गुल शु. २ भा. ले पक्व जम्बीरी नीबू के रस से घोट तीन भावना दे मूली के बीज के समान गोली बना सुखा कर रख ले। ज्वरातिसार में ठंडे जल से तीन तीन घंटे बाद एक या दो

गोली अवस्थानुसार दे। इसी प्रकार हैजा, सन्निपात में भी दे, घोर ज्वर में या जाड़े से आने वाले ज्वर में (बारी के) पल मान दही के पानी से दे तो उक्त रोगों को नाश करती है ॥१-२॥

अथ आनन्दभैरवो रसः—

हिङ्गुलञ्च विषं व्योषं टङ्कणं गंधकं समम् ।
जम्बीररससंयुक्तं मर्दयेत् यामकद्वयम् ॥३॥
कासश्वासातिसारेषु ग्रहण्यां सान्निपातिके ।
अपस्मारेऽनिले मेहेऽप्यजीर्णे वह्निमांद्यके ।
गुञ्जामात्रः प्रदातव्यो रस आनन्दभैरवः ॥४॥

प्रसिद्धफलं प्रायो बहुषु रोगेषु प्रयोगार्हमानन्दभैरवमाह—हिंगुलमिति—अत्र जम्बीररसेन भावनात्रयं प्रहरद्वयमर्दनानन्तरं देयम्। कासादिसन्निपातान्तेषु मध्वार्द्रकरसेन, अपस्मारे वचाजलेन, सर्पगन्धाचूर्णेन तु चमत्करोति। अनिले–सर्वाङ्गशूले पर्णपत्ररसेन, आमवातेऽप्ययं प्रचरति। पूयमेहस्य तरुणावस्थायां विशिष्टमुपकरोति।॥ ३–४ ॥

भाषा—हिङ्गुल, सौंठ, मिर्च, पीपल, सोहागा, गन्धक सम भाग ले, दोपहर पक्व जम्बीर के रस से मर्दन कर पुनः तीन भावना जम्बीर रस की दे। १ रत्ती मात्रा की गोली बनावे। खांसी, श्वास, अतिसार, ग्रहणी, सन्निपात, अपस्मार (अपस्मार में वच चूर्ण या सर्पगन्धाचूर्णानुपान से विशेष लाभ होता है)

वातरोग में (सर्वाङ्गशूलादि) पान के रस से दे। सूजाक के प्रारम्भ में चन्दन घिसे जल से दे, अजीर्ण और अग्निमान्द्य में आनन्द भैरव रस को दे ॥३-४॥

अमृतार्णवो रसः—

हिंगुलोत्थो रसो लौहं टङ्कणं गन्धकं शटी।
धान्यक बालकं मुस्तं पाठाऽजाजी घुणप्रिया ॥५॥
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं छागीदुग्धेन पेषयेत्।
माषैका वटिका कार्या रसोऽयममृतार्णवः ॥६॥
वटिकां भक्षयेत्प्रातर्गहनानन्दभाषिताम्।
धान्यजीरकयूषेण विजयाशणबीजतः ॥७॥
मधुना छागीदुग्धेन मण्डेन शीतवारिणा।
कदलीमोचकरसैः कञ्चटद्रवकेण च ॥८॥
अतिसारं जयेदुग्रमेकजं द्वन्द्वजं तथा।
दोषत्रयसमुद्भूतमुपसर्गसमन्वितम् ॥९॥
शूलघ्नो वह्निजननो गृहण्यर्शोविकारनुत्।
अम्लपित्तप्रशमनः कासघ्नो गुल्मनाशनः ॥१०॥

अमृतार्णवे—शटी=कर्चूरः, पाठा=अम्बष्ठा, अजाजी=स्थूल जीरकमत्र, घुणप्रिया=अतिविषा, विजयाशणबीजत इति=विजया-पत्राणि शणबीजानि। सार्वविभक्तिकस्तसिः। मण्डेन=

'मण्डश्चतुर्दशगुणे' चतुर्दशगुणजले तण्डुलकृतो मण्डो भवति। कदली=रम्भा, मोचक रसः=शाल्मलीनिर्यासः, कञ्चटः=चौलाई इति, उपसर्गाः=उपद्रवाः। अम्लपित्ते आमलकीस्वरसेन हिमेन वा देयः ॥५-१०॥

भा०-हिङ्गुल से निकला पारा, लोह, सोहागा, गन्धक, कचूर, धनिया, नेत्र वाला, नागरमोथा, पाठा, जीरा, अतीस प्रत्येक का चूर्ण वा भस्म १-१ तोला लेकर बकरी के दूध में घोट १ माषा भर की गोली बनावे इसका नाम अमृतार्णव है। गहनानन्द ने इसे बनाया। इसकी एक गोली प्रातः निम्नलिखित अनुपानों में से किसी एक से दे। धनियां, जीरा, भांग की पत्ती, सन के बीज, मधु, बकरी का दूध, चांवलों का मण्ड, केले की जड़ का रस, मोचरस, चौलाई शाक। इससे एकज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, उपद्रवों से युक्त अतिसार दूर होता है। शूलनाशक है, अग्नि दीपक है, ग्रहणी, अर्श, अम्लपित्त, कास गुल्मरोग को नाश करता है ॥५-१०॥

सिद्ध प्राणेश्वरो रसः--

गन्धेशाभ्रं पृथग्वेद-भागमन्यच्च भागिकम्।
स्वर्जिटङ्कयवक्षाराः पञ्चैव लवणानि च ॥
वराव्योषेन्द्रबीजानि द्विजीराग्नियमानिकाः।
सहिंगुबीजसारञ्च शतपुष्पा सुचूर्णिताः ॥१२
सिद्धप्राणेश्वरः सूतः प्राणिनां प्राणदायकः।

माषैकं भक्षयेदस्य नागवल्लीदलैर्युतम् ॥१३॥
उष्णोदकानुपानञ्च दद्यात् तत्र पलत्रयम् ।
ज्वरातिसारेऽतिस्रुतौ केवले वा ज्वरेऽपि वा ॥१४॥
ज्वरे त्रिदोषजे घोरे ग्रहण्यादिगदेऽपि च ।
वातरोगे तथा शूले शूले च परिणामजे ॥१५॥

सिद्धवैद्याभिमतं सिद्धप्राणेश्वरमाह-गन्धेशाभ्रमिति—ईशः= सूतः, पृथग्वेदभागं=मिलितं द्वादशभागमित्यर्थः । अन्यत्= स्वर्जिरादिद्वात्रिंशतिद्रव्याणि, भागिकं=प्रत्येकमेको भागः, तत्र स्वर्जिः=स्वर्जिक्षारः (सोडा), टङ्कः=टङ्कणः, लवणानि (अ. १-१०४) व्याख्यातानि । वरा=त्रिफला, व्योषं=त्रिकटु, इन्द्रबीजानि, कुटजबीजानि, अग्निश्चित्रकः, बीजसारो=विडङ्गः । कज्जलीं विधाय अभ्रं च दत्वा स्वर्जिरादीनां क्वाथेन सप्तभाव- नेति सम्प्रदायः । अन्ये चूर्णं ददति । आध्माने पर्णपत्ररसेन, वातजग्रहणी प्रथमावस्थायां योज्यः । उष्णजलेन घर्मोद्गमं विधाय ज्वरं ह्रासयति । सामे ज्वरातिसारे कृमिजन्यातिसारे च पर्ण- पत्ररसेन दत्वा तदुपरि उष्णोदकं योज्यम । ॥११-१५॥

भाषा—गन्धक ४ तोला, पारा ४ तोला इनकी कज्जली कर अभ्रक भस्म ४ तोला डाले फिर सज्जी, यवक्षार, सोहागा, पांचों नमक, त्रिफला, त्रिकुटा, इन्द्रजौ, सफेद जीरा, काला जीरा, चीते के जड़ की छाल, अजवायन, हींग विडङ्ग, सौंफ प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण १-१ तोला मिला महीन पीसकर १ माशे की मात्रा पान

में रखकर खावे ऊपर से ३ पल गरम पानी दे। इससे ज्वराति-सार, अतिसार, केवल ज्वर, त्रिदोषज्वर, घोर ग्रहणी, वातरोग शूल, परिणामशूल अच्छे होते हैं ॥११-१५॥

अभ्रवटिका:—

अथ शुद्धस्य सूतस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च ।
प्रत्येकं कर्षमानन्तु ग्राह्यं रसगुणैषिणा ॥१६॥
ततः कज्जलिकां कृत्वा व्योषचूर्णं प्रदापयेत् ।
केशराजस्य भृङ्गस्य निगुण्ड्याश्चित्रकस्य च ॥१७॥
ग्रीष्मसुन्दरकस्याथ जयन्त्याः स्वरसं तथा ।
मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं तथा शक्राशनस्य च ॥१८॥
श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम् ।
दापयेद्रसतुल्यञ्च विधिज्ञः कुशलो भिषक् ॥१९॥
रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् ।
देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टङ्कण सम्भवम् ॥२०॥
शुभे शिलामये पात्रे घर्षणीयं प्रयत्नतः ।
शुष्कमातपसंयोगाद् वटिकां कारयेद् भिषक् ॥२१॥
कलायपरिमाणान्तु खादेत् तान्तु प्रयत्नतः ।
दृष्ट्वा वयश्चाग्निबलं यथाव्याध्यनुपानतः ॥२२॥

हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवां रुजम् ।
परं वाजीकरः श्रेष्ठो बलवर्णाग्निवर्धकः ॥२३॥
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट् ।
नातः परतरः श्रेष्ठो विद्यतेऽभ्ररसायनात् ॥२४॥
(चातुर्थिके ज्वरे श्रेष्ठः सूतिकातङ्कनाशनः ।)
भोजने शयने पाने नास्त्यत्रनियमः क्वचित् ।
दधि चावश्यकं भक्ष्यं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥२५॥

अभ्रवटिकायां—कज्जलिकां निर्माय व्योषचूर्णं कर्षत्रयं दत्वा केशराजादिदशद्रव्याणां प्रत्येकं कर्षमादाय यथायथं क्वाथं स्वरसं वा दत्वा ततो रसतुल्यं=कर्षमेकं मरिचचूर्णं, रसार्धं=मर्धकर्षं टङ्कणचूर्णं च दत्वा विमर्द्य—आतपे शोषयित्वा च कलायमानां वटीं विधाय खादेत्। ग्रीष्मसुन्दरो=गीमा इति, शक्राशनस्य= भङ्गायाः, सिद्धः=त्वरितगुणकरत्वेन प्रसिद्धोऽयं नागार्जुनयोगः। व्योषेत्यत्र व्योमेति पाठस्तु प्रमादात् ॥ १६–२५ ॥

भा०—पारा, गन्धक १–१ कर्ष ले कज्जली में १ कर्ष अभ्रक मिला त्रिकुटा ३ तोला देकर पुनः काला भांगरा, रुम्हाल्ल, गीमा शाक, जैंत, मण्डूकपर्णी तथा श्वेत कोयल इनके रस अलग २ एक २ कर्ष डाल कर घोटे। पुनः मरिचचूर्ण एक कर्ष, सोहागा ½ कर्ष दे साफ पत्थर के पात्र में घोट धूप में सुखा कर मटर के बराबर गोली बना रख ले। आयु, अग्नि, बल के अनुसार

इसकी मात्रा सेवन कर रोगानुसार अनुपान से खाँसी, श्वास क्षय, वात कफज रोग दूर होते हैं। यह उत्तम वाजीकर है, बल वर्ण, भूख को बढ़ाता है। ज्वर और अतिसार में यह योगराज प्रसिद्ध है। इस अभ्र रसायन से बढ़ कर श्रेष्ठ औषध नहीं। खाना पीना सोने का इसमें प्रतिबन्ध नहीं। नागार्जुन मुनि ने इसके सेवन में दही लेना आवश्यक बतलाया है॥ १६–२५॥

कनकसुन्दरोरसः—

हिंगुलं मरिचं गन्धं टङ्कणं पिप्पलीं विषम्।
कनकस्य च बीजानि समांशं विजयाद्रवैः।
मर्दयेद् याममात्रन्तु चणमात्रा वटीकृता ॥२६॥
भक्षणाद् ग्रहणीं हन्ति रसः कनकसुन्दरः।
अग्निमान्द्यं ज्वरं तीव्रमतिसारञ्च नाशयेत्।
दध्यन्नं दापयेत् पथ्यं सदा तक्रौदनं हितम् ॥२७॥

कनकसुन्दरे—कनकस्य–धत्तूरस्य सम्भवे कृष्णधत्तूरबीजानि देयानि। विजया=भङ्गा तद्द्रवैः–स्त्रीवृक्षद्रवैः। अतिसारे सर्वाङ्ग-शूले च कर्मण जीर[क]ण निर्गुण्डीरसेन मधुमधुरेण। योगोऽयं बहुसम्मतोऽनेकत्र प्रचरति तत्तदनुपानैः सिद्धप्राणेश्वरवत् ॥२६-२७॥

भा०—हिंगुल, मरिच, गन्धक, सुहागा; पीपल, विष, काले धतूरे के बीज समभाग ले, भांग के रस से एक प्रहर मर्दन कर पुनः तीन भावना विजया रस की दे तो चने के बराबर गोली

बना ग्रहणी, अग्निमान्द्य, ज्वर, तथा तीव्र ज्वरातिसार को नाश करता है। इसके सेवन में दही के साथ अन्न पथ्य दे या मट्ठे के साथ चावल हित हैं। कहीं भाँग के रस से मर्दन का विधान नहीं भी है ॥ २६-२७ ॥

कनकप्रभावटी--

सुवर्णबीजं मरिचं मराल-पादं
कणा टङ्कणकं विषञ्च।
गन्धं जयाऽद्भिर्दिवसं विमर्द्य
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां विदध्यात् ॥२८॥
(एषा) ज्वरातिसारग्रहणीं ज्वराग्नि-
मान्द्यं निहन्यात् कनकप्रभेयम्।
दध्योदनं भोज्यमनुष्णवारि
मांसं भजेत्तित्तिरिलावकानाम् ॥२९॥

कनकप्रभायां—सुवर्णबीजं-धतूरबीजम्. मरालपादं=हंसपदी, जयाऽद्भिः=भङ्गास्वरसैः, दिवसं-एकं दिनम्। अत्र अनुष्णवारि-शीतजलं पथ्यम्। तित्तिरलावकानाम्-तित्तिरिः प्रसिद्धः। लावको-लावा इति ॥२८-२९॥

भा०—धतूरे के बीज, मरिच, हँसराज, पीपल, सोहागा, विष, गन्धक सब सम भाग ले भांग के रस से एक दिन भर घोट रत्ती प्रमाण गोली बना सेवन करने से अतिसार, ग्रहणी,

ज्वर, भूख की कमी को यह कनकप्रभा दूर करती है। पथ्य इसमें दही, चावल, ठंडा जल, तीतर और लवे का मांस दे ॥२८-२९॥

कारुण्यसागररसः—

भस्मसूताद्द्विधा गन्धं तथा द्विघ्नं[1] मृताभ्रकम्।
दिनं सार्षपतैलेन पिष्ट्वा यामं विपाचयेत् ॥ ३० ॥
रसैर्मार्कवमूलोत्थैः पिष्ट्वा[2] यामं विपाचयेत्।
त्रिक्षारपञ्चलवण–विषव्योषाग्निजीरकैः ॥ ३१ ॥
सविडङ्गैस्तुल्यभागैरयं कारुण्यसागरः।
माषमात्रं ददीताऽस्य भिषक् सर्वातिसारके ॥ ३२ ॥
सज्वरे विज्वरे वाऽपि सशूले शोणितोद्भवे।
निरामे शोथयुक्ते वा ग्रहण्यां सान्निपातिके।
अनुपानं विनाप्येष कार्यसिद्धिं करिष्यति ॥ ३३ ॥

कारुण्यसागरे—रससिन्दूरस्य गन्धस्य अभ्रस्य च पृथक् भागद्वयम्। यामं=प्रहरमेकं पिष्ट्वा सार्षपतैलेन भर्जनयोग्येन लघुकटाहे विपाचयेत्। ततो मार्कवमूलरसैर्भृङ्गराजरसैर्यामं पिष्ट्वा विपाचयेत्। तदनु त्रिक्षारादिभिः प्रत्येकं सूततुल्यभागैर्योजयेत्। त्रिक्षारा=यव–स्वर्जि–टङ्कणाः, अग्नि=भल्लातकिञ्चित्रक इति तूचितम्। सशूले शोणितोद्भवे=जीर्णप्रवाहिकायामित्यर्थः। निरामे सशोथे ग्रहण्यामतिसारे चोपयुज्यते ॥ ३०–३३ ॥

---

१ द्वित्वम्, २ निर्यासैः संविमर्द्य च।

भाषा—रस सिन्दूर, गन्धक, अभ्र, दो दो भाग सरसों के तेल में घोट स्वेदन योग्य सरसों का तेल दे एक प्रहर तक लघु अग्नि दे। फिर भांगरे के रस में घोट पहिले की तरह पाक करे। कोई बालुका यन्त्र में पाक करते हैं। इसके बाद तीनों खार, पांचों नमक, विष, त्रिकुटा, चीता, जीरा, विडङ्ग इनमें से प्रत्येक २-२ भाग ले चूर्ण कर मिला १ माशा मात्रा से सब किस्म के अतिसार, ज्वरयुक्त हो या विना ज्वर का हो शूल और खून युत हो निराम हो या शोथयुक्त हो ग्रहणी में सन्निपात में भी विना अनुपान के भी काम करेगा ॥३०-३३॥

बृहत्कनकसुन्दरो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा।
स्वर्णबीजं समं मद्य भार्गीद्रावैर्दिनार्धकम् ॥ ३४ ॥
सूततुल्यं मृतश्चाभ्रं रसः कनकसुन्दरः।
अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति पित्तातिसारमुग्रकम् ॥ ३५ ॥

बृहत्कनकसुन्दरे-स्वर्णबीजं=कृष्णधत्तूरबीजम , भार्गीद्रावैः= भार्गीवल्कलक्वाथैः। सर्वे सूतसमानभागाः ॥३४-३५॥

भाषा—पारद, गन्धक, मरिच, सुहागा, काले धतूरे के बीज सब समभाग ले भार्गी के क्वाथ से आधा दिन घोट पारे के बराबर अभ्रक भस्म मिला बृहत्कनकसुन्दर की दो रत्ती की गोली उग्र पित्तातिसार को दूर करती है ॥३४-३५॥

मृतसञ्जीवनो रसः—

रसगन्धौ समौ ग्राह्यौ सूतपादं विषं क्षिपेत् ।
सर्वतुल्यं मृतश्चाभ्रं मर्द्यं धुस्तूरजैर्द्रवैः ॥३६॥
सर्पाद्दियाश्च द्रवैर्यामं कषायेणाथ भावयेत् ।
धातक्यतिविषा मुस्तं शुण्ठी-जीरक-बालकम् ॥३७॥
यमानी धान्यकं बिल्वं पाठा पथ्या कणान्विता ।
कुटजस्य त्वचं बीजं कपित्थं दाडिमं बलाम् ॥३८॥
प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात् कुट्टितं क्वाथयेत् जलैः ।
चतुर्गुणं जलं दत्वा यावत् पादावशेषितम् ॥३९॥
अनेन त्रिदिनं भाव्यं पूर्वोक्तं मर्दितं रसम् ।
रुद्ध्वा तद्वालुकायन्त्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥४०॥
मृतसञ्जीवनो नाम चास्य गुञ्जाचतुष्टयम् ।
दातव्यमनुपानेन चासाध्यमपि साधयेत् ॥४१॥
षट् प्रकारमतीसारं साध्यासाध्यं जयेत् ध्रुवम् ।
नागरातिविषा मुस्तं देवदारु कणा वचा ॥४२॥
यमानी बालकं धान्यं कुटजत्वक् हरीतकी ।
धातकीन्द्रयवौ बिल्वं पाठा मोचरसं समम् ।
चूर्णितं मधुना लेह्यमनुपानं सुखावहम् ॥४३॥

मृतसञ्जीवने—सूतपादं=रसचतुर्थांशम्, सर्पाद्दया=गन्धनाकुल्याः, द्रवैः=स्वरसैः, धातक्यादिसप्तदशद्रव्याणि प्रत्येकं कर्षमानं

चतुर्गुणे जले विपाच्य पादशेषं विधाय तेन त्रिदिनं भावना, शुष्के च बालुकायन्त्रे, क्षणं=तास्तु त्रिंशत्क्षणास्ते तु मुहूर्तो द्वादशास्त्रियाम्। अ.। मुहूर्तद्वादशभागकालम्, मृद्वग्निना स्वेदने तात्पर्यम्, अनुपाने तु नागरादिद्रव्यचूर्णं माषकं मधुना लेह्यम्। कुटजस्य बीजं=इन्द्रयवम्। आध्माने सति दारुषट्कलेपो विधेय ॥३६-४३॥

भाषा--पारा १ माशा, गन्धक, १ माशा, विष १/४ माशा सब के समान अभ्रभस्म ले धतूरा और सर्पाक्षी के रस से एक प्रहर घोट निम्नलिखित दवाओं को १-१ कर्ष ले कूट चौगुने जल में पका चतुर्थांश शेष रहने पर इस क्वाथ से तीन दिन तक पूर्वोक्त मर्दित रस को भावना दे। धाय के फूल, अतीस, मोथा, सौंठ, जीरा, नेत्रबाला, अजवायन, धनियां, बेलगिरी, पाठा, हरड़, पीपल छोटी, कुड़े की छाल, इन्द्रजौ, कैथ का गूदा, अनार का छिलका और खरेटी। फिर इस रस को बालुका यन्त्र में रख मृदु अग्नि से कुछ समय स्वेदन करे। इस मृतसञ्जीवन रस की चार रत्ती की गोली बना रोगानुसार अनुपान के साथ देने से असाध्य भी सिद्ध होते हैं। छै प्रकार के अतिसार साध्य हों चाहे असाध्य हों निश्चय अच्छे होते हैं। सौंठ, अतीस, मोथा, देवदार, पीपल, वच, अजवायन, नेत्रबाला, धनियां, कुड़े की छाल, हरड़, धाय के फूल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पाठा, मोचरस, सब का समभाग चूर्ण ३ मासा ले मधु से अनुपानरूप चटावे ॥३६-४३॥

प्राणेश्वरो रसः—

रसगन्धकमभ्रञ्च टङ्कणं शतपुष्पकम्।
यमानीजीरकाख्यञ्च प्रत्येकं कर्षयुग्मकम् ॥ ४४ ॥

कर्षमेकं यवक्षारं हिङ्गु पटुकपञ्चकम् ।
विडङ्गेन्द्रयवं सर्ज-रसकञ्चाग्निसंज्ञितम् ।
घृष्ट्वा च वटिका कार्य्या नाम्ना प्राणेश्वरो रसः ॥४५॥

प्राणेश्वरे—शतपुष्पकम्=मिसिः। सर्जरसकम्=शालनिर्यासः। अत्र स्वार्थे कः। अग्निसंज्ञितम्=चित्रकः। कृमिजे सशूले ज्वरातिसारे सामे आध्मानयुतेऽत्रोपकरोति ॥ ४४-४५ ॥

भा०—पारा, गन्धक, अभ्रक, सोहागा, सौंफ, अजवायन और जीरा प्रत्येक दो कर्ष, यवक्षार, हींग, पाँचों नमक, विडङ्ग, इन्द्रजौ, राल और चीते के जड़ की छाल प्रत्येक एक कर्ष एकत्र जल से घोट दो रत्ती की गोलियाँ बनावे। यह प्राणेश्वर रस है ॥ ४४-४५ ॥

ज्वरातिसारलक्षणम्—

पित्तज्वरे पित्तभवोऽतिसार-
स्तथातिसारे यदि वा ज्वरः स्यात् ।
दोषस्य दूष्यस्य समानभावात्
ज्वरातिसारः कथितो भिषग्भिः ॥४६॥

॥ इति ज्वरातिसारचिकित्सा ॥

ज्वरातिसारलक्षणमाह—पित्ते ति-दोषस्य वातादेः दूष्यस्य रसादेः समानभावादेकत्वात् ॥ ४६ ॥

भा०—यदि पित्तज्वर में पित्तातिसार हो या अतिसार में

ज्वर हो जाय तो दोष तथा दूष्य के समान होने के कारण वैद्यों ने उसे ज्वरातिसार कहा है ॥ ४६ ॥

अथ अतीसारचिकित्सा ।

दरदं कृतकर्पूरं मुस्तेन्द्रयवसंयुतम् ।
सर्वातीसारशमनं खाखसीक्षीरभावितम् ॥१॥

क्रमागतातिसारचिकित्सामाह— दरदमिति—दरदम्=हिङ्गुलम् । कृतकर्पूरम्=शुद्धकर्पूरम् ।
तच्छोधनं यथा—गोदुग्धे त्रिफलाक्वाथे भृङ्गद्रावे समांशके ।
मर्दयेद्याममात्रं तु कर्पूरं शुद्धिमाप्नुयात् । (यो. र.)

ऊर्ध्वपातितेन तु व्यवहारः । सम्प्रति तु विपण्यानीतमपि शुद्धमेव भवति, अतस्तेनापि व्यवहारो भवत्येव । खाखसीक्षीरम्=खाखसफलजं (पोस्तडोडी) दुग्धम् । तदलाभे समभागमहिफेनं दत्वा जलेन १ र० वटी विधेया । अत्र जातीफलमधिकं दत्वा कर्पूररस इति नाम क्रियते । टङ्कणमपि केचिद्ददते । फलाधिक्याय पुनरपिफलाधिक्यलाभाय स्फटिकां विषञ्च प्रत्येकमर्धभागं दत्वा कर्पूरेश्वरेति नाम क्रियते । तथाहि--त्रुटिततण्डुलाकृति न तु चूर्णितं रुमाहिंगुलं त्रिरात्रं निम्बूकरसेन भावयित्वा शुष्कं जलेनाऽनम्लतां यावत् क्षालयेत् । ततः शुष्कं मसृणीकृत्याऽहिफेनं दत्वा जलेन फेनवन्मर्दयेत् । एवमर्धभागं शुद्धं विषं जलेन पृथगेव मर्दयित्वा कर्पूरं दत्वा पुनरपि मसृणं विमर्द्य मुस्तकजातीफलेन्द्रयवटङ्कणानां प्रत्येकं चूर्णं समभागं, अर्धभागां स्फटिकाञ्च दत्वा

कृता वटी या शुष्का सति द्विरक्तिमाना भवति कर्पूरेश्वरस्य। उदरगुरुता, जिह्वामलिनता रक्तकफमलगन्धतृष्णादीनामल्पत्वे जातायाञ्च बुभुक्षायां पच्यमाना प्रवाहिकेति जानीयात्। अत्रास्य योगो युक्तः। अथवा रक्तकफमलैः सह पृथग् वा पूर्यमिव स्रावे निर्गच्छति अस्य प्रयोगो विधेयः। अपक्कावस्थायां च गुदशोथेन पुनः पुनः कुन्थने शूले आमनिर्गमे च त्रिश्चतुर्वा प्रत्यहमस्य प्रयोगे शूलादिशान्तिर्भवति। शूलशोथशान्त्यर्थमुदरे लेपसेकश्च विधेयः।

अन्ये तु—अपक्वप्रवाहिकायां बृहच्छङ्खवटीं कनकसुन्दरं च त्रिःप्रयुञ्जते तदन्ये चामावस्थायामानन्दभैरवकनकसुन्दरादिभिरामं विपाच्य कर्पूरेश्वरं ददते। बालानां छर्द्यतिसारे च मधुना चमत्करोति, रक्तातिसार ईषद्गोलमधुना। अत्राहिफेनयोगात्-बालबिल्वपेशी-प्रसारणी-पत्ररस-ईषद्गोलादिसारकानुपानेन न क्वचिदाध्मानानाहायाकल्पते, सुनिद्राञ्च जनयति। क्षयजप्रवाहिकायामपि यथोक्तानुपानेन दीयते। अत उक्तम्—सर्वातीसार नाशनमिति ॥ १ ॥

भा०—हिंगुल, शुद्ध कपूर, मोथा, इन्द्रजौ सब समान ले चूर्ण बना खसखस के दूध से भावना दे आधी रत्ती की गोली बना ले। इससे सब प्रकार के अतिसार शान्त होते हैं खसखस का दूध जहां अफीम की कृषि होती है वहाँ चैत्र वैशाख में मिलता है। इसके अभाव में समभाग अफीम ले पानी में घोल भावना दे। कपूर का ऊर्ध्वपातन कर लेने से वा आजकल बाजार में जो कपूर मिलता है वह शुद्ध ही होता है डाल सकते हैं ॥ १ ॥

अथ पूर्णचन्द्रोदयो रसः--

शुद्धञ्च तालकं लौहं गगनञ्च पलं पलम् ।
कर्पूरं पारदं गन्धं प्रत्येकं वटकोन्मितम् ॥२॥
जातीकोषमुरापत्रं शटीतालीशकेशरम् ।
व्योषं चोचं कणामूलं लवङ्गं पिचुसम्मितम् ॥३॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः ।
नानारूपमतीसारं ग्रहणीं सर्वरूपिणीम् ॥४॥
अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च परिणामजम् ।
रसायनवरश्चायं वाजीकरण उत्तमः ॥ ५ ॥

पूर्णचन्द्रोदये—गगनं=अभ्रम् । पलं=तोलक चतुष्टय । वटकोन्मितं-माषकाष्टकम् , मुरा–गन्धकुटी, तथा च-किञ्चित्पीता मुरा शस्ता मांसी पिङ्गजटाकृतिः । वै. श. सिं. पत्रं=तेजपत्रं शटी=कचूरं, केशरं=नागकेशरं चोचं=दारुसिता, पिचुसम्मितं=कर्षप्रमाणं षोडसमाषात्मकमिति यावत् मा. २ र. जीरकमधुना योज्यः ॥२-५॥

भाषा—शुद्ध हड़ताल, लौहभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक द्रव्य एक पल लें। कपूर, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, प्रत्येक द्रव्य आधा कर्ष लें। जावित्री चूर्ण, मुरा, मांसी चूर्ण, तेजपत्र चूर्ण, कचूर चूर्ण, तालीशपत्र चूर्ण, नागकेशर चूर्ण, सौंठ चूर्ण, मिरच चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, दारचीनी का चूर्ण, पिपलामूल चूर्ण, लौंग चूर्ण, एक २ कर्ष लें। कज्जली में सब द्रव्यों को उचित क्रम से मिला

जल से गोली बना लें। इसे गुरुदेव तथा ब्राह्मण की पूजा कर प्रातःकाल खाये तो नानारूप के अतिसार, सब प्रकार की ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, परिणामशूल नष्ट होते हैं। यह उत्तम वाजीकरण और रसायन भी है ॥२-५॥

अथ कणाद्यं लौहम्—

कणानागरपाठाभिस्त्रिवर्गत्रितयेन च ।
बिल्वचन्दनह्रीबेरैः सर्वातीसारजिद्भवेत् ॥६॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तामपि हन्ति प्रवाहिकाम् ।
नानेन सदृशं लौहं विद्यते ग्रहणीहरम् ॥ ७ ॥

कणादिलौहे—कणा-पिप्पली, नागरं-शुण्ठी, एतयोः-प्रत्येकं भागद्वयम्, त्रिवर्गत्रितयं त्रिकटु-त्रिफला-त्रिमदाः बिल्वं=बिल्वशलाटुपेशी, चन्दनं-रक्तचन्दनं ह्रीबेरं-नेत्रबाला इति, कणादिह्रीबेरान्तसप्तदशभागैस्तुल्यं लौहम्। जीर्णाऽतिसारेऽयं विशेषतः प्रवर्त्तते। सरक्तप्रवाहिकायामान्त्रिके मलेन सह रक्तस्रावे च तथा वातपित्तप्रधानग्रहण्यां वृद्धानां प्रवाहिकायां च मधुयुतमुस्तकदाडिमपत्ररसान्यतरानुपानेन, शोथातिसारे बिल्वपत्रकल्केन पाण्डौ कामलायां च आमरक्तयुतायां जीरकचूर्णमधुना प्रातः सायं प्रयोगः। सर्वोपद्रवसंयुक्तां प्रवाहिकोपद्रवाश्च, शूल-यकृत्प्रदाह-यकृत्स्फोटक-उण्डुकावद्रधि-छिद्रान्त्रोदरान्त्रपाकादयः। त्रिवर्गत्रितयेनेत्यत्र त्रिवर्गद्वितयेनेति पाठः।

सर्वातिसारजिदत्र लौहोऽतीसारजिदिति पाठः समुचितः। हन्ति प्रवाहिकामित्यत्र रक्तप्रवाहिकामिति पाठः क्वचित् ॥६-७॥

भा.–पिप्पली, सोंठ, पाठा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, विडंग, नागरमोथा, चीता, लाल, चन्दन, सुगन्धवाला, का चूर्ण समभाग ले और सब के बराबर लौहभस्म डाले। इसकी गोली बना रखे। इसे देने से सब अतसार दूर होते हैं। सब उपद्रवों से युक्त प्रवाहिका को भी यह लौह दूर करता है। इस 'कणाद्य लौह' से बढ़कर ग्रहणी रोग का नाश करने वाला और लौह नहीं है ॥६-७॥

अथ बृहद्गगनसुन्दरो रसः––

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं लौहञ्चापि वराटकम् ।
रूप्यं चातिविषं कर्षं समभागं प्रकल्पयेत् ॥ ८ ॥
धान्यशुण्ठीकृतक्वाथैर्भावयेच्च पृथक् पृथक् ।
गुञ्जाप्रमाणां वटिकां कारयेत् कुशलो भिषक् ॥९॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः ।
दग्धबिल्वं गुडेनैव कुर्य्यात्तदनुपानकम् ॥१०॥
अजादुग्धेन वा पेयं जम्बूत्वक्साधितं रसम् ।
अतीसारे ज्वरे घोरे ग्रहण्यामरुचौ तथा ॥ ११ ॥
सामे सशूलरक्ते च पिच्छास्रावे भ्रमे तथा ।
शोथे रक्तातिसारे च संग्रहग्रहणीषु च ॥ १२ ॥

बृहद्गगनसुन्दरे-वराटकं-कपर्दभस्म, रूप्यं-रौप्यभस्म, कर्ष-कर्षप्रमाणम्, समभागं-तुल्यभागम्, चतुर्दशतोलकधान्यशुण्ठी-कृतकाथेन सप्तभावना देया। दग्धबिल्वमर्धतोलक तोलमितगुडेन गुड़ेन देयः। जम्बूत्वगिति जम्बूपत्राणामप्युपलक्षणम्। जम्बूत्वक् साधिताऽजाक्षीरपाकानुपानेन देयः॥ १२॥

भाषा—शुद्ध पारा; शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, कौड़ीभस्म, चांदीभस्म, अतीस का चूर्ण, एक २ कर्ष ले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला सब को पीस कर धनियां और सोंठ के काढ़ों से पृथक् २ भावना दे। एक रत्ती प्रमाण की गोली बनावे। प्रात:काल गुरु देवता ब्राह्मणों का पूजन करके सेवन करे और कच्चे बेल को भूनकर गुड मिला अनुपान रूप से खावे। अथवा बकरी के दूध के साथ जामुन की छाल के काढ़े को अनुपान में पीवे। अथवा जामुन की छाल के रस में बकरी का दूध पका ले, उस दूध को पीवे यह रस अतिसार, घोर ज्वर, ग्रहणी, अरुचि, आम शूल और रक्त सहित पिच्छास्राव में भ्रम शोथ रक्तातीसार तथा संग्रहग्रहणी में लाभ करता है।

अथ लोकनाथो रसः—

भस्मसूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात्।
क्षिप्त्वा वराटिकागर्भे टङ्कणेन निरुद्ध्य च ॥१३॥
भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत्।
लोकनाथरसो नाम क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥१४॥

नागरातिविषामुस्तं देवदारुवचान्वितम् ।
कषायमनुपानन्तु सर्वातीसारनाशनम् ॥१५॥

लोकनाथे—सूतस्य भस्म=रससिन्दूरएकभागः, गन्धकाद्भागचतुष्टयमुभयमपि मसृणीकृत्य सूताच्चतुर्गुणेषु कपर्देषु विनिक्षिप्य टङ्कणं गोक्षीरगोमूत्राजादुग्धान्यतमेन वा कल्कीकृत्य तेन कपर्दमुखरोधनं कुर्यात । कपर्दलक्षणञ्च—

तुलनायां गुरुतरान् पञ्चगुल्मान् दशाब्धिजान् ।
वराटान् स्थूलपीतांश्च रसकर्मणि योजयेत् ॥

ततस्तान् शुष्कीकृतान् कपर्दकान् शरावसम्पुटे कृत्वा सन्धिरोधं विधाय बहिर्मृत्तिकयाऽऽलिप्य गजपुटे पचेत् । स्वाङ्गशीतं सकपर्दं चूर्णयेत् तोलकद्वयं नागरादिकं गृहीत्वा पलशेषकाथमनुपाययेत् । अत्र—

चतुर्गुञ्जो घृतैर्देयो विंशद्भिर्मरिचैस्तथा ।
जातीमूलपलैकन्तु छागीक्षीरेण पाचयेत् ॥

शर्कराम्भोयुतञ्चाऽनु पीत्वा कृच्छ्रहरं ध्रुवम् । र. यो. सा. इत्यधिकः पाठः । कफवातातिसारे शूले चायं विशेषतः प्रयुज्यते ।
॥ १३-१४ ॥

भाषा—रस सिन्दूर एक तोला, शुद्ध गन्धक चार तोला, दोनों को पीस कौड़ियों के पेट में भरकर उनका मुँह सुहागे से बन्द कर सुखा एक हांडी में रख ऊपर से मुँह बन्द कर लघुपुट में फूँक दे । स्वांग शीतल होने पर निकाल पीस ले । चार रत्ती

शहद से मिलाकर खावे। अनुपान में सोंठ, अतीस, मो
देवदार और वच; इनका काढ़ा बनाकर पीवे तो सब प्रकार
अतिसार दूर होता है।

चिन्तामणिरसः—

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं गन्धकं प्रतिकार्षिकम्।
चूर्णयेद्विपकर्षार्द्धं विषार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥ १६॥
मर्दयेत् खल्लमध्ये तु चाम्लेन गोलकीकृतम्।
गर्त्तं षडङ्गुलं कुर्य्यात् सर्वतो वर्त्तुलं शुभम् ॥१७॥
नागवल्ल्याः क्षिपेत् पत्रमादौ पात्रे च गोलकम्।
आच्छाद्य तच्च पात्रेण रुद्ध्वा कुक्कुटके पचेत् ॥१८॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सपत्रञ्च विशेषतः।
कर्षार्द्धं मरिचं दत्त्वा कर्षार्द्धं तिन्तिडीफलम् ॥१९॥
गुञ्जामितां वटीं कुर्य्यात् चिन्तामणिरसो महान्।
अतिसारे त्रिदोषोत्थे संग्रहग्रहणीगदे।
अनुपानं विधातव्यं यथादोषानुसारतः ॥ २०॥

चिन्तामणौ—प्रतिकार्षिकं=प्रत्येकं कर्षमानम्, विषकर्षार्द्धं=
विषस्यार्धतोलकम्। तिन्तिड़ीफलं=पक्वतिन्तिड़ीफलं-इमली
गूदा इति, तिन्तिड़ीफलशब्दं जयपालपरकमपि व्याख्यानयन्त्यन्ये
विषार्धं तोलकचतुर्थांशमित्यर्थः, अम्लेन=निम्बूकरसेन काञ्जिके
वा मर्दयेत्। ततो गोलकीकृतं गोलकं वर्त्तुलं विधाय गर्त्तं

ङ्गुलमिति भूमौ विस्तारपरिणाहेन षडङ्गुलमानं गर्त्त=खातम्। तथा च रसपद्धतौ—

भूगर्त्तेऽङ्गुलिषट्कखातपरिधौ, संस्तीर्णताम्बूलिका-पर्णैरिति।

आदौ=प्रथमं, नागवल्याः, पत्रं=पलाशं क्षिपेत्तत्र गर्त्ते इति शेषः। ततः पात्रे पत्रमये पात्रे नागवल्लीपत्रे भूगर्त्तस्थे, इत्यर्थः। पात्रशब्दोऽत्र पर्णवाचकः—यथाह विश्वः— पात्रं स्रुवादौ पर्णे च राजमन्त्रिणि चेष्यते, इति।

गोलकं स्थापयित्वेति शेषः। तच्च गोलकं, पात्रेण—नागवल्लीपत्रेणाच्छाद्य ततो (नागवल्याः पत्रं गोलकस्य सर्वतो प्रदेयम्) रुद्ध्वा=शरावसम्पुट इत्यर्थः। सर्वतः सन्धिबन्धनं कृत्वा, कुक्कुटके दत्त्वा कुक्कुटसंज्ञकं सहदलैः (भै. र. व.) पुटे पचेत्। तल्लक्षणं च--

अधः षडङ्गुलं खातं चतुर्दिक्षु च तादृशम।
एतत्कुक्कुटनामानं पुटं विद्याद्भिषग्वरः। (वै. श. सि.)

पचेत्—द्विप्रस्थमानैरारण्यकोपलैरिति ज्ञेयम्।

गर्त्तायाञ्च ततो देयं पुटमारण्यकोपलैरिति।
र. यो. सा.।

यत्वत्र—गजपुटे, इति पाठः, आलस्यवशाट्टीकाकारैस्तदनुसारिभिर्भाषाकारैश्च व्याख्यातः स विचारणीयस्तथा हि-- 'पारदादिकं सर्वं काञ्जिकेन मर्दयित्वा वर्तुलं पिण्डं कुर्यात्। तस्य च पिण्डस्याऽभ्यन्तरे षडङ्गुलमितं गर्त्तं कृत्वा ताम्बूलपत्रं निदध्यात्, ततस्तस्य पिण्डस्य सर्वाङ्गं ताम्बूलदलेन छादयित्वा, मृत्कर्पटाभ्यन्तरे निरुध्य मृदा— संलिप्य च गजपुटे पचेत्' इति गोपालकृत-

टीकानुकारिणी जीवानन्दकृता टीका। द्वितोलकमानमपि कां मत्वा पारदादिपञ्चद्रव्याणां सार्धसप्ततोलकमितगोलके कथं नाम आनाहपरिणाहेन सर्वतो वर्तुलं शुभं षडङ्गुलं गर्त्तं सम्भवेदिति सुधिभिर्विचारणीयम्। यतः–खाते····पुटं–दत्वा कुक्कुटसंज्ञकं स सञ्चूर्ण्य तत्र क्षिपेत्' इति रसकामधेनु पाठे कुक्कुटपुटविधानस्य स्पष्टोल्लेखात् गजपुट इति पाठो भ्रममूलक एव ॥ १६-२० ॥

भा.–शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, एक २ कर्ष लेकर कज्जली करे। फि ताम्रभस्म एक कर्ष शोधित विष आधा कर्ष, इमली चौथाई क सब कांजी से घोटकर एक गोला बनावे। भूमि में छह अंगु चौड़ा तथा गहरा गोल गढ़ा बनाकर उसमें पान के पत्ते बिछादे उस पर गोला रखकर उसके ऊपर भी पान के पत्ते से ढक दे ऊपर कुक्कुट पुट दे। स्वांगशीतल होने पर उस गोले को पत्तों समे चूर्ण करले। फिर उसमें मरिच चूर्ण आधा कर्ष और तिन्तिड़ी फल आधा कर्ष मिलाकर घोट ले। एक रत्ती की गोली बनाले यह चिन्तामणि रस है। इसे अतिसार में, त्रिदोषज संग्रहणी में दे। इसके साथ दोषानुसार भिन्न २ अनुपान दे ॥१६-२०॥

अहिफेनवटिका—

अहिफेनं सखर्जूरं घृष्ट्वा गुञ्जैकमात्रकम्।
रक्तस्रावमतीसारमतिवृद्धं विनाशयेत् ॥२१॥

अहिफेनवटिकायां–खर्जूरं=पिण्डखर्जूरं, तच्च कृष्णमुत्तमं भवति अहिफेनं खर्जूरञ्च समभागेनादाय जलेन घृष्ट्वा गुञ्जामात्रा व

अतिवृद्धे रक्तस्रावेऽतिसारे मुस्तारसेन दाड़िम्बपत्ररसेन वा मधुना देया। शूलक्लेशशान्त्यर्थं मादकताकरणायाऽपि दीयते, शूलनिवृत्तौ मृदुविरेचनेन अहिफेनजः स्तम्भनदोषः परिहरणीयः। प्रवाहिकायामीषद्गोलेन दधिशर्करायुतेन यथेष्टं प्रदीयताम् ॥ २१ ॥

भाषा—शुद्ध अफीम, पिण्डखजूर, सम भाग पीस एक रत्ती की गोली बनावे। इसे सेवन करने से रक्तस्राव और अति बढ़े हुए अतिसार का नाश होता है ॥२१॥

महागन्धकं सर्वाङ्गसुन्दरश्च—

रसगन्धकयोः कर्षं ग्राह्यमेकं सुशोधितम्।
ततः कज्जलिकां कृत्वा मृदुपाकेन साधयेत् ॥ २२ ॥
जातीफलं तथा कोषं लवङ्गारिष्टपत्रके।
(सिन्धुवारदलञ्चैव एलाबीजं तथैव च) ॥२३॥
एषाञ्च कर्षमात्रेण तोयेनाथ विमर्दयेत्।
मुक्तागृहे पुनः स्थाप्यं पुटपाकेन साधयेत् ॥२४॥
घनपङ्कं बहिर्लिप्त्वा पुटमध्ये निधापयेत्।
गुञ्जाषट्कप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥२५॥
एतत्प्रोक्तं कुमाराणां रक्षणाय महौषधम्।
ज्वरघ्नं दीपनञ्चैव बलवर्णप्रसाधनम् ॥२६॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयत्येव प्रवाहिकाम्।
सूतिकाञ्च जयेदेतद्रक्तार्शो रक्तसम्भवम् ॥२७॥

पिशाचा दानवा दैत्या बालानां विघ्नकारकाः।
यत्रौषधवरस्तिष्ठेत् तत्र सीमां न यान्ति ते ॥२८॥
बालानां गदयुक्तानां स्त्रीणाञ्चैव विशेषतः।
महागन्धकमेतद्धि सर्वव्याधिनिसूदनम्।
विना पाकेन सर्वाङ्गसुन्दरोऽयं प्रकीर्त्तितः ॥२९॥

सर्वाङ्गसुन्दरापरपर्याये महागन्धके--शुद्धयो रसगन्धकयोः प्रत्येकं कर्षं गृहीत्वा मसृणां कज्जलीं विधाय तां सम्प्रदायात्तण्डुलोदकेन जलेन वा पङ्कवत्कृत्वा लौहपात्रे जलशोषणं यावत्स्वेदयित्वा, मतान्तरे पर्पटीं विधाय ततो जातीफलादीनां प्रत्येकं कर्षं चूर्णं दत्वा जलेन मर्दयित्वा यथोक्तमाना वटी विधेया सर्वाङ्गसुन्दरस्य।

यदि विशिष्टगुणाधानस्येच्छा तदा गोलं विधाय मुक्ताशुक्तिसम्पुटे संस्थाप्य कोमलकदलीपत्रैरावेष्ट्य बहिः सर्वतो घनपङ्केनालिप्य च पुनर्मृत्कर्पटेन वेष्टयित्वा करीषाग्निमध्ये (त्रिंशदारण्यकोपलैरिति सम्प्रदायः) पुटपाकेन साधयेत्।

यदा च गोलस्य बहिरारक्तता गन्धकस्यामोदः पाकगन्धश्च प्रतीयते पुटपाकद्रव्याणीषद्भ्रष्टानि न च स्वगन्धास्वादहीनानि स्युस्तदा वह्नेराकृष्य सम्पुटं विभिद्य तदवस्थायामेव षड्रक्तिप्रमाणा वटी विधेया महागन्धकस्य।

अत्र केचन-गुणवर्धनाय पुटपाकानन्तरं प्रसारणीपत्ररसेन वटीं कुर्वन्ति तद्रसानुपानेनैव प्रवाहिकायां ददते। अन्ये सिन्धुवारदल-

मेलाबीजं च प्रत्येकं कर्षमात्रया जातीफलादिना सह योजयन्ति ज्वरे च सिन्धुवारदलरसमरिचानुपानेन ददते। तदन्ये कर्षचतुर्थांशमहिफेनं दत्वा रक्तिमानां वटीं कुर्वन्ति, प्रवाहिकायां चमत्करोतीत्थमीषद्गोलैरण्डतैलहरीतक्याद्यन्यतमानुपानेन।

अरिष्टपत्रकं=कोमलनिम्बपत्रम्। कुमाराणां=पंचवर्षीयबालानां रक्षणाय-ज्वरादिरोगनिवृत्तये, महौषधं=कमप्यपकारं विहाय सद्यः फलदत्वेन। बलवर्णप्रसाधनं=प्रसाध्यतेऽङ्गमनेनेति प्रसाधनं= सौन्दर्यकरम् रसादिशुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत्खलु-ओजस्तदेव बलमित्युच्यते तत्र बलेन स्थिरोपचितमांसता सर्वचेष्टास्वप्रतिघातः स्वरवर्णप्रसादो बाह्यानामाभ्यन्तराणाञ्च करणानामात्मकार्यप्रतिपत्तिर्भवति। सु. सू. १५-१३। वर्ण=शब्देन यशो गुणश्च वाच्यः। रक्तसम्भवं=रक्तवर्धकम, पिशाचादयो बालोपद्रवविशेषा अदृष्टकारणाः रसोयं वक्ष्यमाणग्रहणीशार्दूल- (ग्रहणी ४३|४७) रसात्स्वर्णमपहाय सम्पादितः प्रतीयते।

विशेषः—पुराणप्रवाहिकायां तोलकद्वयरक्ततण्डुलीयकरसमधुना प्रातः सायं प्रयुक्तो नातिचिराय फलति। एवमरलुत्वक्पुटपाकरसेनापि। उदरशूले ज्वरे रक्तातिसारे पित्तप्रकोपे च भृष्टजीरकमधुना गुड़बिल्वेन वा बालवृद्धप्रसूतानां प्रत्यहं त्रिःप्रयुक्तोऽतीवगुणकरः।

र. यो. सा. टीकायान्तु—अयं रसो बकुलत्वगर्धकर्षेण सह माषोन्मित्या दत्तो रक्तप्रदरेऽतिकार्यकारी भवति, सायं मध्याह्ने पूर्वाह्णे चेति प्रयोगः कर्तव्यः। दिनत्रदिमाभ्यन्तर एव महाप्रवाहं रुणद्धीति ॥ २२-२६ ॥

भाषा—शुद्ध पारद गन्धक १-१ तोला ले कज्जली बना उसका मृदुपाक करे। जायफल, जावित्री, लौंग, नीम की कोंपल, सिम्हालू के पत्ते छोटी इलायची के बीज १-१ तोला ले कज्जली मिला सबको जल से घोटकर गोला बना मोती की सीप के सम्पुट में रख पुटपाक करे (पुटपाक में ३० जङ्गली उपलों की आंच का विधान है) सम्पुट के बाहर एक अंगुल मोटा गाढ़ी मिट्टी का लेप करे। पुटपाक में गन्धक की गन्ध आने लगे पुटपाक द्रव्य थोड़ा भुन जाय जलने न पावे इसका ध्यान रहे। पुटपाक तोड़ कर ६ रत्ती की गोली बना प्रतिदिन सेवन करावे। यह ५ वर्ष तक के बच्चों के लिये उत्तम औषधि है ज्वर दूर करती है, दीपन है, बल, खूबसूरती को बढ़ाती है। कठिन ग्रहणी रोग और प्रवाहिका को अच्छा करती है, सूतिकारोग रक्तार्श इनको दूर करती है। जहां यह औषध रहती है वहां पिशाच दानव दैत्य बच्चों को हानि पहुँचाने वाले रोग नहीं होते। रोगी बच्चों और स्त्रियों के सब रोगों को यह महागन्धक नाश करता है यदि इसका पुटपाक न किया जाय तो सर्वाङ्गसुन्दररस कहते हैं ॥२२-२६॥

ग्रहण्यां ये रसाः प्रोक्तास्तेऽतीसारे प्रकीर्त्तिताः ॥३०॥

ग्रहण्यां वक्ष्यमाणरसानतिसारेऽतिदिशन्नाह-ग्रहण्यामिति ॥३०॥

रसेन्द्रसारसंग्रहे—आनन्दीटीकायामतीसारः।

भाषा—ग्रहणीरोगाधिकार में जो रस कहे गये हैं वे अतिसार में प्रयोग कराये जाते हैं ॥ ३० ॥

इति रसेन्द्रसारसंग्रहे द्वितीयाध्यायेऽतीसारचिकित्सा।

अथ ग्रहणीरोगचिकित्सा ।

जातीफलादिग्रहणीकपाटः—

जातीफलं टङ्कणमभ्रकञ्च धुस्तूरबीजं समभागचूर्णम् ।
भागद्वयं स्यादहिफेनकस्य गन्धालिकापत्ररसेन मर्द्यम् ॥१॥
चणप्रमाणा वटिका विधेया यत्नाद्विदध्याद् ग्रहणीगदेषु ।
सामेषु रक्तेषु सशूलकेषु पक्वेष्वपक्वेषु गुदामयेषु ॥२॥
रोगेषु दद्यादनुपानभेदैर्मधुप्रयुक्तां ग्रहणीगदेषु ।
पथ्यं सदध्योदनमत्र देयं रसोत्तमोऽयं ग्रहणीकपाटः ॥३॥

क्रमप्राप्तां ग्रहणीरोगचिकित्सामाह—जातीफलमिति— गन्धालिका=प्रसारणी, ग्रहणीगदेषु=सर्वविधग्रहणीगदे, यत्नात् सततशयनलघुपथ्यादिग्रहणीरोगहराऽनुपानादि विदध्यात्= प्रयोजयेत्, अनुपानभेदैस्तत्तद्रोगहरानुपानैः । असत्याध्माने रक्तातिसारस्य प्रथमावस्थायां प्रसारणीपत्ररसेन प्रत्यहं त्रिः प्रदेया । अतिसारप्रवाहिकाग्रहणीषु पुनः पुनर्मलप्रवृत्तौ ईषद्गोलमधुना । अत्र धत्तूरस्य शोथहरत्वादहिफेनस्य धत्तूरस्य च वेदनाहरत्वात् शोथवेदनायुतेषु रोगेषु प्रयोगोऽस्य सफलः स्यात् ॥ १-३ ॥

भाषा—जायफल चूर्ण, भुना सुहागा, अभ्रकभस्म, शुद्ध धतूरे के बीज, एक २ तोला ले । शुद्ध अफीम दो तोला लें । प्रसारणी के रस से घोट छोटे चने के समान गोली बनालें । ग्रहणी में, आम में, खून आने में, तथा शूलयुक्त पक्व या अपक्व ग्रहणी रोग,

अतीसार तथा बवासीर में भिन्न २ अनुपानों से इस गोली को दें। ग्रहणी रोग में शहद से दें और पथ्य में दही चावल दें। इसका नाम ग्रहणीकपाट है ॥ १–३ ॥

अपरः ग्रहणीकपाटो रसः—

टङ्कणक्षारगन्धाश्म—रसं जातीफलं तथा ।
बिल्वं खदिरसारञ्च जीरकञ्च मधूलिका ॥४॥
कपित्थस्तक्रबीजञ्च तथा चोरकपुष्पकम् ।
एषां शाणं समादाय श्लक्ष्णचूर्णञ्च कारयेत् ॥५॥
बिल्वपत्रककार्पास–फलं शालिञ्च–दुग्धिकाम् ।
शालिञ्चमूलं कुटजं त्वचं कञ्चटपत्रकम् ॥६॥
सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।
रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेत् दिवसत्रयम् ॥७॥
दधिमण्डं ततः पेयं पलमात्रप्रमाणतः ।
अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धतां जयेत् ॥८॥
आमशूलं ज्वरं कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम् ।
रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्य्यं नैवात्र युक्तितः ॥९॥
कृष्णवार्त्ताकुमत्स्यञ्च दधि तक्रञ्च शस्यते ।
ज्ञात्वा वायोः कृतिं तत्र तैलं वारि प्रदापयेत् ॥१०॥

अपरग्रहणीकपाटे–टङ्कणं=भ्रष्टटङ्कणम्, क्षारो=यवक्षारः। गन्धाश्मा=गन्धकम्। रसं=पारदम्। खदिरसारः=कत्था इति, जीरकं=श्वेतजीरकम्, मधूलिका=मूर्वा, एतत्स्थाने श्वेतधूनकमिति पाठान्तरे, श्वेतधूनकं=सर्जरसः (राल इति) कपिहस्तकबीज=आत्मगुप्ताबीजम्, चोरकपुष्पकं=शङ्खपुष्पी चोरकपुष्पकस्थाने-अवाक्पुष्पिकावकपुष्पकमिति च पाठान्तरे। शाणं=माषकचतुष्टयं समादाय शेषद्रव्याणि पटगालितानि कृत्वा कज्जल्या मेलयित्वा च, श्लक्ष्णचूर्ण-मसृणचूर्णं कारयेत्। ततो बिल्वादिपत्रस्वरसेन क्रमेणभावना। कर्पासफलं=तूलशिम्बी, शालिञ्चो=लोहमारको, जलपिप्पलीत्यन्ये, दुग्धिका=दुद्धीति ख्याता, शालिञ्चमूलं=जलपिप्पलीमूलम्। कुटजत्वक् प्रसिद्धा, कञ्चटो=जलतण्डुलीयः जलचौलाई–इति ख्यातः। मा. १ र. बहुपुस्तकसम्वादात्। र. यो. सा. तु–माषकैकप्रमाणेनेति पाठः। दधिमण्डं=दधिजलम्। पलप्रमाणत=स्तोलकचतुष्टयम, योगशताक्रान्तां योगशतैरप्यजितामुद्धता=मुत्कटां, आमशूल=प्रवाहिकाजनितम्। शोथं=श्वयथुम्। रक्तस्रावकरद्रव्यं=उष्णतीक्ष्णद्रव्यमस्य प्रयोगे न योज्यम्। कृष्णवार्ताकुः=कृष्णवृन्ताकः, तक्रं चेत्यत्र तैलमिति पाठान्तरम्। वायोः कृतिं=वायूपद्रवं ज्ञात्वा तैलं वारि च प्रयोजयेत्। महास्रोतसि क्षतसम्भवे जीर्णप्रवाहिकायामुदुम्बरपत्ररसमधुना प्रयोज्या। ग्रहणीकपाटनामा कपाटघटनादिव, इति रसरत्नाकरेऽधिकः पाठः॥ ४–१०॥

भाषा–भुना सुहागा, यवक्षार, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, जायफल चूर्ण, बेल का गूदा, कत्था, जीरे का चूर्ण, मूर्वामूल,

कौंच के बीज तथा शङ्खिनी का चूर्ण, एक २ शाण लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर चूर्ण करें। बेल के पत्ते, कपास के फल, शालिञ्चशाक, दूधी, शालिञ्चमूल, कुटज की छाल दालचीनी जलचौलाई, इन सब के स्वरस या क्वाथ से घोटकर एक २ रत्ती की गोली बनावें। रोगी तीन दिन खावे और ऊपर दही का मण्ड एक पल पीवे। सैकड़ों योगों से भी जो ग्रहणी दूर न हुई हो वह इस योग से दूर होती है। आमशूल, ज्वर, खांसी, श्वास, शोथ, प्रवाहिका, इन रोगों को भी दूर करता है रक्तस्राव करने वाले पदार्थों को इसे सेवन करने के समय न खावे। काला बैंगन, मछली, दही, छाछ, इन सबको पथ्य में खा सकते हैं। वायु के कर्म वा लक्षण को जानकर अथवा रोग में वायु की हेतुता को जानकर तेल वा जल का व्यवहार करे।

जातीफलाद्या वटिका—

अभ्रस्य सूतस्य च गन्धकस्य प्रत्येकशो माषचतुष्टयञ्च।
विधाय शुद्धोपलपात्रमध्ये सुकज्जलीं वैद्यवरः प्रयत्नात् ॥११॥
जातीफलं शाल्मलिवेष्टमुस्तं सटङ्कणं सातिविषं सजीरम्।
प्रत्येकमेषां मरिचस्य शाण–प्रमाणमेकं विषमाषकञ्च ॥१२॥
विचूर्ण्य सर्वाण्यवलोड्य पश्चात् विभावयेत् पत्ररसैरमीषाम्।
वंशाभ्रभद्रोत्कटकञ्चटानामिन्द्राशनकेन्द्राशनकश्च जम्बू॥
जयन्तिका दाडिम–केशराजौ अविद्धकर्णाऽपि च
भृङ्गराजो विभाव्य सम्यक् वटिका विधेया ॥१३॥

कोलास्थिमानाथ यथानुपानं सामं निहन्त्यत्र बहुप्रकारम् ।
कुर्याद्विशेषादनलप्रवृद्धिं कासञ्च पञ्चात्मकमम्लपित्तम् ॥१४॥
इयं निहन्याद् ग्रहणीं प्रवृद्धामभ्यस्यजीयाद् गुदजानसाध्यान् ।
असारकत्वं त्वतिसारमुग्रं श्वासं तथा पाण्डुमरोचकञ्च ॥१५॥
चिरोद्भवां संग्रहकोष्ठदुष्टिं जयेद्भृशं योगशतैरसाध्याम् ।
विवर्जनीयास्त्विह भृष्टमत्स्या मत्स्यस्तथा पाण्डुरवर्ण एव ।
रम्भाफलं मूलमथो दलञ्च बुधैर्विधेयं न कदाचिदत्र ।
जातीफलाद्या वटिका विधेया यशोऽर्थिनो वैद्यवरस्य हृद्या ।
अनेकसम्भावितमर्त्यलोका नानाविधव्याधि-पयोधि-नौका।१६

जातीफलाद्या वटिकामाह—अभ्रस्येति=अभ्रकभस्मनः, प्रत्येकश=एकैकस्य माषचतुष्टयं=शाणप्रमाणम् , शुद्धोपलपात्रमध्ये=प्रस्तर-खल्वे, सुकज्जलीं=मसृणां कज्जलीं विधाय, अभ्रं दत्वा शाल्मलीवेष्टं=मोचरसः, शाल्मलिशब्दो ह्रस्वान्तोप्यस्ति, मुस्तं=मोथा इति, जातीफलादयो मरिचान्ताः प्रत्येकं सूतसमानभागाः, माषकं विषस्य च पृथगेव मसृणं मर्दयित्वा शेषाणि विचूर्ण्य पटगालितानि कृत्वा मेलयेत्, ततो वंशादिस्वरसेन क्वाथेन वा यथालाभं सम्भावना । वंशः=बाँस इति, आम्रं=आम इति भद्रोत्कटो=भद्रमुस्ता, प्रसारणी च, कच्छटो=जलतण्डुलीयः, इन्द्राणिका=निर्गुण्डी, 'निर्गुण्डीन्द्रा-णिकेत्यपि' कोषः। सिम्हालू इति, इन्द्राशनकः=भङ्गा, जम्बूजयन्तिके प्रसिद्धे । केशराजभृङ्गराजौ=शुक्लकृष्णभेदेन ज्ञेयौ । अविद्धकर्णा=पाठा 'पाठाम्बष्ठाविद्धकर्णी' कोलास्थिमाना बदरास्थिप्रमाणा, सामं=आमयुतम् । यथानुपान=मनुपानभेदेन, बहुप्रकारं=बहुविधं, स्त्रीविकारं=प्रसूतारोगम् , श्वयथुम्=शोथं, चिराभ्यासात् , गुद-जानर्शांसि जयेत् । आमानुबन्धं=जीर्णप्रवाहिकाजनितामित्यर्थः ।

उग्रम्=घोरम्, योगशतैः=बहुभिः सिद्धयोगैः; अस्याः प्रयोगे वर्जनीयानाह—दुष्टमत्स्या=विकृतमत्स्याः, तथा श्वेतवर्णमत्स्याः, रम्भाफलमूलदलानि च। हृद्या=हृदयाय हिता। अनेकसम्भावित-मर्त्यलोका, अनेके=बहवः सम्भाविताः स्वस्थीकृता मर्त्यलोकाः=मनुष्यलोका यया सा, नानाविधव्याधिपयोधिनौका=अनेकविधा व्याधय एव पयोधिस्तत्र नौकाः-स्तरिः॥ ११-१६॥

भाषा—शुद्ध पारा चार माषा, शुद्ध गन्धक चार माषा लेकर पत्थर के खरल में कज्जली करे। फिर अभ्रकभस्म चार माषे मिलाकर घोट दें। अनन्तर जायफल, मोचरस, मोथा, भुना सुहागा, अतीस, जीरा, मिरच का चूर्ण एक २ शाण लें। और शोधित विष एक माषा लेकर सब को मिला चूर्ण करे। फिर आगे लिखी बूटियों के पत्तों के रस से भावना दे—बांस, आम, भद्रमुस्ता, चौलाई, इन्द्रायन, भांग, जामुन, जयन्ती, अनार, केशराज, पाठा, भांगरा, इन में से प्रत्येक द्रव्य के रस से भावना देकर बेर की गुठली के समान गोली बना ले। इसका नाम जातीफलाद्या वटी है। यह अनेक प्रकार के आमातिसार आदि साम दोषों तथा वायुरोगों को दूर करती है। अग्नि बहुत बढ़ाती है। पांचों प्रकार की खांसी, अम्लपित्त, असाध्य ग्रहणी, पुरानी प्रबल संग्रहणी, अल्पसारक अतिसार, उग्र अतिसार, श्वास, पाण्डु, अरुचि को हटाती है। चाहे सैंकड़ों योग ठीक न कर सके हों परन्तु यह पुरानी सँग्रहणी को ठीक कर देती है। यह मर्त्यलोक में बहुत आदृत है, अतः यह अनेकविध व्याधि-रूपी समुद्र में नौका के समान है। मात्रा—२ रत्ती है॥११-१६॥

पूर्णकलावटी—

रसं गन्धं घनं लौहं धातकी पुष्पबिल्वकम् ।
विषं कुटजबीजञ्च पाठाजीरकधान्यकम् ॥१७॥
रसाञ्जनं टङ्कणञ्च शिलाजतु पलं तथा ।
फलं जातीफलं मुस्ता प्रत्येकं तोलकत्रयम् ॥१८॥
भेकपर्णी पञ्चमूली बलाकुञ्चटदाडिमम् ।
भृङ्गाटं केशरं जम्बू दधिमस्तु जयन्तिका ॥१९॥
केशराजो भृङ्गराजः प्रत्येकं तोलकद्वयम् ।
द्विमाषा वटिका कार्या तक्रेण परिषेविता ॥२०॥
इयं पूर्णकला नाम ग्रहणीगदनाशिनी ।
शूलघ्नी दाहशमनी वह्निदा ज्वरनाशिनी ।
भ्रमच्छर्दिच्छेदकरी संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥२१॥

पूर्णकलावट्याम्—घन=मभ्रम्, विल्वं=विल्वशलाटुपेशी, कुटजबीजं-इन्द्रजौ इति । रसादिशिलाजत्वन्तानां प्रत्येकं पलं ग्राह्यम् । फलं-त्रिफला प्रत्येकं तोलकत्रयम् । एवं जातीफलमुस्तयोश्च । भेकपर्ण्यादि-भृङ्गराजान्तषोडशद्रव्याणां प्रत्येकं तोलकद्वयम् पञ्चमूली कनीयसी ग्राह्या । बला-खरेटी इति दाडिमं-दाडिमफलत्वक्, भृङ्गाटकं-सिंगाड़ा इति, केशरं-नागकेशरम्, जम्बू-जामुन इति वृक्षत्वक् दधिमस्तु-दही का पानी इति, कज्जलीं विधाय शेषद्रव्याणां चूर्णं दत्वा माषकद्वयमिता वटी जीरकमुस्तकचूर्णमधुना

देया। मलस्य पक्वावस्थायां छागीदुग्धेन, पित्तप्रधानसंग्रहण्यां मल द्रवतायां च प्रदेया। पथ्यं च केवलं तक्रम् ॥ १७-२१ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक, लौहभस्म, धाय फूल, बेल का गूदा, शोधित विष, इन्द्रजौ, पाठा, जीरा, धनि रसौत, भुना सुहागा, शुद्ध शिलाजीत, जायफल, मोथा, एक पल लें। कज्जली शेष द्रव्य मिला दें और हरड़ चूर्ण, बहेड़ा चू तथा आंवला चूर्ण, तीन २ तोला मिलाकर खरल करें। फि इसमें मण्डूकपर्णी, छोटी पञ्चमूली, बला, जलचौलाई, अना दाना, सिंघाड़ा, नागकेशर, जामुन की छाल, जयन्ती, केशरा भांगरा का चूर्ण दो २ तोला डालें। तथा दही का पानी तोला डालकर, भली प्रकार खरल करें। दो माषा की गो बनाकर तक्र से सेवन करे तो यह पूर्णकला नाम की वटी ग्रह रोग को दूर करती है। शूल नाश करती, दाह शान्त कर अग्निदीपन करती, ज्वर नाश करती एवं भ्रम वमन त सँग्रहग्रहणी को काट गिराती है ॥१७-२१॥

वज्रकपाटो रसः—

पारदं गन्धकञ्चैव अहिफेनं समोचकम्।
त्रिकटु त्रैफलञ्चैव सममेकत्र कारयेत् ॥२२॥
भङ्गाभृङ्गद्रवैश्चैतद् भावयेच्च पुनः पुनः।
रक्तित्रयं ततश्चास्य मधुना सह भक्षयेत्।
असाध्यां ग्रहणीं हन्ति रसो वज्रकपाटकः ॥२३॥

वज्रकपाटे—मोचकं-शाल्मलीनिर्यासः, भङ्गा-विजया, भृङ्गो-भृङ्गराजः, स च कृष्णो ग्राह्यः। एतयोर्द्रवः-स्वरसः काथो वा। पुनः पुनरिति सप्तवारम्। रक्तित्रयमिति-व्यवहारस्तु-रक्तिमात्रया। दधि-शर्करा, ईषद्गोलानुपानेन प्रवाहिकायां रक्तामशूलप्रवृत्तौ चमत्करोति, सर्वाङ्गशूले निगुण्डीपत्ररसेन योज्यः ॥ २२-२३ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध अफीम, मोचरस, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, एक २ तोला लें। सब द्रव्य मिलाकर भांग के रस और भांगरे के रस से सात सात वार भावना दे तीन रत्ती की गोली बना लें। इसे शहद से खाने से असाध्य ग्रहणी रोग भी दूर होता है। इसका नाम वज्रकपाट रस है ॥२२—२३॥

जातीफलरसः—

पारदाभ्रकसिन्दूरं गन्धं[१] जातीफलं समम्।
कुटजस्य फलञ्चैव धूर्त्तबीजानि टङ्कणम् ॥२४॥
व्योषं मुस्ताऽभया चैव चूतबीजं तथैव च।
बिल्वकं[२] सर्जबीजञ्च दाडिमी[३]फलवल्कलम् ॥२५॥
एतानि समभागानि निक्षिपेत् खल्लमध्यतः।
विजया[४]स्वरसेनैव मर्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥२६॥

१—विषम्, २—बिल्वमातङ्गबीजानि,
३—दाडिमीमातुलुङ्गजैः ४—कपित्थः

गुञ्जाफलप्रमाणान्तु वटिकां कारयेद्भिषक् ।
एकां कुटजमूलत्वक्–कषायेण प्रयोजयेत् ॥२७॥
आमातिसारं[१] हरते कुरुते वह्निदीपनम् ।
मधुना[२] बिल्वशुण्ठेन रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥२८॥
शुण्ठीधान्यकयोगेन चातिसारं निहन्त्यसौ ।
जातीफलरसो ह्येष ग्रहणीगदनाशनः ॥२९॥

जातीफले—सिन्दूरं-रससिन्दूरम्, चूतबीजं-आम्रफलमज्जा बिल्वकं-बिल्वशलाटुः, सर्जबीजं-शालबीजं, दाड़िमीफलवल्कलं प्रसिद्धम् । पारदादीनां समभागानां श्लक्ष्णचूर्णितानां विजया स्वरसेन गुञ्जाप्रमाणां वटीं कुटजमूलत्वक्कषायेण मधुयुतेन, आमा-तिसारे योज्या । रक्तातिसारे रक्तयुतग्रहण्यां च बिल्वशुण्ठी चूर्णेन केवले अतिसारे शुण्ठीधान्यकक्काथेन । असावित्यनन्तरम्-जातीफलरसात्प्राक् सविशेषानुपानैश्च ग्रहणीषु प्रयोजयेत् । इत्यधि पाठः । (र. यो. सा.) ॥ २४–२९ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, अभ्रकभस्म, रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक जायफल, इन्द्रजौ, शुद्ध धतूरे के बीज, भुना सुहागा, सोंठ, मिर्च पिप्पली, मोथा, हरड़, आम की गुठली की गिरी, बेल का गूदा शाल के बीज, अनार के फल का छिलका, समभाग लें । कज्जली में अन्य द्रव्य मिला लें । बाद में भांग के स्वरस या क्वाथ से घोट एक रत्ती की गोली बना कुटज की जड़ की छाल के क्वाथ

१–आमग्रहणिकायाम् २—तक्रेण मधुना । पाठान्तराण्येतानि ।

से पीवें तो आमातिसार नष्ट होता है, तथा अग्नि प्रदीप्त होती है। इसे शहद और बेल की गिरी से मिलाकर दें तो खून की ग्रहणी को अच्छा करता है। सोंठ और धनियें के योग से अतिसार को दूर करता है। यह जातीफल रस ग्रहणीरोग को नाश करता है ॥२४-२६॥

ग्रहणीगजेन्द्रवटिका—

रसगन्धकलौहानि शङ्खटङ्कणरामठम् ।
शटीतालीशमुस्तानि धान्यजीरकसैन्धवम् ॥३०॥
धातक्यतिविषा शुण्ठी गृहधूमो हरीतकी ।
भल्लातकं तेजपत्रं जातीफललवङ्गकम् ॥३१॥
त्वगेला बालकं बिल्वं मेथी शक्राशनं समम् ।
छागीदुग्धेन वटिका रसवैद्येन कारिता ॥३२॥
गहनानन्दनाथेन भाषितेयं रसायने ।
वटी गजेन्द्रसंज्ञेयं श्रीमता लोकरक्षणे ॥३३॥
ग्रहणीं विविधां हन्ति ज्वरातिसारनाशिनी ।
शूलगुल्माम्लपित्तानि कामलाश्च हलीमकम् ॥३४॥
बलवर्णाग्निजननी सेविता च चिरायुषी ।
कण्डूं कुष्ठं विसर्पश्च गुदभ्रंशं क्रिमिं जयेत् ॥३५॥
माषद्वयां वटीं खादेच्छागीदुग्धानुपानतः ।
वयोऽग्निबलमावीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥३६॥

ग्रहणीगजेन्द्रवट्याम्—रामठं=हिङ्गु, शठी=कर्चूरः, तेजपत्रं=तेजपात इति, शक्राशनं=विजया, समं=समभागानि, छागीदुग्धेन=अजादुग्धेन, बलवर्णाग्निजननी=बलदा, वर्णदा, अग्निदा चेत्यर्थः। सेविता-चिरकालमिति शेषः। चिरायुधी=दीर्घायुःप्रदा, गुदभ्रंशं=गुदनिस्सरणम। दीर्घकालिकप्रवाहिकायां भवति गुदभ्रंशः। त्रुटिवर्धनं=अल्पमात्रया वर्धनम। पित्तातिसारे=पित्तश्लेष्मातिसारे च पुनः पुनर्द्रवमले जीर्णवातातिसारे वा मुस्तकरसमधुना, पक्वे च छागीदुग्धेन प्रयोज्या, इति सम्प्रदायज्ञाः॥३०-३६॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म, शंखभस्म, भुना सुहागा, हींग, कचूर, तालीशपत्र, मोथा, धनियां, जीरा, सेंधानमक, धाय के फूल, अतीस, सोंठ, रसोईघर का धुंआ, हरड़, शुद्ध भिलावा, तेजपात, जायफल; लौंग; दारचीनी; छोटी इलायची; सुगन्धबाला; बेल का गूदा; मेथी, शुद्ध भांग के बीज, समभाग लें। पहले कज्जली करें। फिर सबको मिला बकरी के दूध से पीस गोली बना लें। श्रीमान् गहनानन्द ने यह गजेन्द्रवटी लोकोपकार के लिये रसायन में कही है। यह विविध प्रकार की ग्रहणी; ज्वरातीसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक रोग नाश करती है। बल वर्ण और अग्नि को बढ़ाती है। आयु को बढ़ाती है। खाज, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश, क्रिमिरोग, इन सब की नाशक है। दो माषे की गोली बकरी के दूध से सेवन करें। अथवा उम्र तथा अग्निबल को देखकर अवर मात्रा से प्रारम्भ कर थोड़ा २ मात्रा को युक्ति पूर्वक बढ़ाना चाहिये ॥ ३०-३६॥

पीयूषवल्लीरसः—

सूतमभ्रं गन्धकञ्च तारं लौहं सटङ्कणम् ।
रसाञ्जनं माक्षिकञ्च शाणमेकं पृथक् पृथक् ॥३७॥
लवङ्गं चन्दनं मुस्तं पाठा जीरकधान्यकम् ।
समङ्गाऽतिविषा लोध्रं कुटजेन्द्रयवं त्वचम् ॥३८॥
जातीफलं विश्वविल्वं कनकं दाडिमीच्छदम् ।
समङ्गा धातकी कुष्ठं प्रत्येकं रससम्मितम् ॥३९॥
भावयेत् सर्वमेकत्र केशराजरसैः पुनः ।
चणकाभा वटी कार्य्या छागीदुग्धेन पेषिता ॥४०॥
अनुपानं प्रदातव्यं दग्धविल्वं समं गुडैः ।
हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं चिरजामपि ॥४१॥
आमसम्पाचनो सम्यग् वह्निवृद्धिकरस्तथा ।
पीयूषवल्लीनामायं ग्रहणीरोगनाशनः ॥४२॥

पीयूषवल्लीरसे—तारं=रजतम्, रसाञ्जनं (ज्व० ३५७), शाणं=माषकचतुष्टयम् । चन्दनं=रक्तम्, समङ्गा=छुईमुई इति लोके, विश्वं=नागरं, कनकं=धत्तूरबीजम्, दाडिमीच्छदं=दाडिमीपत्रम् । रससम्मितं=पारदतुल्यम् । कज्जल्या सह शेषद्रव्याणि मेलयित्वा भृङ्गराजरसेन सप्तभावना । ततश्छागीदुग्धेनापि सप्तभावना । मात्रा चणकमाना । दग्धविल्वं=भर्जितामविल्वपेशी, गुड़ः=

पुराणः। चिरजायामचिरजायां प्रवाहिकायां सरक्ते सामे निरामे वाऽतिसारे ज्वरशोथयुते वा यकृद्वृद्धौ, प्रसूतायाः सज्वरोदरामये केवले वा ज्वरेऽस्य प्रयोगो वृद्धानुमतः। अन्त्रक्षये यथावस्थानुपानेन मुस्तारसजीरकचूर्णविल्वशुण्ठीकाथाद्यन्यतमानुपानेन दीयते। विशेषगुणपाठस्तु–भै० र० व० तो ज्ञेयः॥ ३७–४२॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, चांदीभस्म, लौहभस्म, भुना सुहागा, रसौत, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सब एक२ शाण लें। लौंग, लाल चन्दन, मोथा, पाठा, जीरा, धनियां, लाजवन्ती, अतीस, लोध, कुड़े की छाल, इन्द्रजौ, दारचीनी, जायफल, सोंठ, बेलगिरी, शुद्ध धतूरे के बीज, अनार के पत्ते मंजीठ, धाय के फूल, कूठ का चूर्ण एक २ शाण लें। केशराज के रस से सात वार भावना दें। फिर बकरी के दूध में पीसकर चने के समान गोली बनालें। इसे खिलाकर ऊपर से आग में भुना हुआ बेल का गूदा और गुड़ खिलाओ। इससे सब प्रकार के अतीसार तथा पुरानी ग्रहणी तक भी ठीक होती है। यह रस ग्रहणी रोग-नाशक है। आमपाचन, अग्निवर्धक इसको पीयूषवल्ली कहते हैं॥३७–४२॥

ग्रहणीशार्दूलरसः—

रसगन्धकयोश्चापि कर्षमेकं सुशोधितम्।
द्वयोः कज्जलिकाँ कृत्वा हाटकं षोडशाँशतः॥४३॥
लवङ्गं निम्बपत्रं च जातीकोषफले तथा।

एतेषां कर्षचूर्णेन सूक्ष्मैलां सह मेलयेत् ॥४४॥
मुक्तागृहे तु संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ।
गुञ्जापञ्चप्रमाणेन प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥४५॥
सूतिकां ग्रहणीरोगं हरत्येष सुनिश्चितम् ।
अर्शोघ्नो दीपनश्चैव बलपुष्टिप्रसाधनः ॥४६॥
कासश्वासातिसारघ्नो बलवीर्यकरः परः ।
दुर्वारं ग्रहणीरोगमामशूलं च नाशयेत् ।
संसारलोकरक्षार्थं पुरा रुद्रेण भाषितः ॥४७॥

ग्रहणीशार्दूलरसस्तु—महागन्धक (अतिसारे २२–२६) व्याख्यया बोध्यः । सूतिकाग्रहण्याजीर्णावस्थायामामजन्यशूले च भ्रष्टजीरकमधुना योज्यः ॥ ४३–४७ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गधन्क, प्रत्येक १ कर्ष ले, दोनों की कज्जली करें । स्वर्ण भस्म को कज्जली से सोलहवां भाग डालें । लौंग का चूर्ण, नीम के पत्ते, जावित्री, जायफल, छोटी इलायची के बीज, इनमें से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कर्ष मिलावें । सब को बारीक पीस कर सीपों में भर कर लघुपुट में पाक करें । इस रस को पांच रत्ती लेकर प्रतिदिन खाये तो सूतिका तथा ग्रहणी रोग को अवश्य दूर करता है, बवासीर को नाश करता तथा अग्निदीपन करता है । बल पुष्टि करता है सौन्दर्यकर है कास श्वास अतीसार को नाश करता है । बल वीर्य बढ़ाता है ।

दुःसाध्य ग्रहणी रोग तथा आमशूल को नाश करता है। संसार के भले के लिये रुद्र भगवान् ने पहले इसे कहा था ॥ ४३-४७॥

श्री वैद्यनाथवटी—

शाणं रसस्य संगृह्य काञ्जिकेन तु शोधयेत् ।
चित्रकस्य रसेनापि त्रिफलायाश्च बुद्धिमान् ॥४८॥
रसार्द्धं गन्धकं शुद्धं भृङ्गराजरसेन वै ।
द्वाभ्यां संमूर्च्छनं कृत्वा स्वरसैः शाणसम्मितैः ॥४९॥
खल्लयेच्च शिलाखण्डे क्रमशो वक्ष्यमाणकैः ।
निर्गुण्डीमधुकश्वेताकुठेरग्रीष्मसुन्दरैः ॥५०॥
भृङ्गाब्दकेशराजैश्च जयेन्द्राशनकोत्कटैः ।
सर्षपाभां वटीं कृत्वा दद्यात्तां ग्रहणीगदे ॥५१॥
सामवातेऽग्निमान्द्ये च ज्वरे प्लीहोदरेषु च ।
वातश्लेष्मविकारेषु तथा श्लेष्मगदेषु च ।
अम्लतक्रादिसेवां च कुर्वीत स्वेच्छया बहु ॥५२॥
श्रीमता वैद्यनाथेन लोकानुग्रहकारिणा ।
स्वप्नान्ते ब्राह्मणस्येयं भाषिता लिखिता न तु ॥५३॥

वैद्यनाथवट्याम्—रसस्य=पारदस्य, काञ्जिकेन=रसषोडशांशेन, शोधयेत् । तथैव चित्रकेण त्रिफलयाऽपि, रसार्द्धं=मर्धशाणम्-मापद्वयमिति यावत् । भृङ्गराजरसेन शोधनं कुर्यात् । ततः कज्ज-

लिकां विधाय निर्गुण्ड्यादि–एकादशद्रव्याणां प्रत्येकं शाणमानेन स्वरसेन क्वाथेन वा त्रिर्भावयेत्। मधुकं=मधुयष्टी, श्वेता=श्वेतापराजिता सफेद फूल की कोयल इति, कुठेरको=वटपत्रः 'कुठेरोऽन्यः पर्णासो विल्वगन्धकः' (रा. नि.) ग्रीष्मसुन्दरकः शाकविशेषः, हरमल इति र. यो. सा. भाषा, तन्न रमणीयम्। अब्दो=मुस्तकः, जया=जयन्ती, इन्द्राशनो=भङ्गा, उत्कटः=इक्षुः। उत्कटः शरो इक्षुश्च अत्र कार्श्यहरत्वादिक्षुर्ग्राह्यः। उत्कटकः सिंहलीपिप्पलीत्यादिव्याख्याने प्रमाणं मृग्यम्। लिखिता न तु–अत्र लिखिताऽपि चेति पाठान्तरम् ॥ ४८–५३ ॥

भाषा—पारा एक शाण लेकर कांजी के साथ मर्दन कर शुद्ध करे। फिर चीते के क्वाथ से और फिर त्रिफला के क्वाथ से शुद्ध करे। भाँगरे के रस से शुद्ध गन्धक आधा शाण ले पारे में मिला कज्जली करे। इसे संभालू, मुलहठी, श्वेत-अपराजिता, तुलसी, ग्रीष्मसुन्दरक, भाँगरा, मोथा, केशराज, जयन्ती, भाँग, इक्षु इन में से प्रत्येक के रस को एक २ शाण लेकर भावना दे सरसों के समान गोली बना ग्रहणी, आमवात, अग्निमान्द्य, ज्वर, प्लीहा, उदर रोग, वातश्लेष्मज विकार तथा श्लेष्मरोगों में दे। खटाई, तक्र आदि का इसमें इच्छानुसार खूब सेवन करे। श्रीमान् परोकारी लिखित नामक वैद्यनाथ ने इसे स्वप्न के अन्त में प्रातःकाल ब्राह्मण को बताया था–इसलिये इसका नाम वैद्यनाथ वटी है।
॥ ४८–५३ ॥

रसपर्पटिका—

याऽम्लपित्ते विधातव्या गुडिका च क्षुधावती।
तत्र प्रोक्तविधा शुद्धौ समानौ रसगन्धकौ ॥ ५४ ॥

सम्मर्द्य कज्जलाभौ तु कुर्य्यात् पात्रे दृढाश्रये ।
ततो बादरवह्निस्थ-लौहपात्रे द्रवीकृतम् ॥ ५५ ॥
गोमयोपरिविन्यस्त-कदलीपत्रपातनात् ।
कुर्य्यात् पर्प्पटिकाकारमस्य रक्तिद्वयं क्रमात् ॥५६॥
रक्तिद्वादशकं यावत् प्रयोगः प्रहरार्द्धतः ।
तदूर्ध्वं बहुपूगस्य भक्षणं दिवसे पुनः ॥५७॥
तृतीय एव मांसाज्य-दुग्धाद्यत्र विधीयते ।
वर्ज्यं विदाहिस्त्रीरम्भा-मूलं तैलञ्च सार्षपम् ॥५८॥
कृष्णमत्स्याम्बुजखगांस्त्यक्त्वोन्निद्रः पयः पिबेत् ।
ग्रहणीक्षयकुष्ठार्शःशोथाजीर्णविनाशिनी ॥५९॥
रसपर्पटिका ख्याता निबद्धा चक्रपाणिना ॥६०॥

जनैः सिद्धवैद्यैश्चादृतां सिद्धफलां रसपर्पटिकामाह—याऽम्लपित्त इति । अम्लपित्ते क्षुधावती गुडिका निर्माणाय—जयन्त्या (श्लो० १६ गन्धकम् (१७-१८, इत्यादिना प्रोक्तविधा=वर्णितप्रकारेण, शुद्ध समानौ=समानमानौ रसगन्धकौ गौणपक्षे तु—हिंगुलाकृष्टपारदघृत दुग्धशुद्धगन्धककज्जल्याऽपि व्यवहारः । दृढाश्रये=दृढः=स्थूलो मर्दन सहश्च--दृढः स्थूलबलयोः ७ । २ । २० । स्थूले बलवति च दृढशब्दं निपात्यते । तथाविधे आश्रये पात्रे=खल्वे कटाहे वा संमर्द्य=मसृणं कज्जलीं विधाय, तावन्मर्दनमनयोर्यावन्न कणोऽपि दृश्यते सूते । पश्चा त्कज्जलसदृशं चूर्णम् । (सूक्ष्मदर्शकयन्त्रे-(माईक्रसकोप)णाप्यदृश्य

पारदगन्धककणम् ।) कज्जलाभौ=अतीवमसृणचिक्कणकृष्णवर्णौ, कुर्यात्। ततो बादरवह्निस्थलौहपात्रे (घृताभ्यक्ते) बदरीवृक्षोद्भव-कोकिलाग्निना मात्रया तप्ते लौहपात्रे, द्रवीकृतम् 'निर्धूमवदराङ्गारे न्यस्तं विलाप्य तैलसमम्' तैलवद्द्रवीभूतम्। गोमयस्य=गोमलस्य 'महिषीमलविन्यस्ते' इति वचनान्महिषीमलमप्युचितमेव। उपरि=ऊर्ध्वम्, विन्यस्ते=स्थापिते घृतलिप्ते च, कदलीपत्रे=मृदुकदलीपत्रे 'मृर्द्ना ढालयेदित्युक्तेः।' पातनात् ढालनात्। ततस्तत्क्षणमेव पूर्वप्रस्तुतगव्यघृतलिप्तकोमलकदलीपत्रपोट्टलीकृतगोमयेन पीडयेत्। तदनु सन्धिरोधनं सर्वतस्तथा विधेयं यथा कुतोऽपि पर्पट्या धूम-निर्गमो न स्यात्। पर्पटिकाकारं=पर्पटसदृशं कुर्यात्। शीते च गोमयमपसार्य पर्पटीं ग्राहयेत्। संरक्षेच्च काचकूपिकायाम्। 'लौही-स्थितमवशिष्टं कठिनं तन्न ग्रहीतव्यम्'; सद्यः प्रस्तुतकज्जल्या एव पर्पटीविधानम् द्वित्रदिनाभ्यन्तरकृताऽपि न दोषाय तदूर्ध्व-कालकृता कज्जली न पाकयोग्या।

मयूरचन्द्रिकाकारं लिङ्गं यत्र तु दृश्यते।
तत्र सिद्धिं विजनीयाद्वैद्यो नैवात्र संशयः।

भङ्गप्रवणां=भङ्गकाले चाशब्दायितां मृदुपकाम्। इयं शुभ-पाकपरीक्षा। रक्तिद्वयमिति—एकरक्तिकयापि प्रारम्भो भवति रक्तिकासम्मितां तावद्भ्रष्टजीरकसंयुताम्'।

'गुञ्जार्धभ्रष्टहिङ्गुवाढ्यां भक्षयेद्रसपर्पटीमित्युक्तेः। क्रमात्=प्रतिदिनमेकैकवृद्ध्या—यथा—प्रथमदिने रक्तिकाद्वयम्, द्वितीयदिने रक्तिकात्रयम्, तृतीयदिने रक्तिकाचतुष्टयमित्यादिः, एवं एकादशे दिने

द्वादशरक्तिकं भवति, ततो वर्धनक्रमेणैव प्रतिदिनमेकैकरक्तिका-ह्रासो रक्तिकाद्वयं यावत्। यथा-द्वादशे एकादशरक्तिकाः, त्रयोदशे दश, इत्येवं क्रमेण एकविंशतिभिर्दिनैरेकः कल्पः समाप्यते। एककल्पेनाऽनिर्मूले रोगे, उक्तक्रमेणैव द्वितीयस्तृतीयः कल्पो यावदारोग्यदर्शनं वा विधेयः। प्रहरार्धत इति-प्रहरार्धे इति प्रहरार्धतः। आद्यादिभ्य उपसंख्यानमिति तसिः प्रत्ययः (५।४।४४ सू० वा०) तेन सूर्योदयाद्घटिकाचतुष्टयाभ्यन्तर एव पर्पटी-प्रयोगः सेवनं न ततः परम्। तदूर्ध्वं पर्पटीसेवनात्परं बहुपूगस्य भक्षणं प्रचुरपूगफलचर्वणम। एतच्च पर्पटीगुणवर्धनार्थं कोष्ठशुद्ध्यर्थं च ज्ञेयम्। किञ्चित्पूगफलं सरम्। सु० सू० अ० ४६। भेदिसम्मोह-कृत्पूगम् (ध० नि०) पूगशब्दो हरीतकी-एरण्डतैलादिमृदुरेच-नानामुपलक्षणपरः। प्रायो मलबन्ध एव पूगचर्वणं युक्तम्। अत्र यथाव्याधिनिर्मितौषध-क्वाथेन प्रत्यहं यथावसरं वा वस्तिदानमती-वोपकारकं भवति। एवं दुग्धेन दुग्धयुतक्वाथेन वस्तिदानं बल-करमपि भवति। अयमस्माकमनुभवः। वस्तिश्च कल्पस्य प्रधान-मङ्गमिति ज्ञेयम्।

र. यो. सा. तु—गुञ्जाद्वयात्प्रथममारम्भं कृत्वा प्रतिदिनमेकैक-गुञ्जाप्रमाणं वर्द्धयित्वा नवमदिने दशगुञ्जापरिमाणं भविष्यति ततोऽनन्तरं द्वादशदिनानि यावत्तत्प्रमाणं स्थिरी भवति। द्वाविं-शतितमं दिनमारभ्य प्रतिदिनमेकैकगुञ्जाया ह्रासः कर्तव्य इत्थं त्रिंशद्दिनैः प्रयोगः समाप्यते। एवमग्रे—जलनिषेधमत्यावश्यकं मन्यन्ते चिकित्सका इति अत्र जलनिषेधे प्रमाणमन्वेषणीयम्।

ततः परं तत्रैव—फलीयस्वरसं तु पौरस्त्यपाश्चात्यवैद्या ऐकमत्येन व्यापारयन्त्येव तत्र न कश्चित्प्रत्यवायो दृश्यत इति प्रत्यक्ष-विषयः।............ पर्पटीसेवने मार्गद्वयम्, दुग्धफलसेवनेनैको, लध्वन्नसेवनेन द्वितीयः। तत्र प्रथमो मुख्यकल्पः। द्वितीयस्तु बालभीरुसुकुमार-स्त्री–स्त्रैणानामगत्युपयोगित्वान्निकृष्टः। प्रथम-कल्पे स्वस्वप्रकृत्यनुकूलेन तक्रदुग्धयोर्निर्णयः करणीयः। केवल-तक्रप्रयोगे रात्रावपि तक्रसेवायां दोषाऽभावोऽस्ति। यत्र द्वयोरपि समन्वयपरत्वेनोपयोगः क्रियते तत्र तु रात्रौ दुग्धस्यैवोपयोगः करणीयो न तक्रस्य। तक्रस्य सम्यक् पाकोत्तरं दुग्धस्य प्रयोगे दुग्धपाकोत्तरं तक्रप्रयोगे च न किमपि प्रत्यवायोपस्थानं भवति। यत्र तु द्वयोर्मध्ये जन्मप्रभृत्येकस्य विरुद्धताऽस्ति तत्र तत्सेवने दुराग्रहो न करणीयः। फलेषु मधुरसुपक्वर्तुज-आम्रसेवा सर्वोत्तमास्ति। मिष्टनिम्बूकसेवापि तादृगेवास्ति। बद्धकोष्ठतायां गोपालकर्कटी सेवनीया, इति।

वयन्तु—प्रत्यहं यावदारोग्यदर्शनं रक्तिकात्रयमात्रयैव व्यवहरामः। अत्र पक्षे मात्राधिक्यजनितवान्त्यादिदोषो न दृश्यते।

अथवा रक्तिकामारभ्य प्रतिदिनं रक्तिकावृद्ध्या चतुर्थदिना-दिनचतुष्टयं प्रतिदिनं रक्तिकाचतुष्टयम्। पुनरष्टमे पञ्चरक्तिकं यावदारोग्यदर्शनं व्यवहरामः।

पथ्यम्—केवलं दुग्धं तक्रं यथायथं दीयते यथर्तुजफलरसा नारङ्गदाडिम्बादयो दशाङ्गस्य (खरबूजा) प्राप्तिसमये केवलं दशाङ्गमेव पथ्यम्।

यदि च धारोष्णगोदुग्धस्य सम्भवः, तदा प्रतिघण्टाद्व मात्रया तदेव देयम्, न तस्योष्णता न वा शर्करादिप्रक्षेपः अत्र पक्षे—स्वच्छतायां शुद्धतायां च विशेषसावधानता रोगान्तर संक्रमभीतेः। तथाहि—

दोग्धृहस्त-दुग्धपात्र-गोस्तनप्रक्षालनार्थं प्रस्थमितपरिस्रुत जले तोलकं सौभाग्यचूर्णं दत्वा द्रवो विधेयः। तेन प्रक्षालनम्। गोस्तनप्रोञ्छनाय वस्त्रमपि द्रवधौतं शुष्कं ग्राह्यम्।

अन्ये तु—अनुष्णीकृतमेव दुग्धं सर्वं दिनं पाययन्ति, अ दुग्धस्याविकारविनिवृत्तये हिमादिना तत्परित आच्छादयन्ति।

सुपक्वबिल्वफलं यथेच्छं मलशोधनाय पथ्यार्थं च सर्वकल्पे दीयते केवलः पक्वाम्ररसस्तूक्त एव। प्रहरार्धत इति—रक्तिकाद्वयाधि कायाः पर्पट्या भक्षणं प्रतिरक्तिद्वयं प्रहरार्धतः कार्यं तदूर्ध्वं बहुपूगस्य भक्षणं कार्यम्। अयं भावः। पूर्वं रक्तिद्वयं खादेत् प्रहरार्धानन्तरं पुनारक्तिद्वयं खादेदेवं क्रमेण सर्वां मात्रां सम पयेत्। दशरक्तिकानां भक्षणं पञ्चभिः प्रहरार्धैः समाप्यते। तदू बहुपूगस्य भक्षणं विधेयमिति (र. इ. चि. मणिः)

मांसाज्येति-रोगभेदे सति प्रबलबुभुक्षायामिदं योज्यम्, व मिति-दुग्धन्तु सर्वथा विधीयत एव, आदिपदान्मांसरसस्तु निषिद्धः। वर्ज्यानाह विदाहीति—अत्र स्त्रीसेवनमत्यन्त महितम्। रम्भा=कदली, कृष्णमत्स्याः–कृष्णवर्णमीनाः, अम्बुजा जलजाः, खगाः=पक्षिणः, एतांस्त्यक्त्वा, उन्निद्रः=दिवास्वापवर्जितः, पयो दुग्धं पिबेत्। तच्च घण्टाद्वयं त्रयं वा मर्यादीकृत्य कुडवादि

प्रमाणेन यथानुभुक्तं वर्धयेच्च दुग्धमात्राम्। पर्पटीसेवनस्य फल-माह—ग्रहणीति। अत्र विशेषस्तु भैषज्यरत्नावल्यादिभ्यो ज्ञेयः ॥५४-६०॥

भाषा—अम्लपित्त की चिकित्सा में जो क्षुधावती गुड़िका कही जायगी उसमें लिखे प्रकार से पारे और गन्धक को शुद्ध करके सम भाग लेकर दृढ़ खरल कर उत्तम कज्जली बनालें। उसे एक लोहे के पात्र में डाल बेर की लकड़ी की आग के अंगारों पर पिघलावें। इससे पूर्व ही स्वच्छ धरती पर गोबर रख कर ऊपर कोमल केले का पत्ता बिछा कज्जली के पिघलते ही इस केले के पत्ते पर उसे डाल दें और ऊपर से दूसरा पत्ता रख गोबर से दबा दें। रसपर्पटी बन गई। इसे दो रत्ती से आरम्भ कर प्रतिदिन १ र. बढ़ा क्रम से १२ र. तक ले। आधे पहर के बाद खूब सुपारियां चबावे। तीसरे दिन से मांस घी दूध आदि का प्रयोग करें। विदाही, अन्न, स्त्रीभोग, केले की जड़, सरसों का तेल, काली मछली तथा जलचर पक्षी त्याज्य हैं। दिन में न सोये, दूध पीवे, यह ग्रहणी, क्षय, कुष्ठ, बवासीर, शोथ तथा अजीर्ण का नाश करती है। यह रसपर्पटी चक्रपाणि ने कही है ॥५४-६०॥

विजयपर्पटी—

हाटकं रजतं ताम्रं यद्यत्र परिदीयते।
विजयाख्या तु सा ज्ञेया सर्वरोगनिसूदनी ॥६१॥

विजयपर्पट्याम्—हाटकं=सुवर्णं रजतं=रौप्यम्। यदि पूर्वं पर्पटी-

निर्माणसमये स्वर्णरौप्यताम्राणि प्रत्येकं पारदतुल्यानि यत्र दीयन्ते तदा सा विजयपर्पटी शेषं पूर्ववत् । सर्वरोगनि सूदनीति–पित्तजायां, पित्तकफजायां, वातकफजायां संग्रहण्यां ग्रहण्यां च भेषजान्तरैरसति लाभे, आमातिसारस्य मध्या वस्थायां जीर्णावस्थायां च नानाप्रकारद्रवमलनिस्सरणे शू दाहादौ आन्त्रक्षये वा एकरक्तिमात्रया मधुना नवनीतेन प्रातः सायं प्रयोज्या ॥६१॥

भाषा—यदि उक्त पर्पटी में स्वर्णभस्म, चाँदीभस्म, तांबाभस्म समभाग मिला खूब घोट रसपर्पटी की तरह पर्पटी बनालें तो इस का नाम विजयपर्पटी है। यह सभी रोगों को दूर करती है ॥६१

स्वर्णपर्पटी—

रसोत्तमं पलं शुद्धं हेमतोलकसंयुतम् ।
शिलायां मर्दयेत् तावत् यावदेकत्वमागतम् ॥६२॥
गन्धकस्य पलञ्चैकमयःपात्रे ततो दृढे ।
मर्दयेत् दृढपाणिभ्यां यावत् कज्जलतां व्रजेत् ॥६३॥
ततः पाकविधानज्ञः पर्पटीं कारयेत् सुधीः ।
रक्तिकादिक्रमेणैव योजयेदनुपानतः ।
ग्रहणीं विविधां हन्ति वृष्या सर्वज्वरापहा ॥६४॥

स्वर्णपर्पटीमाह—रसोत्तममिति रसेषु=अभ्रादिषु उत्तमं प्रधानं पारदमित्यर्थः, अथवा रसोत्तम=शुद्धपारदम् तच्च शुद्धं संस्कृतं हिङ्गुलोत्थं वा पलं सम्प्रदायादत्र अष्टतोलकमितं ग्राह्यम्

हेमतोलकसंयुतमिति हेम्नः=सुवर्णभस्मनः (अत्र सुवर्णस्तवकानपि स्वर्णभस्माभावे ददते) तोलकेन=एकतोलकमानेन, संयुतं=युक्तम्। यावदेकत्वमागतमिति—सुवर्णपारदयोरेकीभवनपर्यन्तं शिलायां मर्दनम्। ततो दृढे-अयः पात्रे-अष्टतोलकपरिमाणं शुद्धगन्धकं दत्वा सुवर्णपारदपिष्टिं च तत्र निक्षिप्य दृढपाणिभ्यां मसृणं मर्दयेत्। ततः पाकविधानज्ञः=पूर्वोक्तरसपर्पटीपाकवित्पर्पटीं कारयेत्। रक्तिकादिक्रमेण इति–प्रथमदिने, एका रक्तिका, द्वितीयदिने रक्तिकाद्वयम्, तृतीयदिने रक्तिकात्रयमेवं प्रत्यहमेकरक्तिकावर्धनं यावद्दशदिनम। ततस्तथैव क्रमेण ह्रासः। अनिवृत्तेऽल्पावशिष्टे वा रोगे द्वितीयस्तृतीयो वा कल्पो विधेयः। अनुपानतः= तत्तद्रोगहरानुपानैः। विविधा=मनेकप्रकाराम्। यथा-क्षयजां, यकृद्विकृतिजां-जीर्णप्रवाहिकारूपां-मूलादिरोगजां-वा। ग्रहणीमिति— ग्रहणीशब्दोऽत्र संग्रहण्या अप्युपलक्षणम्। वृष्या=वाजीकरी, सर्वज्वरापहा=सर्वे ये, अनिश्चतमूलकारणा, अदृश्यकृमिजा वा ज्वरास्तान्, अपहन्ति=नाशयति। रसायनप्रयोगैरनिवृत्तारोगा अनया निवर्त्तन्ते। उदरे=जलोदरे बद्धोदरे क्षतोदरे वा दुर्बले रोगिणि सशोथे सज्वरे वाऽतिसारे प्रयोगोऽस्या यथोक्तानुपानैः सद्वैद्यानुमतः अतएव—सर्वौषधिप्रयोगैर्ये व्याधयो न निवर्तिताः।

कर्मभिः पंचभिर्वाऽपि सुवर्णं तेषु योजयेत्। इति ग. नि. सुवर्णकल्पे। जललवणं चात्र वर्जयेत्। पिपासायामपि दुग्धपानमेव। शोथेमानमण्डोऽपि—योज्यः। कचिल्लवणन्न सेवनम्॥ ६२—६४॥

उत्तम शुद्ध पारा १ पल, स्वर्णभस्म एक तोला, दोनों

को पत्थर के खरल में खरल करे जब एक हो जावे तो शुद्ध गन्धक १ पल डाले। और लोहे के खरल में डाल दृढ़ता से तब तक घोटता रहे जब तक कज्जल नहीं हो जाता। रस-पर्पटी के समान पर्पटी बनाले। इसे रत्ति आदि के वृद्धि और ह्रास क्रम से रोगनाशक अनुपानों से दें। यह विविध प्रकार की ग्रहणी को दूर करती है। वृष्य है और सर्व ज्वरों को नाश करती है॥ ६२-६४॥

अथ पञ्चामृतपर्पटी—

अष्टौ गन्धकमाषका रसदलं लौहं तदर्द्धं शुभं
लौहार्द्धञ्च वराभ्रकं सुविमलं ताम्रं तथाऽभ्रार्द्धकम्।
पात्रे लौहमये च मर्दनविधौ चूर्णीकृतञ्चैकतो
दर्व्यां बादरवह्निनाऽतिमृदुना पाकं विदित्वा दले॥६५॥
रम्भाया लघु ढालयेत् पटुरियं पञ्चामृता पर्पटी
ख्याता क्षौद्रघृतान्विता प्रतिदिनं गुञ्जाद्वयं वृद्धितः।
लौहे मर्दनयोगतः सुविमलं भक्ष्यक्रिया लौहवत्
गुञ्जाऽष्टावथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं भजेत्॥६६॥
नानावर्णग्रहण्यामरुचिसमुदये दुष्टदुर्नामकादौ
छर्द्यां दीर्घातिसारे ज्वरभरकलिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि।
वृष्याणां वृष्यराज्ञी वलिपलितहरा नेत्ररोगैकहन्त्री
तुन्दं दीप्तस्थिराग्निं पुनरपि नवकं रोगिदेहं करोति॥६७॥

जीर्णग्रहण्यादिषु दृष्टफलां पंचामृतपर्पटीं शार्दूलविक्रीडितत्रये-णाह-अष्टाविति गन्धकमाषकाः=गन्धकस्य शुद्धस्य माषकाः, 'माषो' गुञ्जाभिरष्टाभिरित्युक्तेः अष्टगुञ्जामितो माषको ज्ञेयः । माषका इत्यत्र तोलकेति पाठेऽपिद्रव्याणां भागे न कोऽपि विशेषः ।

रसदलं=रसस्य शुद्धपारदस्य दलमर्धं गन्धकापेक्षयाऽर्धं-भागं माषकचतुष्टयमित्यर्थः । शुभं=वारितरम्, लौहं=लौह-भस्म, तदर्धं=पारदार्धं माषकद्वयमित्यर्थः । वराभ्रकं=वरं श्रेष्ठं निश्चन्द्रमभ्रं कृष्णाभ्रभस्म, लौहार्धं=लौहभागापेक्षयाऽर्धं-भागं माषकमित्यर्थः । तथा=सुविमलं=वान्तिभ्रान्त्यादि-रहितं वारितरञ्चेत्यर्थः । ताम्रं=ताम्रभस्म, अभ्रार्धकं=मभ्रार्धभागं रक्ति-काचतुष्टयमिति यावत् । तद्यथा—गन्धकस्याष्टौभागान्, रसस्य भाग-चतुष्टयं गृहीत्वा लौहखल्वे रसं पर्पटयुक्तप्रकारेण मसृणां कज्जलीं-विधाय तदनुलौहभस्मनो भागद्वयमभ्रस्यैको भागस्ताम्रस्यार्धो भाग इति त्रयं दत्वा लौहमये=लौहनिर्मिते, पात्रे, मर्दनविधौ=मर्दनक्रिया-यामेकत=एकत्र चूर्णीकृतं=सुमर्दितम्, ततो घृतलिप्तायां दर्व्यां-कृत्वा अतिमृदुना=मन्द-मन्दाग्निना, बादरवह्निना=बदरीकोकिला-ग्निना, पाकं-तैलसमं, विदित्वा रम्भायाः दले गोमयस्थे घृतलिप्ते मृदुनि चेत्यादिर्ज्ञेयम् । लघु=क्षिप्रं, ढालयेत्=पातयेत् । तदनुत्वरितं कदलीपत्रस्थेन गोमयेन उपरित अच्छादयेत् । साङ्गशीता च पटु= स्फुटा सुप्रसिद्धेति यावत् । 'पटु तीक्ष्णे' इति अमरटीकायां रुद्रः । वो तो गुणवचनात् ४-१-४३ इति ङीब्भावः । पंचामृता पंचभिरमृतैर्युता । पञ्चामृता, पर्पटी, ख्याता=प्रसिद्धा ।

एतस्याः सेवनविधिं मात्रां चाह–क्षौद्रेति–क्षौद्रघृतान्विता, अत्र गव्यस्य घृतस्य एको माषो मधुनो माषकद्वयं पर्पट्या, गुञ्जाद्वयमादाय लौहे=लौहनिर्मितपात्रे सुविमलं=मसृणं यथास्यात्तथा–मर्दनयोगतो लौहदण्डेनैव मर्दनम्। प्रतिदिनं वृद्धितः=एकगुञ्जावृद्ध्या आद्यादेराकृतिगणत्वात्तसिः। 'प्रथमं गुञ्जायुगलं प्रतिदिनमेकैकवृद्धितो भक्ष्यम्,। इति रसपर्पट्युक्तन्यायेन। गुञ्जाष्टौ=अष्टसंख्यकगुञ्जां यावद्वर्धनमित्यर्थः। अतः परं रोगशान्तिं च यावदेषैव मात्रा ज्ञेया, ततो वर्धनक्रमेणैव मात्रा ह्रासः। भक्ष्यक्रिया=सेवनविधिः।

लौहवत्=लौहेन तुल्यम्। तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः २-१६-११६ इति वतिः। लौहसेवने ये नियमास्तेऽत्रावर्त्तनीयाः। यथा—

'अनुपानं प्रयोक्तव्यं लौहात् षष्टिगुणं पयः।'

अत्यन्त-शीत-वातातप-दिवानिद्रा-वेगरोध-मैथुन-कोप-श्रम-चाय मद्यादीन् वर्जयेत्। विशेषस्त्वत्र–र. इ. चि. अ. ८श्लो. १७२तो ज्ञेयः।

अथवा–गुञ्जाष्टाविति गुञ्जानामष्टौ गुञ्जाष्टाविति द्वितीयान्तं पदम्। अष्टगुञ्जां यावद्वर्द्धयेदित्यर्थः। तथैवापनयेत पुनर्वर्धयेत यावदारोग्यदर्शनमेवं कुर्यात्। अथवा पक्षान्तरे त्रिकं=त्रयमित्यर्थः। त्रिरक्तिकामात्रयेति यावत् 'संख्यायाः संज्ञासङ्घ'—५-१-५८। इति कन्। त्रिकाकूपस्य नेमौ स्यात्त्रिकं पृष्ठाधरे त्रये=इति–अमरटीकायां मेदिनी। त्रिगुणितं सप्ताह=मेकविंशतिदिनानि। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण भजेत्। अत्रापि यावदारोग्यदर्शनं कल्पः कार्यः। प्रतिदिनं गुञ्जात्रयमेव सेवनं न तु मात्रा ह्रासवर्धनं वा पक्षान्तरे ज्ञेयम्।

गुणपाठमाह—नानेति—नानावर्णग्रहण्या=मान्द्यक्षय-शैथिल्य-कृमि-जीर्णप्रवाहिका-गर्भिणी-ग्रहणी-कालज्वर-विषमज्वरादिजाया-मित्यर्थः। अरुचिसमुदये=बहुविधाऽरुचौ, दुष्टदुर्नामकादौ=विकृतार्शसि, ज्वरभरकलिते=ज्वरस्य भरेणातिशयेन कलिते=प्रलपिते, वृष्याणां वृष्यराज्ञि=अतिशयवाजीकरी, अभ्युच्चयार्थमिदम्। तुन्द=मुदरम् (तुदति अन्नमिति तुन्दम्) दीप्तस्थिराग्नि=दीप्ताग्नि स्थिराग्नि चेत्यर्थः। वृद्धास्तु-आमातिसारे, पित्तातिसारे, पित्तश्लेष्मातिसारे, पाण्डौ, कामलायां यकृत्प्लीहविकृतिजे ज्वरे, उदरामये सर्वविधजीर्णप्रवाहिकायां द्रवमले ज्वर-शोथ-छर्द्याद्युपद्रवेषु च जललवणवर्जनपूर्वकं दुग्धसेवनमाहुः। अवस्थाविशेषे लघु पथ्यं पुराणतण्डुलसैन्धवादिकञ्च न निषिध्यते। प्रबलशोथे केवलं दुग्धं पथ्यम्। प्रवाहिकोपद्रवेषु च कुटजदाडिमक्वाथोऽनुपेयः ॥६५-६७॥

शुद्ध गन्धक आठ माषा, शुद्ध पारा चार माषा, दोनों की कज्जली करे। लोहभस्म दो माषे, अभ्रकभस्म एक माषा और ताम्रभस्म आधा माषा मिला लोहे के खरल में खूब घोटे। फिर इसे एक लोहे के पात्र में डाल बेर की लकड़ी के अंगारों की आग में पिघलावें। एक लोहे की सलाई से सारे चूर्ण को हिलाता जाये। पिघलते ही केले के पत्ते पर पूर्व के समान डाल दे और दबाकर पर्पटी बना ले। यह पंचामृत पर्पटी कहाती है। इसे घी और शहद से मिला दो रत्ती से आरम्भ कर प्रतिदिन र. क्रमशः बढ़ा लोहे के पात्र में घोटकर सेवन करावे। इसकी खाने की विधि लौहभस्म के समान है। आठ रत्ति तक

बराबर खिलाता जावे अथवा प्रति दिन ३ र० मात्रा से ही २१ दिन तक प्रयोग करे। यह नाना वर्णकी ग्रहणी, अरुचि, दुष्ट बवासीर आदि, वमन, चिरकालीन अतिसार रोग, ज्वर से उत्पन्न खांसी, रक्तपित्त, क्षयरोग, इनमें देने से उक्त रोगों को नाश करती है। यह वृष्य औषधों में महारानी है, वली और श्वेत बालों को दूर करती हैं। नेत्ररोगों के नाश करने में एक ही है। इसके खाने से उदर की अग्नि दीप्त और स्थिर होती है तथा रोगी का देह फिर से नया होजाता है॥ ६५-६७॥

पाकोऽस्यास्त्रिविधः प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा।
आद्ययोर्दृश्यते सूतः खरपाके न दृश्यते॥६८॥
मृदौ न सम्यग्भङ्गः स्यात् मध्ये भङ्गश्च रौप्यवत्।
खरे लघुर्भवेद्भङ्गो रूक्षः श्लक्ष्णोऽरुणच्छविः।
मृदुमध्यौ तथा खाद्यौ खरस्त्याज्यो विषोपमः॥६९॥

भाषा—पर्पटी का पाक तीन प्रकार का है। मृदु, मध्य तथा खर। मृदु और मध्यपाक में पारा दीखता है। परन्तु खरपाक में पारा नहीं दीखता। मृदु पाक हो तो पर्पटी ठीक टूट नहीं सकती। मध्यपाक हो तो चांदी के समान टूटती है। खर पाक हो तो आसानी से टूट जाती है तथा टूटने में रूखी चिकनी और लाली लिये होती है। मृदु पाक और मध्य पाक वाली पर्पटी तो खानी चाहिये परन्तु खरपाक वाली नहीं क्योंकि वह विष के तुल्य हो जाती है॥ ६८-६९॥

अथ-अग्निकुमारो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं त्रिकटु पटुपञ्चकम् ।
दशकं तुल्यतुल्यञ्च विजया सर्वसम्मिता ।
भावयेच्चित्रभृङ्गोत्थैस्त्रिधा च विजयाद्रवैः ॥७०॥
दीप्ताग्निना तु यामैकं वालुकायन्त्रके पचेत् ।
सञ्चूर्ण्य चार्द्रकद्रावैर्भावयित्वा च भक्षयेत् ॥७१॥
मधुना शाणमानन्तु रसो ह्यग्निकुमारकः ।
दीप्ताग्निकारकः साम—ग्रहणीदोषनाशनः ॥७२॥

अग्निकुमारे—पटुपञ्चकं=लवणपञ्चकं तच्च भागपञ्चकम् । दशकं=सूतादिपटुपञ्चकान्तम् । तुल्यतुल्यं=समानमानम् । विजया=भाँग इति सर्वसम्मता-दशभागा । ततश्चित्रकभृङ्गराजविजयाद्रवैः प्रत्येकं त्रिधा=त्रिवारं भावयेत् । यामैकं=प्रहरमात्रं बालुकायन्त्रे अ. १-६४ दीप्ताग्निना पचेत् । स्वाङ्गशीते च सञ्चूर्ण्यार्द्रकद्रावैर्भावयेत् । अयं हि-पित्तस्रावं कृत्वाऽन्त्रस्थमलं शिथिलीकृत्यान्त्रव्रणशोथादीनपि ग्रहणीकारणान्नाशयति । दीप्ताग्निकारको बुभुक्षावर्धकः । मा. ४ र. ॥ ७०-७२ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, एक २ तोला ले कज्जली करे । फिर सोंठ, मिरच, पिप्पली, पांचों नमक एक २ तोला भांग का चूर्ण दस तोला सबको मिला पीस कर चीता के क्वाथ से तीन वार भावना दे फिर भांगरे के रस से तीन वार भावना दे पुनः

भांग के रस से तीन बार भावना दे। इसे एक पहर तक बालुका यन्त्र में पका निकाल चूर्ण कर अदरक के रस से भावना दे। एक शाण शहद से खावे तो यह अग्निकुमार रस अग्नि को दीप्त करता तथा आमयुक्त ग्रहणी रोग को नाश करता है ॥७०-७२॥

बडवामुखो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्रं भ्रटङ्कणम् ।
सामुद्रञ्च यवक्षारं सर्जिसैन्धवनागरम् ॥७३॥
अपामार्गस्य च क्षारं पलाशवरुणस्य च ।
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यादम्लयोगेन मर्दयेत् ॥७४॥
हस्तिशुण्डीद्रवैश्चाग्नौ मर्दयित्वा पुटेल्लघु ।
माषमात्रः प्रदातव्यो रसोऽयं बडवामुखः ।
ग्रहणीं त्रिविधां हन्ति सङ्ग्रहग्रहणीं ज्वरम् ॥७५॥

बडवामुखे—सामुद्रं=समुद्रलवणम् । पलाशस्य=ढाक इति ख्यातस्य, वरुणस्य=वरुणो विल्वपत्रसदृशपत्रो वृक्षः । क्षारम् अम्लयोगेन=निम्बूकरवरसकाञ्जिकादिना, विमर्द्य ततो हस्ति शुण्डीस्वरसैर्मर्दयित्वा लघु पुटेत् कपोतपुटे पचेत । तल्लक्षणं यथा—

यत्पुटं दीयते भूमावष्टसंख्यैर्वनोत्पलैः ।
बध्वा सूतकभस्मार्थं कपोतपुटमुच्यते । र. र. स. अ. १०

सति शोथे वातग्रहण्यामामपाचनाय, एवं ग्रहणीयुतामवाते ग्रहण्यामपानवायौ प्रतिलोमे सति मूत्ररोधे चाऽस्य प्रयोगः शिष्ट सम्मतः । मा. ४ र. ॥ ७३-७५ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, भुना सुहागा, समुद्र-लवण, यवक्षार, सज्जी, सेंधानमक; सोंठ का चूर्ण, अपामार्ग का क्षार, ढाक का क्षार, वरुण का क्षार, समभाग ले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर किसी अम्ल से पीसे, फिर हाथी सुण्डी के रस से मर्दन कर सूख जाने पर लघुपुट दे निकाल कर एक माषा खावे तो त्रिविध प्रकार की संग्रहग्रहणी तथा ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ७३–७५ ॥

ग्रहणीकपाटो रसः—

रसगन्धकयोश्चापि जातीफललवङ्गयोः ।
प्रत्येकं शाणमानञ्च श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् ॥७६॥
सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च
शृङ्गाटकसमुद्भूत–स्वरसेन च मर्दयेत् ॥७७॥
चण्डातपेन संशोष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ।
बिल्वपत्ररसेनैव दापयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥७८॥
दध्ना च भोजनीयोऽसौ ग्रहणीरोगनाशनः ।
पाण्डुरोगमतीसारं शोथं हन्ति तथा ज्वरम् ।
अयञ्च ग्रहणीरोगे कपाटो रस उत्तमः ॥७९॥

ग्रहणीकपाटे—सूर्यावर्तः=हुलहुल इति ख्यातः । शृङ्गाटकः=सिंघाड़ा इति, चण्डातपे=तीक्ष्णरविकिरणे, बिल्वपत्ररसेन तोलकद्वयेन यावता स्पष्टतया कोष्ठशुद्धिर्भवेत्तावता वा बिल्वपत्ररसं हि

सरं शोथहरं च भवति। बिल्वपत्राणि मरिचैः सह मसृणं जलेन पिष्टानि पातव्यानि अथवा तद्ग्रहणप्रकारस्तु—

सुपूतं बिल्वपत्रन्तु कल्कवत्परिपेषयेत्।
संस्थाप्य कांस्यपात्रे तत्कांस्यपात्रेण रोधयेत्।
चतुर्यामान्तरं सम्यक् पीडयेच्छुद्धभाजने।
पतितं स्वरसं पूतं गृह्णीयान्निर्जलं शिवम्॥ नवपरिभाषा

यकृद्विकारजलशोथहरे, आमवाते च युज्यते॥ ७६–७६॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, जायफल का चूर्ण, लौंग का चूर्ण एक २ शाण लें। कज्जली में अन्य बारीक चूर्ण मिलाकर सूर्यमुखी के रस से, वेल के पत्तों के रस से तथा सिंघाड़े के पत्तों के रस से क्रमशः घोट तेज धूप में सुखा दो रत्ती की गोली बना बेलपत्र के रस से रोगी को दें। खाने को दही दें। इससे ग्रहणी रोग नाश होता है। पाण्डुरोग, अतीसार, शोथ, ज्वर इन सब को यह ग्रहणीकपाट रस दूर करता है। ग्रहणी रोग में यह कपाट रस उत्तम है॥ ७६—७६॥

संग्रहणीकपाटो रसः—

मुक्ता सुवर्णं रसगन्धटङ्कं घनं कपर्दोऽमृततुल्यभागाः।
सर्वैः समं शङ्खकचूर्णमत्र भाव्यं च खल्लेऽतिविषाद्रवेण॥८०॥
गोलञ्च कृत्वा मृदुकर्पटस्थं सम्पाच्य भाण्डे दिवसार्धकञ्च
सर्वाङ्गशीतो रस एष भाव्यो धुस्तूरवन्ह्योर्मुषलीद्रवैश्च॥८१॥
लौहस्य पात्रे परिपाचितश्च सिद्धो भवेत् सङ्ग्रहणीकपाटः।

संसाधितः सद्भिषजा प्रयत्नात् योगस्थितेनार्य्यसमर्च्चितेन ॥८२॥
वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तैः पित्तोत्तरायां मधुपिप्पलीभिः ।
कफोत्तरायां विजयारसेन कटुत्रयेणाज्ययुतो ग्रहण्याम् ॥८३॥
क्षये ज्वरे चार्शसि षट्प्रकारे सामातिसारेऽरुचिपीनसे च ।
मेहे च कृच्छ्रे गतधातुवृद्धौ गुञ्जाद्वयश्चापि महामयघ्नम् ॥८४॥

संग्रहणीकपाटे—घनोऽभ्रम्, अमृतं=मूलविषमेतेऽष्टौ तुल्यभागाः=समानमानाः। शङ्खचूर्णं सर्वसम=मष्टभागम्, अतिविषाद्रवेण=अतिविषाक्वाथेन, भाव्यो=भावनीयः। ततो गोलं कृत्वा मृत्कर्पटस्थं बहिर्मृत्तिकावस्त्रेण आवेष्ट्य, दिवसार्धकं=द्वियामम्, भाण्डे=पात्रे कृत्वा सम्पाच्य=पाकसमयकुशलेनेत्यर्थः। सर्वाङ्गशीतः=स्वाङ्गशीतः। ततो धत्तूर-चित्रक-मुशलीस्वरसेन क्वाथेन वा लौहपात्रे क्रमेण पृथक् सप्तभावनाः। सिद्धो=निश्चितफलदः संग्रहणीकपाटो भवेत्। गतधातुवृद्धौ=गतानां रोगेण विनाशितानां धातूनां रसादिधातूनां वृद्धौ पुष्ट्यर्थम्।

यदा च ग्रहण्यां दौर्बल्य-ज्वर-प्रमेहादयः स्युरामपाकश्च तदाऽस्य प्रयोगो भवति। गोपालकृतटीकायामस्य व्याख्यानं मूले च पाठो नास्ति ॥ ८०-८४ ॥

भाषा—मोतीभस्म, सुवर्णभस्म शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, भुना सुहागा, अभ्रकभस्म, कौड़ीभस्म, शुद्ध विष, समभाग और इन सब के समान शंखभस्म लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला अतीस के स्वरस या क्वाथ से मर्दन कर एक गोला बनावें इसे

एक पतले कपड़े में लपेट कर पात्र में डाल आधा दिन पकावें। जब सर्वाङ्गशीत हो जाये तब इसको धतूरा, चीता, मूसली इन तीनों के रस से क्रमशः लोहे के पात्र में भावित करें। सूखने पर शीशी में डाल लें। इसे संग्रहणीकपाट रस कहते हैं। इसे भगवान के उपासक समाहित चित्त वाले आर्यजन पूजित वैद्य बनावें। वातप्रधान ग्रहणी में मिरचों के चूर्ण और घी के साथ, पित्तप्रधान ग्रहणी में शहद और पिप्पली के चूर्ण के साथ, कफप्रधान ग्रहणी में भांग के रस से अथवा सोंठ मिरच पिप्पली के चूर्ण और घी से मिलाकर दें। क्षय, ज्वर, छः प्रकार के ववासीर, आमातिसार, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, धातुक्षीणता में इसे दो रत्ती दें तो इन रोगों को तथा अन्य महारोगों को दूर करता है॥ ८०-८४॥

अन्यो ग्रहणीकपाटो रसः—

गिरिजाभवबीजकज्जली परिमृद्याद्र्रसेन शोषिता।
कुटजस्य तु भस्मना पुनर्द्विगुणेनाथ विमृद्य मिश्रिता॥८५॥
मर्दयित्वा प्रदातव्यमस्य गुञ्जाचतुष्टयम्।
अजाक्षीरेण दातव्यं क्वाथेन कुटजस्य वा॥८६॥
यूषं देयं मसूरस्य वारिभक्तश्च शीतलम्।
दध्ना सह पुनर्देयं रक्तादौ रक्तिकाद्वयम्॥८७॥
वर्धयेद्दशपर्य्यन्तं ह्रासयेत् क्रमशस्तथा।
निहन्ति ग्रहणीं सर्वां विशेषात् कुक्षिमार्दवम्॥८८॥

अन्यग्रहणीकपाटे—छन्छान्तन्यायेन बीजशब्दस्योभयत्रान्वयः। तथा च गिरिजाबीजं गन्धो भवबीजं पारदस्तयोर्मसृणां कज्जलीं कृत्वाऽद्र करसेन सप्तभावनाः। ततः कुटजवल्कलभस्मनोऽद्र करसयुत-सर्वद्रव्यद्विगुणेन संयोज्य जलेन विमृद्य गुञ्जाचतुष्टयमजाक्षीरेण, कुटजवल्कलकाथेन वा देयः। वारिभक्तं (ज्वरे ५८-५६) प्राग्व्याख्यातम्। रक्तादौ=रक्तार्शसि रक्तातिसारादौ, कुक्षे=रुदरस्य मार्दवं ग्रहणीजनितमित्यर्थः॥ ८५-८८॥

शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारा दोनों एक २ तोला ले कज्जली करें। फिर अदरक के स्वरस से घोटकर सुखावें। इसमें कुटज की छाल की भस्म चार तोला मिलाकर घोटें। यह ग्रहणीकपाट रस है। इसकी चार रत्ती की मात्रा बना बकरी के दूध से दें अथवा कुटज के क्वाथ से दें तो ग्रहणी रोग दूर होता है। इसके साथ पथ्य में मसूर का यूष, दही और शीतल वारिभक्त (ज्व० श्लो ५८) देना चाहिये। रक्तातीसार आदि में दो रत्ती से दस रत्ती पर्यन्त क्रमशः बढ़ा और घटाकर दें। इससे सब प्रकार का ग्रहणी रोग और विशेष करके पेट की मृदुता दूर होती है॥ ८५-८८॥

विजयावटिका—

हाटकं रजतं ताम्रं यद्यत्र परिदीयते।
विजयाख्या तु सा ज्ञेया सर्वरोगनिसूदनी॥८६॥

विजयवटिकायाम्—हाटकं=सुवर्णम्। पूर्वोक्तान्यग्रहणीकपाट-रसे सुवर्णरजत-ताम्रभस्मदानेन सर्वरोगनिहन्त्री विजयपर्पटी सम्पद्यते। परमत्र रसपर्पट्युक्त (६१ श्लो.) विजयपर्पटिकायाः

कुटजभस्मदानाद्र्दकरसभावनादन्यो न कोऽपि विशेषः ॥ ८९ ॥

भाषा—यदि उपर्युक्त ग्रहणीकपाट रस में सुवर्णभस्म, चांदी-भस्म तथा तांबाभस्म भी मिला दें तो यह विजया वटिका सब रोगों को दूर करती है। मात्रा १ रत्ती ॥८९॥

ग्रहणीकपर्दपोट्टली—

कपर्दतुल्यं रसकन्तु गन्धं लौहं मृतं टङ्कणकञ्च तुल्यम्।
जयारसेनैकदिनं विमर्द्य चूर्णेन संवेष्ट्य पुटेच्च भाण्डे।
ददीत तत् पोट्टलिकाऽभिधानं वातप्रधानग्रहणीनिवृत्त्यै ॥९०

ग्रहणीकपर्दपोट्टल्याम्—रसकं=पारदः न तु खर्परो गन्धक साहचर्यात्। जया=भङ्गा तस्याः पञ्चाङ्गस्वरसेन विमर्द्य चूर्णेनः गोधूमचूर्णेन, संवेष्ट्य भाण्डे पुटपाकवत् पचेत्। शूलेऽपि मधुना प्रयुज्यते मा. २ र. ॥ ९० ॥

भाषा—कौड़ी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म भुना सुहागा समभाग भांग के रस से घोट चूने से वेष्टन कर सम्पुट करके पुट दे दें। यह ग्रहणीकपर्दपोटली रस वातप्रधान ग्रहणी को दूर करता है। मा० २ र. ॥ ९० ॥

हंसपोट्टली—

दग्धान् कपर्दकान् पिष्ट्वा त्र्यूषणं टङ्कणं विषम्।
गन्धकं शुद्धसूतञ्च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः ॥९१॥
मर्दयेद् भक्षयेन्माषं संलिह्यान्मरिचार्द्रकम्।
निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥९२॥

हंसपोट्टल्याम्—दग्धकपर्दकान्=कपर्दभस्म, त्र्यूषणं=शुण्ठी-मरिचपिप्पल्यः। सर्वद्रव्याणि समभागान्यादाय जम्बीररसेन विमर्द्य सम्प्रदायात्, गोलकं कृत्वा ग्रहणीकपर्दपोट्टलीवत् पुटपाकं कृत्वा एकोनत्रिंशन्मरिचैः तोलकमितार्द्रकरसेनैकमाषमात्रया लिह्यात्। पथ्यं च तक्रौदनम्। अग्निदीपकामपाचकशूलनाशका-दिगुणविशिष्टेयम्॥ ६१-६२॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, कौड़ीभस्म, भुना सुहागा, शुद्ध विष, समभाग ले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला जम्बीरी नींबू के रस में घोट एक माषे की गोली बना ले। इसे सेवन कर मिरच के चूर्ण को अदरक के रस में मिलाकर चाटे। ग्रहणी रोग दूर होता है। पथ्य में छाछ और चावल दे॥६१-६२॥

अन्यो ग्रहणीकपाटः—

तुल्यं कान्तं रसं तालं माक्षिकं टङ्कणं तथा।
सपादनिष्कं प्रत्येकं पञ्चनिष्कं वराटकम्॥
द्विनिष्कं गन्धकं सर्वं पिष्ट्वा जम्बीरजैर्द्रवैः॥६३॥
अर्धभारकरीषेण पुटितं भस्म शोभनम्।
प्रदद्याद् ग्रहणीगुल्म—क्षयकुष्ठप्रमेहके॥६४॥

अन्यग्रहणीकपाटे—सपादनिष्कं=माषकपञ्चकम्, (स्याच्चतु-र्माषकैः शाणः, स निष्कष्टङ्क एव च इति कालिङ्गपरिभाषामतो निष्कः) वराटकं=कपर्दभस्म, पञ्चनिष्कं=विंशतिमाषकम्, गन्धकं-

द्विनिष्कं=दशमाषकम्। कज्जलीं विधाय ततोऽन्यद्रव्याणि दत्वा जम्बीररसैर्विमर्द्याऽर्धभारकरीषेण=द्विसहस्रपलारण्योपलैः पुटितं कृत्वा १ र. मात्रया प्रोक्तरोगेषु दद्यात्। टीकान्तरेषु अर्धभागकरीषेणेति पाठं मत्वा करीषेणार्धभागपूरिते गर्तेत्यर्थः कृतः ॥६३-६४॥

भाषा—कान्तलौह भस्म, शुद्ध पारा, हड़ताल, स्वर्णमाक्षिक भस्म, भुना सुहागा प्रत्येक द्रव्य सवा निष्क लें, कौड़ीभस्म पांच निष्क, शुद्ध गन्धक दो निष्क लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला जम्बीरी के रस से घोट आधा भार जङ्गली उपलों से पुट दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल रखें। इसके प्रयोग से ग्रहणी, गुल्म, क्षय, कुष्ठ और प्रमेह नाश होते हैं। मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक ॥६३-६४॥

महाग्रहणीकपाटः—

रसाभ्रगन्धान् क्रमवृद्धियुक्तान् जङ्घारसेन त्रिदिनं विमर्द्य।
जयन्तिकाभृङ्गकलम्बिनीरैर्दिनं यवक्षारसटङ्कणञ्च ॥६५॥
क्षिप्त्वा तु गन्धस्य च तुल्यभागं वातारितैलेन युतं पुटित्वा।
गुडूचिकाशाल्मलिकारसेन जयारसेनापि विमर्द्य शाणम्॥६६॥
सार्धं मरीचैः मधुना समेतं ददीत पथ्यं दधिभक्तकञ्च।
शिवेन प्रोक्तो जगतां हिताय महारसोऽयं ग्रहणीकपाटः॥६७॥

महाग्रहणीकपाटे—रसस्य एको भागः, अभ्रस्य भागद्वयं गन्धस्य भागत्रयमिति क्रमेणवृद्धियुक्तान्, जंघारसेन=काकजंघारसेन, (मिस्सी घास इति) दिनत्रयं विमर्द्य जयन्तीभृङ्गराजकल

न्त्रिका-(जलशाकविशेषः) नीरैः=स्वरसैः। क्रमेणैकैकं दिनं विमर्द्य गन्धकतुल्यं=भागत्रयं पृथक् यवक्षारं टङ्कणं च दत्वा वातारितैलेन=एरण्डतैलेन विमर्द्य ततः पुटयित्वा तदनन्तरं गुडूचिका शाल्मलिका=(सेमल की मूसली इति) जयारसेन पृथक् पृथक् विमर्द्य शाणमात्रया, एकोनत्रिंशन्मरिचैः तोलकमधुना च देयः। पथ्यं दधिभक्तकमन्नम् (भिस्सा स्त्रीभक्तमन्धोन्नमित्यमरः। र. यो. सा. तु—

सौवीरकं जीरकयुग्मधान्यं यवासवारीणि च नागरञ्च।
कपित्थसारेण समं प्रगृह्य ददीत चूर्णं निशि तीव्रतापे॥
गद्याणमात्रं मधुखण्डयुक्तं गुडेन युक्तञ्च रुचिप्रवृद्धयै।
वातप्रधाने च कफप्रधाने रात्रौ कषायं कुटजस्य दद्यात्॥
कृशानुजातीद्वयमाक्षिकेण कटुत्रयेणापि युतं ददीत॥

इत्यधिकः पाठः॥ ९५-९७॥

भाषा—शुद्ध पारा एक तोला, अभ्रक भस्म दो तोला, शुद्ध गन्धक तीन तोला कज्जली में अभ्रकभस्म मिला कर काकजङ्घा के रस से तीन दिन तक खरल करे। फिर जयन्ती के रस से, भांगरे के रस से तथा नाड़ीशाक के रस से एक २ दिन खरल करे। अनन्तर यवक्षार तीन तोला, भुना सुहागा ३ तोला मिला एरण्ड के तेल से घोट कर पुट दे। पश्चात् गिलोय का रस, सेमल का रस तथा भांग का रस इनसे घोट कर रखे। इसको एक शाण लेकर काली मिरचों के चूर्ण और मधु के साथ दे। पथ्य में दही चावल दें। इस ग्रहणीकपाट रस को शिवजी ने लोकोपकार के लिये कहा है। मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती॥ ९५-९७॥

ग्रहणीवज्रकपाटः—

सूतं गन्धं यवक्षारं जयन्त्युग्राऽभ्रटङ्कणम् ।
जयन्तीभृङ्गजम्बीर—द्रवैः पिष्ट्वा दिनत्रयम् ॥९७॥
यामार्धं गोलकं स्वेद्यं मन्देन पावकेन च ।
शीते जयारससमैः शाल्मलीविजयाद्रवैः ॥ ९९ ॥
भावयेत् सप्तधा वज्र--कपाटं स्याद् रसोत्तमः ।
माषद्वयं त्रयं वाऽस्य मधुना ग्रहणीं जयेत् ॥१००॥

ग्रहणीवज्रकपाटे—जयन्ती=जया, तस्याः मूलत्वक् चूर्णम्। उग्रा=वचा, अभ्र=मभ्रकभस्म, कज्जलीं विधाय तत्र शेषद्रव्याणि दत्त्वा जयन्तीभृङ्गराजजम्बीरद्रवैर्दिनत्रयं=प्रत्येकं त्रिवासरम् (एक द्रव्यस्य एकाहमेव भावना देयेति आढ़मल्लः) भावयित्वा गोलकं मन्दवह्निना यामार्धं स्वेदनीयम् ।

त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत् ।
लोहपात्रे शरावञ्च दत्तोपरि विमुद्रयेत् ॥
अधो वह्निं शनैः कुर्याद्यामार्धं तत उद्धरेत् ॥ इति शा.ध.

शीते च जया-शाल्मली-विजया=भङ्गा-रसैः प्रत्येकं सप्त भावना ॥ ९८–१०० ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, यवक्षार, जयन्ती, वच, अभ्रकभस्म, सुहागा भुना समभाग ले। कज्जली में अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला जयन्ती, भांगरा तथा जम्बीरी के रस तीन २ दिन पीसकर गोला बना आधा पहर मन्दाग्नि से स्वेद

करे। जब शीतल हो जाये तो जयन्तिका के रस, सेमल के रस और भांग के रस से इसको सात सात बार भावना दे। इस रस का नाम वज्रकपाट रस है। इसे दो माषा या तीन माषा लेकर शहद से दें तो ग्रहणी रोग नाश करता है॥ मात्रा–४ रत्ती॥ ९८–१००॥

प्रकारान्तरो ग्रहणीवज्रकपाटः—

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकाः।
द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् ॥१०१॥
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत्।
पुटेत् मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥१०२॥
बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा।
लोध्रप्रतिविषामुस्ता–धातकीन्द्रयवामृताः॥ १०३॥
प्रत्येकमेतत्स्वरसैर्भावना स्यात् त्रिधा त्रिधा।
माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा॥ १०४॥
हन्यात् सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि।
कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः॥ १०५॥

प्रकारान्तरग्रहणीवज्रकपाटे—तारं=रजतभस्म, हेम=सुवर्णभस्म, सारो=लौहभस्म, तारादिचतुर्णां प्रत्येकमेको भागः। गन्धस्य भागद्वयं सूतस्य भागत्रयमादाय कपित्थकाथेन (पत्ररसेनेति भै. र. व. टी.) गाढं=भृशं, विमर्द्य मृगशृङ्गे पूरयित्वा मुखरोधं विधाय,

बहिः=परितो मृत्कर्पटेनाऽलिप्य मध्यपुटेन" वराहपुटेन यथा—इत्थं चारत्निके कुण्डे पुटं वाराहमुच्यते। (र. इ. चू. ५–१४२)। गोलकस्य बाहरारक्तभावात् प्रागेवेत्यर्थः। तत उद्धृत्य बलारसेन सप्तवारमपामार्गरसेन त्रिवारं लोध्रः प्रतिविषा (अतीस इति) मुस्ता धातकी इन्द्रयवाः (इन्द्रजौ इति) अमृता (गुडूची) एतेषां प्रत्येकं स्वरसेन भावनात्रयम्। आन्त्रक्षये संग्रहग्रहण्यां हृच्छूलज्वरकासादौ मधुमरिचैः प्रदीयते। मा. २ र.॥ १०१–१०५॥

भाषा—चांदीभस्म, मोतीभस्म, स्वर्णभस्म, लौहभस्म; एक २ तोला शुद्ध गन्धक दो तोला, शुद्ध पारा ३ तोला। कज्जली में सब द्रव्य मिला कैथ के रस से खूब घोटकर सुखा के हरिण के सींग में भर दें। अनन्तर कपड़मिट्टी कर मध्यपुट में भस्म करें। शीतल होने पर औषध को निकाल कर चूर्ण करें। बला के रस से सात वार भावना दें। फिर अपामार्ग के रस से तीन वार भावना दें। लोध, अतीस, मोथा, धाय के फूल, इन्द्रजौ तथा गिलोय इन में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से तीन २ भावना दें। फिर इसको सुखा लें। इसको एक माषा लेकर शहद और मिरचों के चूर्ण से मिलाकर खावें तो सब प्रकार के अतीसार और सब प्रकार की ग्रहणी दूर होती है। यह रस अग्नि को दीपन करने वाला है तथा इसका नाम ग्रहणीवज्रकपाट रस है। मात्रा–२ र.॥ १०१–१०५॥

पानीयभक्तवटी—

कृष्णाभ्रलौहमलशुद्धविडङ्गचूर्णं
प्रत्येकमेकपलिकं विधिवद्विधाय।

हपुटेन यथा—
-१४२)। गोल-
बलारसेन सप्त-
स इति) मुस्ता
एतेषां प्रत्येकं
लज्वरकासादौ
हभस्म; एक र
ना। कज्जली में
ा के हरिण के
में भस्म करें।
। बला के रस
से तीन वार
, इन्द्रजौ तथा
न २ भावना
कर शहद और
के अतीसार
रस अग्नि को
कपाट रस है।

चव्यं कटुत्रयफलत्रयकेशराज--
दन्तीपयोदचपलानलघण्टकर्णाः ॥ १०६ ॥
माणौ ल्लकन्दवृहतीत्रिवृताः ससूर्य्या--
वर्त्ताः पुनर्नविकया सहितास्त्वमीषाम् ।
मूलं प्रति प्रति विशोधितमभ्रमेकं
चूर्णं तदर्धरसगन्धकमेकसंस्थम् ॥ १०७ ॥
कृत्वाऽऽर्द्रकीयरससम्वलितञ्च भूयः
सम्पिष्य तस्य वटिका विधिवद् विधेया ।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां
दुर्नामकामलभगन्दरशोथगुल्मान् ॥ १०८ ॥
शूलञ्च पाकजनितं सतताग्निमान्द्यं
सद्यः करोत्युपचितिं चिरनष्टवह्नेः ।
कुष्ठं निहन्ति पलितञ्च वलिं प्रवृद्धां ।
श्वासञ्च कासमपि पाण्डुगदं निहन्ति ॥ १०९ ॥
वार्य्यन्नमांस--दधिकाञ्जिकतक्रमत्स्य--
वृन्ताम्लतैलपरिपक्वभुजो यथेष्टम् ।
शृङ्गाटबिल्वगुडकञ्चटनारिकेल--
दुग्धानि सर्वविदलानि विवर्जयेत् तु ॥ ११० ॥

पानीयभक्तवट्याम्—कृष्णाभ्रं=कृष्णत्वसामान्यात् वज्रकृष्णाभ्रयोर्ग्रहणमिति (र. इ. चि. अ. ४ श्लो. ५) लौहमलं षष्टिवर्षपुराणं तच्च शुद्धं पुटितं च ज्ञेयम्। विडङ्गं तुषरहितं स्यात्। कृष्णाभ्रादिद्रव्यत्रयस्य प्रत्येकं पलं विधिवद्ग्राह्यम्, केशराजो=भृङ्गराजः, दन्ती=दन्तीमूलत्वक्, पयोदो=मुस्तकः, चपला=पिप्पली, अनल=श्वित्रकः, खण्डकर्णो=वज्रकन्दः, शकरकन्द इति भाषायाम्। (वै. श. सि.) खण्डकर्णो=वन्यसूरणकन्द इति केचित्। माणो=मानकन्दः, ओलकन्दः=शूरणः, स च श्वेतरक्तारण्यभेदेन त्रिविधोऽपि शोधितो ग्राह्यः, बृहती=बृहत्याः पञ्चाङ्गग्रहणम्, ससूर्य्यावर्त्ता-सूर्यावर्तः=हुलहुल इति, तत्सहिता, पुनर्नविका=पुनर्नवा, अमीषां प्रत्येकमक्षं कर्षं चूर्णं गृहीत्वा, तदर्धं रसगन्धकमिति गन्धकस्याऽक्षार्धं पारदस्य चाक्षार्धं गृहीत्वा विधिवत्कज्जलीं विधाय कृष्णाभ्रादिना मेलयित्वा आर्द्रकरसेन मर्दयेत्। मा. २ र.। दुर्नाम=अर्शः। पाकजनितशूलं=परिणामशूलम्। सततग्निमान्द्यं=सर्वकालिकः मन्दानलम्, उपचितिं=शरीरपरिमाणम्। चिरनष्टवह्ने=श्चिराद्वहोः कालान्नष्टो प्रणाशं गतो वह्निर्यस्य तस्य। अस्याः सेवने पथ्यमाह-वार्य्यन्नमांसेति—वृक्षाम्लं=तिन्तिड़ीकम्। अपथ्यमाह- शृङ्गाटेति-कञ्चटः=चौलाई इति ॥ १०६-११० ॥

भाषा—कृष्णाभ्रकभस्म, मण्डूरभस्म, विडङ्ग का चूर्ण, प्रत्येक एक २ पल विधिपूर्वक ले। चव्य, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, केशराज, दन्तीमूल, मोथा, पिप्पली तथा चीता, घण्टाकर्ण माणकन्द, सूरण बड़ी कटेली, निशोथ सूरजमुखी

पुनर्नवा, इन में से प्रत्येक का मूल लेकर निर्मल करके चूर्ण करलें। चव्य से पुनर्नवा तक प्रत्येक द्रव्य को एक २ अक्ष लें। शुद्ध-पारा तथा शुद्ध गन्धक आधा २ कर्ष लें कज्जली में उपर्युक्त सब द्रव्यों को मिलाकर अदरक का रस डाल खरलकरें और दो रत्ति की गोली बनालें। इसके सेवन से अम्लपित्त, अरुचि, असाध्य ग्रहणी, बवासीर, कामला, भगन्दर, शोथ, गुल्म, परिणामज शूल, निरन्तर रहनेवाला अग्निमान्द्य, ये रोग दूर होते हैं। नष्ट अग्नि वाले की अग्नि को शीघ्र बढ़ाता है। कुष्ठ नाश करता है, पलितरोग तथा बढ़ी हुई वलियों को दूर करता है। श्वास, कास और पाण्डु रोग का नाशक है। इसके सेवन के समय वारिभक्त (अ. ५८) मांस, दही, काँजी, छाछ, मछली, वृक्षाम्ल तथा तेल में पकाये पदार्थ यथेष्ट खावे, परन्तु सिंघाड़े, वेल, गुड़, जलचौलाई, नारियल, दूध तथा सब प्रकार की दालें न खावे॥ १०६–११०॥

शम्बूकादिवटी—

दग्धशम्बूकसिन्धूत्थं तुल्यं क्षौद्रेण मर्दयेत्।
निष्ककेण निहन्त्याशु वातसङ्ग्रहणीगदम्॥ १११॥

शम्बूकादिवट्याम्—शम्बूका=जलशुक्तिः, सिन्धूत्थं=सैन्धवलवणम्, निष्ककेण=एकनिष्क (माषकचतुष्टय) प्रमाणेन, मधुना प्रत्यहं त्रिर्भक्षयेत् वातग्रहण्यां हृदयपार्श्वादिषु वेदनायां शूलोदराध्मानयोर्वह्निमान्द्यजशूले च प्रयुज्यते॥ १११॥

भाषा—शम्बूक की भस्म और सेंधानमक समभाग ले शहद मिला एक निष्कभर खायें तो वातसंग्रहणी दूर होती है। मात्रा एक माशा है॥ १११॥

हिरण्यगर्भपोट्टलीरसः—

एकांशो रसराजस्य ग्राह्यौ द्वौ हाटकस्य च।
मुक्ताफलस्य चत्वारो भागाः षड् दीर्घनिस्वनात् ॥ ११२ ॥
त्र्यंशं बलेर्वराट्याश्च टङ्कणो रसपादिकः।
पक्वनिम्बुकतोयेन सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ११३ ॥
मूषामध्ये न्यसेत् कल्कं तस्य वक्त्रं निरोधयेत्।
गर्त्तेऽरत्निप्रमाणे तु पुटेत् त्रिंशद्वनोपलैः ॥ ११४ ॥
स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा रसं मूषोदरान्नयेत्।
ततः खल्लोदरे मर्द्यः सुधारूपं समुद्धरेत् ॥ ११५ ॥
एतस्यामृतरूपस्य दद्याद् गुञ्जाचतुष्टयम्।
घृतमाध्वीकसंयुक्तमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ ११६ ॥
मन्दाग्नौ रोगसङ्घे च ग्रहण्यां विषमज्वरे।
गुदाङ्कुरे महाशूले पीनसे श्वासकासयोः ॥११७॥
अतीसारे महाव्याधौ श्वयथौ पाण्डुके गदे।
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु यकृत्प्लीहोदरेषु च ॥११८॥
वातपित्तकफोत्थेषु द्वन्द्वजेषु त्रिजेषु च।
दद्यात् सर्वेषु रोगेषु श्रेष्ठमेतद् रसायनम् ॥ ११९ ॥

हिरण्यगर्भपोट्टलीरसे—रसराजस्य=पारदस्य, एकांश=एको भागः, हाटकस्य=सुवर्णस्य भागद्वयम् मुक्ताफलस्य=मौक्तिकस्य भाग-चतुष्टयं दीर्घनिस्वनात्=दीर्घनादापरपर्यायशङ्खभस्मनस्तस्यैवोदरे युक्तत्वात् षड्भागाः, बले=र्गन्धकस्य, वराट्याः=कपर्दस्य च प्रत्येकं

भागत्रयं टङ्कणः=सौभाग्यम्, रसपादिकः=रसस्य=पारदस्य पादिकश्चतुर्थांशः, पक्वनिम्बुकतोयेन=आश्विनमासजातेन निम्बुरसेनेत्यर्थः। त्रिशद्वनोपलैरिति=यावतोष्मणा रसस्य पाकः स्यान्न च पारदस्योत्पतनमिति भावः। एकोनत्रिंशदूषणैरिति=सुकुमारबालादिषु चतुष्पञ्चमरिचानुपानेन देयः रोगसङ्घे=रोगसङ्करे। महाशूले=कैन्सरादिरोगजे शूले, महाव्याधाविति श्वयथुरूपे महाव्याधावित्यर्थः। विषमज्वरयुतग्रहण्यामतिसारे जीर्णप्रवाहिकायां ग्रहण्यां चाल्पज्वरे सति लघुपथ्येन सहाऽस्य प्रयोगो भवति आन्त्रक्षये प्रशस्तोऽयं योगः। ।। ११२–११६ ।।

भाषा—शुद्ध पारा १ तोला, स्वर्णभस्म दो तोला, मोतीभस्म ३ तोला, शङ्खभस्म ६ तोला, शुद्ध गन्धक ३ तोला, कौड़ीभस्म ३ तोला, भुना सुहागा ३ माशा कज्जली में सब द्रव्य मिला एकत्र पके हुए नीबू के रस से मर्दन करे। फिर इस कल्क को मूषा में रख मुख बन्दकर सन्धिबन्धन करदे। और एक अरत्नि प्रमाण गढ़े में तीस जंगली उपलों की आग में फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर मूषा के अन्दर से रस को निकाल ले। इसे खरल में अत्यन्त महीन पीसकर शीशी में भर रखे। इस अमृतरूपी रस की चार रत्ती की मात्रा को घी शहद और उनत्तीस काली मिरचों के चूर्ण में मिलाकर दे। मन्दाग्नि, ग्रहणी में, उत्पन्न रोगसमूह, विषम ज्वर, बवासीर, महाशूल, पीनस, श्वास, कास, अतीसार, महाव्याधि, सूजन, पाण्डुरोग, सब प्रकार के कोष्ठरोग, यकृदुदर, प्लीहोदर, वात पित्त कफ से होने वाले अर्थात् एकदोषज द्विदोषज त्रिदोषज सब रोगों में यह लाभ करता है और श्रेष्ठ रसायन है। मात्रा–एक रत्ती से २ रत्ती ।। ११२—११६ ।।

रसाभ्रवटी—

शुद्धसूतस्य कर्षैकं कर्षकं गन्धकस्य च।
द्वयोः कज्जलिकां कृत्वा तुल्यं व्योम प्रदापयेत् ॥१२०॥
केशराजस्य भृङ्गस्य निगुण्ड्याश्चित्रकस्य च।
ग्रीष्मसुन्दरमण्डूकी-जयन्तीन्द्राशनस्य च ॥१२१॥
श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम्।
रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णञ्च मरिचोद्भवम् ॥१२२॥
देयं रसार्धभागेन चूर्णं टङ्कणसम्भवम्।
सम्मर्द्य वटिकां कुर्य्यात् कलायसदृशीं बुधः ॥१२३॥
हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवां रुजम्।
ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥१२४॥
चातुर्थिके ज्वरे श्रेष्ठो ग्रहण्यातङ्कनाशनः।
दधि चावश्यकं देयं प्राह नागार्जुनो मुनिः ॥१२५॥

रसाभ्रवट्याम्—गन्धकस्य चेति चाच्छुद्धगन्धकस्येत्यर्थ
व्योम=अभ्रम्, तुल्यं=भागद्वयम् प्रदापयेत्। केशराजस्य=भृङ्ग
शुक्लकृष्णभेदभिन्नस्य भृङ्गराजस्य ग्रीष्मसुन्दरः, शाकविशेषो
ख्यातचरः। मण्डूकी=मण्डूकपर्णी, जयन्ती=जैंत इति भा
इन्द्राशनस्य=भङ्गायाः, पर्णसम्भवं=ताम्बूलजम्, कज्जलीं वि
रसतुल्यं=पारदसमानं मरीचोद्भवं=मरीचस्य चूर्णम्। रसार्धभा

पारदार्धभागेन=टङ्कणचूर्णं देयम्। सर्वं सम्मर्द्य कलायमानावटी विधेया। ग्रहण्यां ज्वर-कास-श्वासादिषु प्रचरति। प्रयोगराट्= झटितिगुणकरत्वेन स्वजातीयप्रयोगान्तरापेक्षया श्रेष्ठः सिद्धः= प्रसिद्धः॥ १२०—१२५॥

भाषा—शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक एक कर्ष लेकर दोनों की कज्जली करे। उसमें अभ्रकभस्म दो कर्ष डालकर मिलाले। फिर क्रमशः केशराज, भांगरा, संभालू, चीता, ग्रीष्मसुन्दरक, मण्डूकपर्णी, जयन्ती, भांग, श्वेत-अपराजिता; इनके पत्तों के स्वरस से मर्दन करें। पश्चात् मिरचों का चूर्ण एक कर्ष और भुने सुहागे को आधा कर्ष डाल सबको भली प्रकार मर्दन कर मटर बराबर गोली बनावें। इस योगराज के सेवन से खांसी, क्षय, श्वास वातकफ से होने वाले रोग, ज्वरातीसार एवं ज्वर तथा अतीसार में निश्चय से लाभ होता है। चातुर्थिक ज्वर को दूर करने में उत्तम है। ग्रहणी रोग को नाश करता है। इसमें दही खाना नागार्जुन मुनि ने आवश्यक बताया है॥ १२०—१२५॥

अन्योऽग्निकुमारः—

रसं गन्धं विषं व्योषं टङ्कणं लौहभस्मकम्।
अजमोदाऽहिफेनञ्च सर्वतुल्यं मृताभ्रकम्॥ १२६॥
चित्रकस्य कषायेण मर्दयेद् याममात्रकम्।
मरिचाभां वटीं खादेदजीर्णं ग्रहणीं तथा।
नाशयेन्नात्र सन्देहो गुह्यमेतच्चिकित्सितम्॥ १२७॥

अन्याग्निकुमारे—अजमोदा=यवानिका । अन्तःसम्मार्जने प्रायोऽजमोदा च यमानिका इति वचनात् । गुह्यमेतदिति-अहिफेनयोगात् त्वरितगुणकरत्वेन गुह्यमित्यर्थः। अभ्रयोगाद् बलकरत्वञ्चेति ज्ञेयम् । ईषद्गोलहरीतक्याद्यन्यतरानुपानेन देयः ॥१२६-१२७॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, सोंठ का चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, भुना सुहागा, लोहभस्म, अजमोदा का चूर्ण, शुद्ध अफीम, एक २ तोला, अभ्रक भस्म दस तोला। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला चीते के क्वाथ से एक पहर तक मर्दन करें । फिर काली मिरच के बराबर गोली बना रखें । इससे अजीर्ण तथा ग्रहणी में अवश्य लाभ होता है । यह औषध गोप्य है ॥ १२६-१२७ ॥

नृपतिवल्लभो रसः—

ज्ञातीफललवङ्गाब्द-त्वगेलाटङ्करामठम् ।
जीरकं तेजपत्रञ्च यमानीविश्वसैन्धवाः ॥१२८॥
लौहमभ्रं रसो गन्धस्ताम्रं प्रत्येकशः पलम् ।
मरिचं द्विपलं दत्त्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥१२९॥
धात्रीरसेन वा पेष्यं वटिकाः कुरु यत्नतः ।
श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्मितः ॥१३०॥
सूर्य्यवत् तेजसा चायं रसो नृपतिवल्लभः ।
अष्टादशवटीः खादेत् पवित्रः सूर्य्यदर्शकः ॥१३१॥
हन्ति मन्दानलं सर्वमामदोषं विसूचिकाम् ।

प्लीहगुल्मोदराष्ठीला-यकृत्पाण्डुत्वकामलाम् ॥१३२॥
सर्वानेव गदान् हन्ति चण्डांशुरिव पापहा।
बलवर्णकरो हृद्य आयुष्यो वीर्य्यवर्धनः ॥१३३॥
परं वाजीकरः श्रेष्ठः पटुदो मन्त्रसिद्धिदः।
अरोगी दीर्घजीवी स्याद्रोगी रोगाद्विमुच्यते ॥१३४॥
रसस्यास्य प्रसादेन बुद्धिमान् जायते नरः।
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद् भिषक् ॥१३५॥

नृपतिवल्लभे—अब्दो=मुस्तकम्, टङ्कः=सोहागा इति, रामठं=हिङ्गु, विश्वं=शुण्ठी। जातीफलादिताम्रान्तानां प्रत्येकं पलं मरिचचूर्णस्य द्विपलं दत्वा, अजाक्षीरेण आमलकीफलरसेन वा वटिका कार्या। गहननाथेन तदाख्येन महात्मना विचिन्त्य=विशेषेण विचार्य। सूर्यवत्=रवितुल्यः, तेजसा=वीर्येण, परिनिर्मितो=रचितः पवित्रो ब्रह्मचर्यादिनियमधारणेन पवित्रः। सूर्यदर्शकः=सूर्योपासनेन हि अनेकरोगनिवृत्तिर्भवति।

अष्टादशवटीमिति=अष्टादशदिनात्मकोऽस्य प्रयोगः। यथा-दोषानुपानेन प्रत्यहमेकैकां वटीं भक्षयेत्। मन्दानलं=मन्दाग्निम्, अष्ठीला=पौरुषग्रन्थिवृद्धिः साच प्रायोवृद्धावस्थायामसाध्यकल्पा भवति। पाण्डुत्वं यकृद्विकारविशेषः। चण्डांशुरिव=सूर्य इव, हृद्यः=हृदयस्य शिथिलतानिवर्तकः। पटुदो=रोगहरः। पटुर्दक्षे च नीरोगे इति मेदिनी। वातश्लेष्मजग्रहण्या मध्यावस्थायामानाहकटिपृष्ठ-शूलादिषु हरीतक्यनुपानेन, अग्निमान्द्ये द्रवमलप्रवृत्तौ मुस्तारसेन,

भ्रष्टजीरकचूर्णमधुना वा प्रयोगः कार्यः। विषूचिकायां भ्रष्टजीरकेण मूत्ररोधवमनपिपासाध्मानादयः प्रतिनिवर्त्तन्ते, मलश्च पीतवर्णो भवति क्रमेण मूत्रं सम्यक् प्रवर्तते ॥ १२८-१३५॥

भाषा—जायफल, लौंग, मोथा, दारचीनी, छोटी इलायची के बीज, भुना सुहागा, हींग, जीरा, तेजपत्र, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्र-भस्म, एक २ पल लें। काली मिरचों का चूर्ण दो पल लें। कज्जली में अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला बकरी के दूध अथवा आंवले के रस से पीसकर गोलियां बना लें। यह नृपतिवल्लभ रस तेज में सूर्य के समान है अर्थात् अपना रोगनाशक प्रभाव शीघ्र और अवश्य करता है। सूर्य का दर्शन करने वाला पवित्र होकर रोगी इसकी अठारह गोलियों का सेवन करे। मन्दाग्नि, सब प्रकार के आमदोष, विसूचिका, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, यकृत, पाण्डु, कामला आदि सब रोगों का पापनाशक सूर्य के समान नष्ट करता है। बल वर्ण बढ़ाने वाला, हृदय के लिये हितकारी, आयु को बढ़ाने वाला, वीर्यवर्धक, परम वाजीकरण, आरोग्य देने वाला तथा मन्त्र-सिद्धि देने वाला है। यदि नीरोग पुरुष इसका सेवन करे तो वह दीर्घायु होता है और रोगी सेवन करे तो वह रोग से मुक्त हो जाता है। अर्थात् रसायनगुण के लिये इसे नीरोग पुरुष भी सेवन कर सकते हैं। इसके सेवन से मनुष्य बुद्धिमान् हो जाता है। इसकी गोली बेर की गुठली के तुल्य बनानी चाहिये। नृपतिवल्लभ रस को श्री गहनानन्द ने विचारपूर्वक बनाया है ॥ १२८-१३५ ॥

राजवल्लभो रसः—

जातीफललवङ्गाब्द—त्वगेलाटङ्करामठम् ।
जीरकं तेजपत्रञ्च यमानी विश्वसैन्धवम् ॥ १३६ ॥
लौहमभ्रं सताम्रञ्च रसगन्धकमेव च ।
मरिचं त्रिवृता रूप्यं प्रत्येकं द्विपलोन्मितम् ॥१३७॥
धात्रीरसे वटीं कुर्य्याद् द्विगुञ्जाफलमानतः ।
हन्ति शूलं तथा गुल्मामवातं सुदारुणम् ॥१३८॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च चक्षुःशूलं हलीमकम् ।
शिरःशूलं कटीशूलमानाहञ्चाष्टशूलकम् ॥१३९॥
क्रिमिकुष्ठानि दद्रूणि वातरक्तं भगन्दरम् ।
उपदंशमतीसारं ग्रहण्यर्शः प्रवाहिकाम् ।
राजवल्लभनामाऽयं महेशेन प्रकाशितः ॥१४०॥

राजवल्लभे—रूप्यं=रजतभस्म, धात्रीरसे=पक्कामलकीफलरसे क्वाथे वा । ग्रहणीयुतामवाते पृष्ठशूलादिषु विशेषेणायं प्रचरति । शूले कोष्ठबद्धतायां सैन्धवहरीतकी चूर्णानुपानेन योज्यः। नृपतिवल्लभ-रसाद्रूप्यभस्माऽत्राधिकमतो गुणोऽप्यस्य तद्वज्ज्ञेयः ॥१३६–१४०॥

भाषा—जायफल, लौंग, मोथा, दारचीनी, छोटी इलायची, भुना सुहागा, हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधानमक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मिरच, निसोथ, रौप्य भस्म, । दो २ पल लें । कज्जली में अन्य द्रव्य मिला

आंवले के रस से घोट दो रत्ती की गोली बनावें। यह शूल, गुल्म, घोर आमवात, हृदय की शूल, पार्श्वशूल, चक्षुशूल, हलीमक, शिरःशूल, कटीशूल, आनाह, आठों प्रकारके शूल, कृमिरोग, कुष्ठरोग, दाद, वातरक्त, भगन्दर; उपदंश, अतीसार, ग्रहणी, बवासीर, प्रवाहिका; इन रोगों का नाश करता है। यह राजवल्लभ नामक रस महादेव जी ने प्रकाशित किया है ॥ १३९—१४० ॥

बृहन्नृपवल्लभः—

रसगन्धकलौहाभ्रं नागं चित्रं त्रिवृत्समम् ।
टङ्कं जातीफलं हिंगु त्वगेलाब्दलवङ्गकम् ॥१४१॥
तेजपत्रमजाजीं च यमानीविश्वसैन्धवम् ।
प्रत्येकं तोलकं चूर्णं कशोचतारयोस्तथा ॥१४२॥
निरुत्थकं मृतं हेम तथा द्वादशरक्तिकम् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव धात्र्याश्च स्वरसेन च ॥१४३॥
भावयित्वा प्रदातव्यो माषद्वयप्रमाणतः ।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय पथ्यं भक्षेद् यथेप्सितम् ॥१४४॥
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च दुर्नामग्रहणीं जयेत् ।
आमाजीर्णप्रशमनः सर्वरोगनिसूदनः ।
नाशयेदौदरान् रोगान् विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥१४५॥

बृहन्नृपवल्लभे—अब्दो=मुस्तकम्, तेजपत्रं=तेजपात इति, अजाजी=श्वेतजीरकम्, तारं=रजतभस्म, निरुत्थकन्नाम भस्मीकृतं

यस्मिन्नपञ्चकैर्ध्मातं न पुनर्जीवति तन्निरुत्थम, अथवा-रौप्येण सह संयुक्तं ध्मातं रौप्ये न चेल्लगेत् तदा निरुत्थमित्युक्तं लोहं तदपुनर्भवम् । र. र. स. ८. २६ । आर्द्रकधात्रीरसाभ्यां क्रमेण सप्तकृत्वो भावयित्वा द्विमाषमात्रया प्रदेयः । वृद्धास्तु—रक्तिकाचतुष्टयमात्रया ददते । यथेप्सितं=यथेच्छम्, दुर्नाम=अर्शः, आमाजीर्णप्रशमनः=आमप्रशमनोऽजीर्णप्रशमनश्चेत्यर्थः, औदरान्=उदरभवानतीसारादीन् । जीर्णप्रवाहिकायां कुटजत्वक्रसेन, अर्शांसि छागदुग्धेन दीयते । र. यो. सा. तु त्रिवृत्समत्र च मुस्तकम्—अब्दलवङ्गकमत्र वह्निवङ्गकम्, तारस्थाने ताम्रम्—द्वादशरक्तिकमत्र माषचतुष्टयमिति, माषद्वयमत्र चणमात्रमिति क्रमेण पाठान्तराणि । अन्यदेशीयभाषापुस्तकेष्वपि मूलपाठ एव दृश्यते ॥ १४१–१४५ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, सीसाभस्म, चोते का चूर्ण, निसोत का चूर्ण, भुना सुहागा, जायफल का चूर्ण, हींग, दारचीनी का चूर्ण, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण, मोथे का चूर्ण, लौंग का चूर्ण, तेजपात का चूर्ण, श्वेत जीरे का चूर्ण, अजवायन का चूर्ण सोठ का चूर्ण, सेंधानमक, मिरचों का चूर्ण, चांदीभस्म, एक २ तोला लें । कज्जली में अन्य द्रव्य मिला स्वर्णभस्म बारह रत्ती डाल खरल करे । पश्चात् अदरक तथा आंवले के रस से पृथक् सात-सात भावना देकर दो माषा प्रमाण में में प्रातःकाल खाने को दे । पथ्य यथेष्ट खावे । यह अग्निमान्द्य, अजीर्ण, बवासीर, ग्रहणी, आमाजीर्ण आदि सब

रोगों को शान्त करता है। उदर के रोगों को यह इस प्रकार दूर करता है जैसे विष्णु का चक्र असुरों को ॥ १४१—१४५॥

महाराजनृपतिवल्लभोरसः—

कर्षत्रयं मृतं कान्तं मृताभ्रं मृतताम्रकम् ।
मृतं तारं माक्षिकञ्च कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ॥१४६॥
मृतं स्वर्णं मृतं तारं टङ्कणं शृङ्गमेव च ।
वसिरं दन्तिमूलञ्च मरिचं तेजपत्रकम् ॥१४७॥
यमानीं वालकं मुस्तं शुण्ठकञ्च सधान्यकम् ।
सिन्धूद्भवं सकर्पूरं विडङ्गं चित्रकं विषम् ॥१४८॥
पारदं गन्धकञ्चैव तोलमानं प्रदापयेत् ।
तोलद्वयं त्रिवृच्चूर्णं लवङ्गं तच्चतुर्गुणम् ॥१४९॥
जातीकोषफलञ्चैव तत्समं स्याद्वराङ्गकम् ।
सर्वेषामर्द्धभागन्तु विडकं तत्र मिश्रयेत् ॥१५०॥
सर्वमेकीकृतं यद् यत् त्रुटिचूर्णञ्च तत्समम् ।
भावना च प्रदातव्या छागीदुग्धेन सप्तधा ॥१५१॥
मातुलुङ्गरसैः पश्चाद् भावयेत् सप्तवारकम् ।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा भक्षयेद्दशरक्तिकाम् ॥१५२॥
मन्दानलं सङ्ग्रहणीं प्रवृद्धामामानुबन्धां क्रिमिपाण्डुरोगम् ।
छर्द्यम्लपित्तं हृदयामयञ्च गुल्मोदरानाहभगन्दरञ्च ॥१५३॥

अर्शांसि वै पित्तकृतानशेषान् सामं सशूलाष्टकमेव हन्ति ।
साजीर्णविष्टम्भविसर्पदाहं विलम्बिकाञ्चाप्यलसं प्रमेहम् ॥१५४
कुष्ठान्यशेषाणि च कासशोषं हन्यात् सशोथं ज्वरमूत्रकृच्छ्रम् ।
मतान्तरे सर्वसुभद्रनामा महेश्वरेणैव विभाषितोऽयम् ॥१५५॥

महाराजनृपतिवल्लभे—मृत=मपुनर्भवम्, कान्तं (ज्वरे-२४०-श्लोके) मृताभ्रं=निश्चन्द्रपुटितममृतीकृतं कृष्णाभ्रम्, मृतं तारं=निरुत्थरौप्यभस्म, माक्षिकं=स्वर्णमाक्षिकभस्म, तारं=शुद्धमौक्तिकम् तथा च—'तारो मुक्तादिसंशुद्धौ तरणे शुद्धमौक्तिके' इति अ. टी. विश्वः । यत्तु कैश्चित् द्वितीयं मृततारमित्यस्य व्याख्यानं रजतमाक्षिकमिति, एवमुभयत्र तारशब्दव्याख्याने रजतमाक्षिकभस्मनो भागद्वयमित्युक्तं तदापाततः । सम्प्रदायोऽपि शुद्धमुक्तादानस्यैव । शृङ्गं=हारिणशृङ्गभस्म, वशिरं=गजपिप्पली, शुण्ठकं=शुण्ठी, सिन्धूद्भवम्=सैन्धवम्, त्रिवृत्=श्वेतत्रिवृत्, जातीकोषफलं=जातीकोषं=जावित्री, फलं=जातीफलम्, वराङ्गं=दारुसिता, विडकं=विडलवणम्, त्रुटिचूर्णम्= क्षुद्रैलाचूर्णम् । तद्यथा कान्तभस्म—३ तो० अभ्रताम्ररौप्यमाक्षिकाणां प्रत्येकं तोलकम् । स्वर्णादिगन्धकान्तानां प्रत्येकमेकतोलकं त्रिवृच्चूर्णं द्वितोलकम् । लवङ्गजातीकोष-जातीफल-दारुसितानां प्रत्येकमष्टतोलकम् । सर्वार्धभागं-विट्लवणम्, सर्वसमं क्षुद्रैलाचूर्णम् । सर्वमेकत्र कृत्वा छागीदुग्धेन मातुलुङ्गरसेन सप्त सप्तभावना । मा. १० रक्तिकां छायाशुष्कां वटीं कृत्वा दद्यात् । मन्दानल=मल्पाग्निम्, आमानुबन्धां=आमयुक्ताम्

प्रवृद्धां=चिरकालजाम्, संग्रहणीं=पुनः पुनस्तरलमलप्रवृत्तामित्यर्थः, हृदयामयं=हृद्रोगम्, आनाहो=बद्धवट्कता, यद्दिमणः सवेदने आमातिसारे कास-श्वास-पार्श्वशूलादिषु जीरकचूर्णमधुना देयः। अशेषान्=समस्तान्, पित्तकृतान्=दाहादीनित्यर्थः। साम=आम-सहितम्, साजीर्णविष्टम्भविसर्पदाहम्=अजीर्णो यो विष्टम्भआनाह-विशेषस्तेन सहितं विसर्पजनितं दाहम्। कासशोषं=कासयुतं क्षय-रोगम्, सशोथं ज्वरमूत्रकृच्छ्रं=यत्र ज्वरस्य जीर्णावस्थायां शोथो मूत्रकृच्छ्रं च भवति तम्। यद्दिमणः सवेदने आमातिसारे कास-श्वास-पार्श्वशूलादिषु कासे च रक्तनिःसरणे बहुश्लेष्मणि वा हृद्दाहे च यथा योग्यानुपानेन प्रचरति॥ १४६-१५५॥

भाषा—कान्तलौहभस्म ३ तोला, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, मुक्ताभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, प्रत्येक द्रव्य एक तोला लें। स्वर्ण-भस्म, रौप्यभस्म, सुहागा, हिरण के सींग की भस्म, गजपीपल, दन्तीमूल, मिरच, तेजपत्र, अजवायन, सुगन्धबाला, मोथा, सोंठ, धनियां, सेंधानमक, कपूर, वायविडङ्ग, चीता, इन सब का चूर्ण तथा शुद्ध विष, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक प्रत्येक द्रव्य एक २ तोला लें। निसोत का चूर्ण दो तोले। लौंग, जायफल, जावित्री, दार-चीनी प्रत्येक का चूर्ण आठ २ तोले लें। सब वस्तुओं का जितना मान हो उससे आधा भाग विडनमक मिलावें। फिर जितना सब वस्तुओं का मान हो उतना छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण डालें। कज्जली में अन्य सब वस्तुओं को मिला बकरी के दूध से सात बार भावना दे और बिजौरा के रस की भी सात भावना

दे छाया में सुखाकर दस रत्ती की गोली बना ले। इसके सेवन से मन्दाग्नि, आमयुक्त बढ़ी हुई संग्रहणी, कृमिरोग, पाण्डुरोग, छर्दि, अम्लपित्त, हृदयरोग, गुल्म, उदर, आनाह, भगन्दर, बवासीर, सब पित्तजरोग, आम, आठों शूल, अजीर्ण, विष्टम्भ, विसर्प, दाह, विलम्बिका, अलसक, प्रमेह, सब प्रकार के कुष्ठ, कास, शोषरोग, शोथ, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग दूर होते हैं। यह महाराजनृपतिवल्लभ रस है। इसका दूसरा नाम सर्वसुभद्र रस भी है। इसे स्वयं महेश्वर ने कहा है ॥ १४६-१५५ ॥

अन्यो महाराजनृपतिवल्लभः—

माक्षिकं लौहमभ्रञ्च वङ्गं रजतहाटकम्।
ग्रन्थिर्यमानिका चोचं ताम्रं नागरटङ्कणम् ॥१५६॥
सैन्धवं बालकं मुस्तं धान्याकं गन्धकं रसम्।
भृङ्गी कर्पूरकञ्चैव प्रत्येकं माषकोन्मितम् ॥१५७॥
माषद्वयं रामठं स्यान्मरिचानां चतुष्टयम्।
जातीकोषं लवङ्गञ्च पत्रञ्च तोलकोन्मितम् ॥१५८॥
नाभिशङ्खं विडङ्गञ्च शाणं माषद्वयं विषम्।
कर्षषट्कं सत्रिमाषं सूक्ष्मैलानां ततः क्षिपेत् ॥१५९॥
विडं कर्षद्वयं सर्वं छागीक्षीरेण पेषयेत्।
चतुर्गुञ्जमितं खादेत् सानाहग्रहणीं जयेत् ॥१६०॥

शम्भुना निर्मितो ह्येष पूर्ववद् गुणकारकः।
नाम्ना महाराजपूर्वो नृपवल्लभ उच्यते ॥१६१॥

अन्यमहाराजनृपतिवल्लभे—हाटकं=सुवर्णम्, ग्रन्थिः=पिप्पलीमूलम्, चोचं=दारुसिता, शृङ्गी=काकड़ाशृङ्गी, रामठं=हिङ्गु, जातीकोषं=जावित्री, नाभिशङ्खम्=शङ्खनाभिः। माक्षिकादिकर्पूरान्तानां, प्रत्येकं माषकं हिङ्गु माषद्वयं मरिचचूर्णं माषचतुष्कं जातीकोषलवङ्गपत्राणां प्रत्येकं तोलकम्। शङ्खनाभिविडङ्गयोः प्रत्येकं माषचतुष्टयम्। विषं=माषद्वयम्, सत्रिमाषं=त्रिमाषयुतम्, कर्षषट्कं द्वादशतोलकम्, ग्रन्थकारसम्प्रदाये कर्षपदस्य द्वितोलकपरत्वात्। विडंकर्षद्वयं=तोलकचतुष्टयम्। प्रथमं विषं चूर्णीकृत्य छागीक्षीरेण मसृणं मर्दयेत् ततो रसगन्धकयोर्मसृणां कज्जलीं दत्त्वा शेषद्रव्याणि च छागीक्षीरेण मर्दयित्वा चतुर्गुञ्जमानां वटीं छायायां दतिशुष्कां कारयेत्। सानाहग्रहणीं=यत्र कदाचिदतिसारः पुनः कतिचिद्दिनानि—आनाहः, तादृशग्रहण्यामये प्रचरति। पूर्ववत्=पूर्वोक्तमहाराजनृपतिवल्लभस्य ये गुणास्तेऽत्रापि निर्दिश्यन्ते।
॥ १५६—१६१ ॥

इति श्री साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त विद्यार्णवकृतायां रसेन्द्रसारसंग्रहस्य—आनन्दीटीकायां ग्रहण्यधिकारः।

भाषा—स्वर्णमाक्षिकभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, वंगभस्म, चांदीभस्म, स्वर्णभस्म, पिप्पलीमूल का चूर्ण, अजवायन का चूर्ण, दारचीनी का चूर्ण, ताम्रभस्म, सोंठ का चूर्ण, भुना सुहागा, सेंधा

नमक, सुगन्धबाला का चूर्ण, मोथे का चूर्ण; धनियां का चूर्ण, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, काकड़ासिंगी का चूर्ण, कपूर, प्रत्येक द्रव्य एक २ माषा लें। हींग दो माषे लें। मिरच का चूर्ण चार माषे लें। जावित्री का चूर्ण, लौंग का चूर्ण, तेजपत्र का चूर्ण, प्रत्येक एक २ तोला लें। शङ्ख की नाभि की भस्म, विडङ्ग का चूर्ण एक २ शाण लें। शुद्ध विष दो माषा लें। छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण छः कर्ष तीन माशा ले। विडलवण दो कर्ष लें। कज्जली में सब द्रव्य मिला बकरी के दूध में घोट चार रत्ती की गोली बनावें। इससे आनाह सहित ग्रहणी रोग आराम होता है। यह रस शम्भु ने बनाया है। पूर्वोक्त महाराजनृपतिवल्लभरस के समान यह महाराजनृपवल्लभ रस भी गुण करता है ॥१५६-१६१॥

इति ग्रहणीचिकित्सा।

अथार्शः-चिकित्सा।

चक्रेश्वरो रसः-

चतुर्भागं शुद्धसूतं पञ्च टङ्कणमभ्रकम्।
त्रिदिनं भावयेद् घर्मे द्रवैः श्वेतपुनर्नवैः ॥१॥
द्विगुञ्जं भक्षयेन्नित्यं वातदुर्नामशान्तये।
सिद्धश्चक्रेश्वरो नाम रसश्चार्शःकुलान्तकः ॥ २ ॥

अथ हेमाद्रियुक्तक्रमेण ग्रहण्यनन्तरमर्शश्चिकित्सामाह—

चक्रेश्वरे—शुद्धसूतस्थाने रससिन्दूरदानं श्रेष्ठम्, अन्यथा समानभागगन्धकयोगः कार्यः। 'उक्ते पारदमात्रे तु सिन्दूरं प्रायशो

मतमित्युक्तेः'। अत एव र. र. क. मृतसूतस्येत्येव पाठः। श्वेत-पुनर्नवैः=श्वेतपुष्पपुनर्नवापञ्चाङ्गानःसृतैः। इयं पुनर्नवा फल-पाकान्ता भवति। वातदुर्नामशान्तये=वातजनितानां दुर्नाम्नामर्शसां शान्तये=निवृत्तये, अर्शः कुलान्तकः=अर्शसां कुलस्य गणस्य अन्तको=नाशकः, एतेन वातेतरार्शस्त्वप्यस्य प्रयोगो निर्दिष्टः। स च यथा वातजे वातकफजे वा अर्शसि, अग्निमान्द्य-कासाध्मानाऽरुचिषु हरीतकीसैन्धवचूर्णयुतेनोष्णजलानुपानेन प्रातःसायं प्रदेयः। सिद्धोऽर्शो निवर्तकौषधान्तरापेक्षया प्रख्यातः॥ १-२॥

भाषा—रससिन्दूर चार तोला, भुना सुहागा पांच तोला अभ्रक भस्म पांच तोला ले। इसे श्वेतपुनर्नवा के रस से तीन दिन धूप में भावना दे। इस चक्रेश्वर रस की दो रत्ति की मात्रा वातज बवासीर के नाश के लिए नित्य खानी चाहिये यह बवासीर का नाश करने में सिद्ध है॥ १—२॥

तीक्ष्णमुखो रसः—

मृतसूतार्कहेमाभ्रं तीक्ष्णं मुण्डञ्च गन्धकम्।
मण्डूरञ्च समं ताप्यं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम्॥ ३॥
अन्धमूषागतं सर्वं ततः पाच्यं दृढाग्निना।
चूर्णितं सितया माषं खादेत् तच्चार्शसां हितम्।
रसस्तीक्ष्णमुखो नाम चासाध्यमपि साधयेत्॥ ४॥

तीक्ष्णमुखे—मृतसूतं=रससिन्दूरम्, अर्कः=ताम्रभस्म, हेम=सुवर्णभस्म, तीक्ष्णं=काललोहं तच्च रोहण-वाजर-चपलालयभेदात्

त्रिविधम्, खड्गादिनिर्माणे भवत्यस्योपयोगः। मुण्डम्=मृदु-कुण्ड-कडारभेदात् त्रिविधम्। कटाहादिपात्रनिर्माणे भवत्यस्योपयोगः, मण्डूरं प्रसिद्धम्, ताप्यं=तापीनदीतीरभवं स्वर्णमाक्षिकमिति यावत्। अन्धमूषागतं=वज्रमूषा (अ. १. ८६) ज्ञेया। सर्वं समानं गृहीत्वा कुमारीस्वरसेन दिनमेकं विमर्द्य अन्धमूषायां कृत्वा दृढ़ाग्निना=खरकरीषाग्निना पाकः कार्यः। सितया=शर्कराजलेन इक्षुरसेन वा माषमात्रया देयः। अधुना तु द्विरक्तिमात्रया दीयते। वातिके वातपैत्तिके सान्निपातिके वार्शसि कासकटिपृष्ठादिवेदनायां प्रमेह-मूत्रकृच्छ्रादिषु वातजेषु वा उपद्रवेषु त्रिफलाजलमधुना प्रयुज्यते। र. यो. सा. टी. तु र. र. क. च मण्डूरस्येति षष्ठ्यन्तपाठमवलम्ब्य गन्धकान्तसप्तद्रव्यसमानतामण्डूरस्य तथा ताप्यस्य च मण्डूरसमानता प्रोक्ता तेन गन्धान्ताः सप्तभागाः मण्डूरस्य सप्तभागास्ताप्यस्य च सप्तभागाः ॥ ३–४ ॥

भाषा—रससिन्दूर, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, अभ्रकभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, मुण्डलौहभस्म, शुद्ध गन्धक, मण्डूरभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, समभाग ले घीकुमार के रस से दिन भर घोटकर अन्धमूषा में रख तेज आंच देकर पाक करे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कर पीस रखे। इसकी १ माषा मात्रा को खांड या मिश्री में मिलाकर खाने से बवासीर नष्ट होती है। यह तीक्ष्णमुख नाम का रस असाध्य को भी ठीक कर देता है ॥ ३–४ ॥

अर्शःकुठारो रसः—

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं मृतं लौहञ्च ताम्रकम्।
प्रत्येकं द्विपलं दन्ती त्र्यूषणं शूरणं तथा ॥ ५ ॥

शुभाटङ्कयवक्षार-सैन्धवं पलपञ्चकम् ।
पलाष्टकं स्नुहीक्षीरं द्वात्रिंशच्च गवां जलैः ॥ ६ ॥
आपिण्डितं पचेदग्नौ खादेन्माषद्वयं ततः ।
रसश्चार्शःकुठारोऽयं सर्वरोगकुलान्तकः ॥७॥

अर्शःकुठारे—गन्धं-द्विधा=द्विभागं द्विपलमिति यावत् । ताम्रकं=ताम्रभस्म, दन्ती=जयपालमूलम्, शुभा=वंशलोचना सा च नीलवर्णा शोभना । र. यो. सा. तु– 'अत्र शुभाशब्देन त्रिफला ग्राह्या' इत्युक्तम्। त्रिफलापर्यायेषु शुभाशब्दो न लभ्यते न वा शुभाशब्दपर्याये त्रिफलाशब्द इति विचारणीयम्। सम्प्रदायगतव्याख्याभिर्वंशलोचनमेव गृह्यते। स्नुही=सेहुण्ड इति भाषा तच्च शोधितं पलाष्टकम् । गवाञ्जलैः=गोमूत्रैः । सूतादिताम्रान्तानां प्रत्येकं द्विपलम् । दन्त्यादिसैन्धवान्तानां प्रत्येकं पलपञ्चकम्। पटगालितं चूर्णं पलाष्टकस्नुहीक्षीरेण मेलयित्वा द्वात्रिंशत्पलगोमूत्रे, अर्धश्रितं दत्वा, आपिण्डितं=पिण्डीभावं यावत् मृद्वग्नौ विपचेत्। मात्रा माषद्वयमिता । वातिके श्लैष्मिके वार्शसि-आनाहाध्मानकटिपृष्ठपार्श्वशूलयकृत्प्लीहवृद्धिषु च प्रत्यहं त्रिःप्रयुज्यते, कोष्ठबद्धतायां च विशेषेणोपकरोति ॥ ५-७ ॥

भाषा—शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक दो पल, दोनों की कज्जली करें । इसमें लौहभस्म दो पल, ताम्रभस्म दो पल मिलावें। फिर दन्तीमूल, सोंठ, मिरच, पिप्पली, ज़मींकन्द, वंशलोचन भुना सुहागा, यवक्षार, सेंधानमक पांच २ पल डाले। पश्चात्

थोहर का दूध आठ पल और गोमूत्र बत्तीस पल मिलाकर आग पर पकावें पिण्डाकृति योग्य गाढ़ा होने पर उतार लें। इसे दो माषा प्रमाण में खावें। यह अर्शः-कुठार रस सब रोगों को नाश करता है ॥५-७॥

चक्राख्यो रसः

मृतसूताभ्रवैक्रान्तं ताम्रं कांस्यं समं समम्।
सर्वतुल्येन गन्धेन दिनं भल्लातकैर्द्रवैः ॥८॥
मर्दयेद् यत्नतः पश्चाद् वटीं कुर्याद् द्विगुञ्जिकाम्।
भक्षणाद् गुदजान् हन्ति द्वन्द्वजान् सर्वजानपि ॥९॥

चक्राख्ये—मृतसूतो=रससिन्दूरः, वैक्रान्तं=विकृन्तयति लोहानि तेन वैक्रान्तकः स्मृतः। विपूर्वात्तु दादः कृती छेदने, इत्यस्य णिचि रूपम्। स च श्वेतपीतादिभेदेन सप्तविधो रसार्णवे, उक्तः ६-१२६। वैक्रान्तं हि सर्वान् लोहान् छिनत्ति न च कैश्चिदपि तच्छिद्यते विहाय वज्रम्। सर्वतुल्येन=पञ्चभागेनेत्यर्थः, भल्लातकद्रवैः=भल्लातकक्काथेन, क्काथाभावे एको भागो भल्लातकस्य देयः, दिनमिति कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे, द्वितीया। तेन-अनवकाशं यावद्दिनं निरन्तरं मर्दनीयमित्यर्थः। द्विगुञ्जिकाम्=द्वे गुञ्जे प्रमाणमस्याः द्विरक्तिकामित्यर्थः, गुदजान्=अर्शांसि, सर्वजानपीति-अपि शब्दात् रक्तार्शसां बहुरक्तस्रावजनितदौर्बल्याध्मानकोष्ठबद्धतासु तक्रानुपानेन। गुदशोथे च शूरणगन्धाहिफेनानां समभागलेपनं विधेयम्। गुददाहे च जलघृष्टश्वेतचन्दनस्य लेपः ॥८-९॥

भाषा—रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, वैक्रान्तभस्म, ताम्रभस्म, कांस्यभस्म एक २ तोले ले। गन्धक सब के बराबर ले। सबको एकत्र भिलावे के क्वाथ से घोटकर २ रत्ती की गोली बनाले। इस के खाने से एकदोषज, द्विदोषज, तथा सर्वदोषज बवासीर अच्छी होती है॥ ८-९॥

नित्योदितो रसः—

मृतसूताभ्रलोहार्क-विषं गन्धं समं समम्।
सर्वतुल्यन्तु भल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥१०॥
द्रवैः शूरणकन्दोत्थैः खल्ले मद्यं दिनत्रयम्।
लिहेदाज्यैर्माषमात्रं रसश्चार्शांसि नाशयेत्।
नित्योदितो रसो नाम गुदोद्भवकुलान्तकः ॥११॥

नित्योदिते—अर्को=निरुत्थं ताम्रभस्म, भल्लातकफलं वृन्तरहितं ग्राह्यम्, सर्वतुल्यं=षड्भागमित्यर्थः, अत्र भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते, इति केचित्तन्न मूलव्याधौ रक्तचन्दनस्याकिञ्चित्करत्वात्। शूरणकन्दोत्थैः=अर्शोघ्नत्वेनाभिःसृतैर्विशेषादर्शसां पथ्यः शूरण इत्युक्तेः स च त्रिविधः श्वेतरक्तारण्यभेदेन, द्रवैः=स्वरसैः दिनत्रयमिति—कालस्यात्यन्तसंयोगे द्वितीया। आज्यैः=गोघृतैः अन्यथा मुखे भल्लातकजन्यशोथभीतेः। माषमात्रं=अष्टरक्तिकाप्रमाणम् द्विदलमाषप्रमाणव्याख्यानन्तु बालभाषितम्, गुदोद्भवकुलान्तकः=गुदोद्भवानामर्शसां कुलस्य वातादिभेदेन सर्वविधस्य=अन्तको नाशकः मलबन्धे चास्य भवत्युपयोगः। सर्ववैद्यमान्योऽयं

योगः । शूरणमाणोत्थैर्भाव्यो खल्वे दिनत्रयमिति- भै. र. व. अधिकः पाठः ॥ १०-११ ॥

भाषा—रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध-विष, शुद्ध गन्धक, समभाग लें और मिलित चूर्ण के बराबर शुद्ध भिलावे का चूर्ण डालें। पश्चात् जमीकन्द के रस से तीन दिन तक खरल में घोटें। इसको माषा भर ले घी से चाटें तो बवासीर के मस्से नष्ट हो जाते हैं। इसका नाम नित्योदित है ॥ १०-११ ॥

चन्द्रप्रभा गुडिका—

क्रिमिरिपुदहनव्योष–त्रिफलासुरदारुचव्यभूनिम्बाः ।
मागधीमूलं मुस्तं सशटी वचा धातुमाक्षिकञ्चैव ।
लवणक्षारनिशायुग–कुस्तुम्बुरुगजकणाऽतिविषाः ॥१२॥
कर्षांशकान्येव समानि कुर्य्यात् पलाष्टकं चाश्मजतोर्विदध्यात् ।
निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लौहरजस्तथैव ॥१३॥
सिताचतुष्क पलमत्र वांश्या निकुम्भकुम्भत्रिसुगन्धियुक्तम् ।
चन्द्रप्रभेयं गुडिका विधेया अर्शांसि निर्णाशयते षडेव ॥१४॥
भगन्दरं कामलपाण्डुरोगं विनष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् ।
शल्यामयान् पित्तकफानिलोत्थान् नाडीगते मर्मगते व्रणे च १५
ग्रन्थ्यर्बुदे विद्रधिराजयक्ष्म–मेहे भगाख्ये प्रदरे च योज्या ।
शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे मूत्रप्रवाहेऽप्युदरामये च ॥१६॥

तक्रानुपानं त्वथ मस्तुपानमाजो रसो जाङ्गलजो रसो वा
पयोऽथवा शीतजलानुपानं बलेन नागस्तुरगो जवेन ॥१७॥
दृष्ट्या सुपर्णः श्रवणे वराहः कान्त्या रतांशो धिषणश्च बुद्ध्या
न पानभोज्ये परिहार्य्यमस्ति न शीतवातातपमैथुनेषु ॥
शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रणामेनाप्ता गुडी चन्द्रमसः प्रसादात् १८
शुक्रदोषान् निहन्त्याशु प्रमेहानपि दारुणान् ।
वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥१६॥

चन्द्रप्रभायाम्—कृमिरिपु=विडङ्गः, दहनो=रक्तचित्रकः, व्योषं=त्रिकटु, सुरदारु=देवदारुसारः, भूनिम्बः=चिरायता इति, मागधीमूलं=पिप्पलीमूलं, शठी=कचूरः, धातुमाक्षिकं=स्वर्णमाक्षिकम्, लवणक्षारनिशायुगिति—युगशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते, तेन-सैन्धवसौवर्चले, यवस्वर्जिक्षारौ, हरिद्रादारुहरिद्रे ग्राह्ये। क्वचित्त्रिलवणमिति पाठः। कुस्तुम्बुरु=धान्यकम्, गजकणा=गजपिप्पली, अतिविषा, एतानि कर्षमानानि। अश्मजतोः=शिलाजतुनः, पलाष्टक=मष्टपलम्, निष्पत्रशुद्धस्य=पत्रतृणादिरहितस्य, पुरस्य=गुग्गुलोः—एतच्छोधनं यथा—

चतुर्गुण-त्रफले दशमूलक्वाथे पत्रादिरहितनिरबकरगुग्गुलं प्रक्षिप्याऽलोड्य वस्त्रपूतं विधाय प्रचण्डातपे विशोष्य पिण्डितगुग्गुलोः पलद्वयमिति, र. इ. चि.।

लौहरजः=लौहभस्म, तथैव=द्विपलम्, सिता=शर्करा, चतुष्कं=पलचतुष्टयम्। वांश्याः=वंशरोचनायाः पलम्। निकुम्भो=दन्ती,

कुम्भी=त्रिवृत, त्रिसुगन्धियुक्तम्=त्वक्पत्रैलायुतम्, प्रत्येकं पलमानम्। इयं चन्द्रप्रभानाम्नी गुडिका। विनष्टवह्ने=विकृताग्नेः, नाडीगते ममंगते व्रणे च- अस्याः सेवनेन नाडीव्रणा भगन्दरव्रणाश्च पूर्यन्ते, इत्यनुभूतमस्माभिः। ग्रन्थ्यर्वुदे=ग्रन्थिरत्र पौरुषग्रन्थिः, भगाख्ये=भगन्दरे, प्रदरे सर्वविधेऽपि तत्तदनुपानेन योज्या। (काकजङ्घास्वरसानुपानेन प्रातःसायं प्रयुक्ता त्रिभिः षड्भिर्वा दिनैश्चमत्करोति सर्वविधप्रदरे रक्तार्शसि च) मूत्रप्रवाहे=मूत्रातिसारे (मधुमेहे च विजयसारहिमानुपानेन-ओजो धातुयुतेऽ(एलब्युमिन) पि नियतं फलति सुपथ्यं सेवमानस्य) उदरामये यकृत्प्लीहविकारजे, जाङ्गलजः-

> मरुप्रायस्तु यो देशः स प्रोक्तो जाङ्गलाभिधः। वै. श. सि.
>
> अल्पोदकद्रुमो यस्तु प्रवातः प्रचुरातपः।
>
> ज्ञेयः स जाङ्गलो देशः स्वल्परोगतमोऽपि च। च. वि. ३-६६।

तत्र जाता ये पशुपक्षिणस्ते जाङ्गलास्तेषां रसः।

एतस्याः सेवनफलमाह—चलेनेति-नागो=हस्ती, जवेन=वेगेन, तुरगो=ऽश्वः, सुपर्णो=गरुडः, रतीशः=कामदेवः, धिषणो=बृहस्पतिः। चन्द्रप्रभायोगे-शाङ्गधरे-शटी पाठो न लभ्यते। वेल्लव्योषादि-चन्द्रप्रभावचादि-कृमिरिपुदहनादिरिति त्रिविधपाठेतत्तद्ग्रन्थेष्वारब्धोऽयं योगः। तत्र-वेल्लव्योषादि-कृमिरिपुरादिचन्द्रप्रारब्धयोगयोर्न कोऽपि सन्देहः। केवलं चन्द्रप्रभेत्यादिशब्देन प्रारब्धे शाङ्गधरपाठे-चन्द्रप्रभाशब्दस्य व्याख्यानम्। चन्द्रप्रभा=कर्पूरः एके चन्द्रप्रभाशब्देन शटीं शतावरीं वा कथयन्ति, इति शा. ध. टी. दीपिका। चन्द्रप्रभा=कर्पूरश्चन्द्रवत्प्रभा यस्येति

व्युत्पत्त्या यद्वा चन्द्रप्रभा=गन्धालिका कर्पूरभेदः इति, शा. ध. टी. गूढार्थदीपिका। वेङ्गादिपाठे—कृमिरिपु-आदिपाठे च कर्पूरस्य नामापि न दृश्यते। न वा चन्द्रप्रभा पर्यायेषु कोषादौ कर्पूर-शब्दो लभ्यते, न वा पाठान्तरेषु। ग्रन्थान्तरीयचन्द्रप्रभापाठ-सास्य विवेचनेन शार्ङ्गधरीयपाठे शटी शब्दो नास्ति। अन्यत्र सर्वपाठेषु शटी शब्दोऽस्ति। अतः पारिशेष्यात् चन्द्रप्रभाशब्दो शटी वाचकः शार्ङ्गधरपाठे ज्ञेयः।

वातपैत्तिके वातश्लैष्मिके सान्निपातिके, एकदोषजे वाऽर्शसि उरःकटिपृष्ठपार्श्वशूलादिषु पूयमेहे (गनोरिया) पुरातनज्वरे च प्रशस्यते। अर्शसां च सर्वे-उपद्रवा नश्यन्ति भवति च बलवृद्धिः। प्रमेहे, मूत्रकृच्छ्रे, अश्मर्यां चेयं मलशुद्ध्यर्थं अग्निवृद्ध्यर्थं वायोर-नुलोमकरणार्थं च घृतमधु-शीतलजलाद्यन्यतमानुपानेन प्रयुज्यते।

काशीसादितैले लाङ्गलीचूर्णं दत्वा अर्शसामुपरि प्रयोगात् पतन्ति तानि।

कुत्रचित्—

वृद्धवैद्योपदेशेन पलार्द्धं रसगन्धकम्।
केवलं मूर्च्छितं वाऽपि पलं वा दापयेद्रसम्।
अभ्रकञ्च क्षिपेत्कश्चित्पलमानं भिषग्वरः।
संमर्द्य मधुसर्पिर्भ्यांमार्दौरक्तिचतुष्टयम्।
भक्ष्यं वृद्ध्या यथायुक्ति यावन्माषचतुष्टयम्।
त्रिवृद्दन्तीत्रिजातानां कर्षमानं पृथक् पृथक्।

इत्यधिकः पाठः ॥१२-१६॥

भाषा—वायविडंग, चीता, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, देवदारु, चव्य, चिरायता, पिप्पलीमूल, मोथा, कचूर, बच, स्वर्णमाक्षिकभस्म, सेंधानमक, सौंचल नमक, यवाक्षार, सर्जिक्षार, हल्दी, दारुहल्दी, धनियां, गजपिप्पली, अतीस, एक २ कर्ष लें। शिलाजीत आठ पल लें। शुद्ध गुग्गुलु दो पल लें। लोहभस्म दो पल लें। मिश्री चार पल लें। वंशलोचन, दन्तीमूल का चूर्ण, निशोथ, दारचीनी का चूर्ण, इलायची के बीजों का चूर्ण, तेजपात का चूर्ण, एक २ पल लें। इन सबको पीस कर चार रत्ति प्रमाण गोली जल से बना लें। यह चन्द्रप्रभा गुटिका कहाती है। इस से छः प्रकार की बवासीर भगन्दर, कामला, पाण्डु, मन्दाग्नि, वात पित्त तथा कफ के रोग; नासूर, मर्मगत-व्रण, ग्रन्थि, अर्बुद, विद्रधि; राजयक्ष्मा, प्रमेह, भग संबन्धी रोग प्रदर, शुक्रक्षय, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रप्रवाह तथा उदरामय नष्ट होते हैं। इसके साथ अनुपान के रूप में छाछ, दही का पानी, बकरे के मांस का रस, जंगली जीवों के मांस का रस, दूध, शीतल जल आदि रोगानुसार विचार कर पीवें। इसके सेवन से हाथी के समान बली, घोड़े के समान वेगवान्, गरुड़ के समान तीव्र दृष्टि वाला, वराह या शूकर के समान श्रवण शक्ति वाला, कामदेव के समान सुन्दर तथा बृहस्पति के समान बुद्धिमान हो जाता है। इसके सेवन के समय में खानपान में कुछ विशेष परहेज नहीं है। शीत, वायु, धूप, मैथुन आदि के सेवन में भी परहेज नहीं है। यह गुडिका शिव जी की पूजा करके

चन्द्रमा ने प्राप्त की थी। इसके सेवन से वीर्य के दोष तथा भयं-कर प्रमेह भी शीघ्र दूर होते हैं। बूढ़ा आदमी भी बली-पलित अर्थात् झुर्रियों और श्वेत बालों से रहित युवा पुरुष के समान हो जाता है॥ १२-१६॥

माणाद्यं लौहम्—

माणशूरणभल्लात-त्रिवृद्दन्तीसमन्वितम्।
त्रिकत्रयसमायुक्तं लौहं दुर्नामनाशनम्॥ २०॥

माणद्यलौहे—माणो=मानकन्दः, शूरणः=जिमीकन्द इति भाषा, त्रिकत्रयम्=त्रिकटु, त्रिफला, मुस्तकरक्तचित्रकविडङ्गानि माणादिचतुर्दशद्रव्याणां प्रत्येकमेको भागः, लौहभस्म सर्वसमं जलेन मर्दयित्वा मा० ३ र० पैत्तिके रक्तार्शसि दाहे पाण्डुतायां दौर्बल्यालपज्वरादिषु छागीदुग्धेन शतावरीरसेन चित्रकक्वाथेन रसाञ्जनजलानुपानेन वा यथायथं देया। 'तथैवार्शांसि सर्वाणि वृक्षकारुष्करौ हतः इति सुश्रुतोक्तेर्भल्लातकयोगाः अर्शःसु विशेषेण हिताः। इदञ्च शुष्कार्शःसु प्रशस्यते॥ २०॥

भाषा—माणकन्द, जमीकन्द, शुद्ध भिलावा, निसोत, दन्ती-मूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, विडंग, मोथा, चीता, समभाग ले सब के समान लौहभस्म मिला जल से घोट-कर ३ र० की गोली बना ले इससे बवासीर दूर होती है॥२०॥

चञ्चत्कुठारो रसः—

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं भागयुग्मकम्।
त्रिकटुदन्तिकुष्ठैकं षड्भागं लाङ्गलस्य च॥२१॥

क्षारसैन्धवटङ्कणानां प्रत्येकं भागपञ्चकम् ।
गोमूत्रस्य च द्वात्रिंशत् स्नुहीक्षीरं तथैव च ।
यावच्च पिण्डितं सर्वं तावन्मृद्वग्निना पचेत् ॥२२॥
माषद्वयं ततः खादेत् दिवास्वप्नादि वर्जयेत् ।
रसश्चञ्चत्कुठारोऽयमर्शसां कुलनाशनः ॥२३॥

चञ्चत्कुठारे-दन्तीत्रिकटुकुष्ठानां प्रत्येकमेकोभागः, लाङ्गलस्य=कलिहारिकायाः षड्भागाः । क्षारो=यवाक्षरः, यावच्च पिण्डितं=यावत्पिण्डाकारं भवेत् । दिवा स्वप्नादि-इत्यादि पदात् अब्रह्मचर्य व्यायामादि वर्जयेत् । अर्शसां=वातकफार्शसां मलशुद्धिकरोऽयम् ॥ २१-२३ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, दो २ तोला लें । कज्जली में लोहभस्म दो तोला मिला पुनः सोंठ, मिरच, पिप्पली, दन्तीमूल, कूठ, का चूर्ण एक २ तोला लें । शुद्ध लांगली विष का चूर्ण छः तोला । यवक्षार, सेंधानमक, सुहागा; पांच २ तोला । गोमूत्र ३२ तोला, थोहर का दूध ३२ तोला । सबको मिट्टी के पात्र में डाल मन्द आग पर पकावें; पकते २ जब गाढ़ा हो जाये तब उतार रखें । इस दो माषा खावें । इसे खाने के दिनों में दिन को सोना आदि बन्द करदें । यह चञ्चत्कुठार रस सब प्रकार की बवासीरों को नाश करता है मात्रा-दो रत्ती ॥ २१-२३ ॥

शिलागन्धककवटकः—

शिलागन्धकयोश्चूर्णं पृथक् भृङ्गरसाप्लुतम् ।
सप्ताहं भावयेत् सर्पिर्मधुभ्याञ्च विमर्दयेत् ॥२४॥

अर्शसश्चानुलोम्यार्थं हताग्निबलवर्द्धनम् ।
रक्तिकाद्वितयं खादेत् कुष्ठादिसहितो नरः ॥२५॥

शिलागन्धकवटके-शिलागन्धकयोश्चूर्णं पृथक् सप्तदिनं यावद्भृङ्गरसेन भावितं तत एकैकां रक्तिमादाय मधुसर्पिभ्यां मर्दयित्वाऽवलेहयेत् । अनुलोमनमिदम्, हताग्ने=नष्टाग्नेः । बलवर्धनं=क्षुत्करणद्वारेण बलवर्धनम्, कुष्ठादिसहितः=कुष्ठादिरोगयुतः कश्चित् ॥ २४-२५ ॥

भाषा—शुद्ध मनसिल, शुद्ध गन्धक दोनों को पृथक् समभाग ले भांगरे के रस की सात दिन भावना दे । सूखने पर दो रत्ती इस रस को घी और शहद से मिलाकर खावे । इससे बवासीर और मस्सों का कष्ट नहीं होता । क्योंकि मल मूत्र तथा वायु का अनुलोमन होता है । यह मन्दाग्नि को तीव्र करता है । परन्तु इसे कुष्ठ आदि रोगों से युत रोगी ही सेवन करे ॥ २४-२५ ॥

जातीफलादिवटी—

जातीफलं लवङ्गञ्च पिप्पली सैन्धवं तथा ।
शुण्ठी धुस्तूरबीजञ्च दरदो टङ्कणं तथा ॥२६॥
समं सर्वं विचूर्ण्याथ जम्भनीरेण मर्दयेत् ।
वटी जातीफलाद्येयमर्शोऽग्निमान्द्यनाशिनी ॥२७॥

जातीफलादिवट्याम्-धुस्तूरबीजं शोधितम, दरदो=हिङ्गुलम् तच्च शोधितं ग्राह्यम, टङ्कण=मग्निभृष्टं सौभाग्यम्, जम्भनीरेण=पक्वजम्बीरस्वरसेन । वटीं द्विरक्तिमात्रां । सामे श्लैष्मिके-अर्शसि

वह्निमान्द्य-कास, प्रतिश्याय सर्वाङ्गशूलादिषूपयोज्या हरीतकी-सन्धवोष्णजलानुपानेन । वातिकार्शःसु सति चातिसारेऽस्याः प्रयोगो युक्तः ॥ २६-२७ ॥

भाषा—जायफल, लौंग, पिप्पली, सेंधानमक, सोंठ, धतूरे के शुद्ध बीज, शुद्ध हिंगुल, भुना सुहागा, समभाग ले। इसके सेवन से बवासीर और अग्निमान्द्य रोग नष्ट होता है। इसका नाम जातीफलादि वटी है ॥ २६-२७ ॥

पञ्चाननवटी—

मृतसूताभ्रलौहानि मृतार्कगन्धकैः सह ।
सर्वाणि समभागानि भल्लातं सर्वतुल्यकम् ॥२८॥
वन्यशूरणकन्दोत्थैर्द्रवैः पलप्रमाणतः ।
मर्दयेत् दिनमेकञ्च माषमात्रं पिबेद् घृतैः ॥२९॥
भक्षणाद्धन्ति सर्वाणि चार्शांसि च न संशयः ।
असाध्येष्वपि कर्त्तव्या चिकित्सा शङ्करोदिता ।
कुष्ठरोगं निहन्त्याशु मृत्युरोगविनाशिनी ॥ ३० ॥

पञ्चाननवटी—नित्योदिते (१०) इतो विषस्याधिकः पाठः, वातकफजार्शःसु कोष्ठशुद्धयर्थमियं योज्या, कुष्ठश्चेदर्शसि तत्र घृतानुपानेन ॥ २८-३० ॥

भाषा—रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, समभाग ले सबके समान शुद्ध भिलावे का चूर्ण मिलावें।

फिर पीसकर १ पल जंगली जमींकन्द के रस से एक दिन घोटें। फिर एक १ माषा की गोली बनाकर घी से पीवें तो सब प्रकार की बवासीर दूर होती है। यह भगवान् शङ्करोक्त पञ्चानन वटी असाध्य बवासीरों को भी अच्छा करती है। कुष्ठरोग को शीघ्र दूर करती है तथा मृत्यु रोग को भी समय से पूर्व नहीं आने देती ॥ २८-३० ॥

अष्टाङ्गो रसः—

गन्धं रसेन्द्रं मृतलौहकिट्टं फलत्रयं त्र्यूषणवह्निभृङ्गम्।
कृत्वा समं शाल्मलिका-गुडूची-रसेन यामत्रितयं विमर्द्य ॥३१॥
निष्कप्रमाणं गदितानुपानैः सर्वाणि चार्शांसि हरेद्रसस्य।
लोकोपकृत्यै करुणामयेन रसोऽयमुक्तस्त्रिपुरान्तकेन ॥३२॥

अष्टाङ्ग—लौहकिट्ट=मण्डूरम्, शाल्मलिका=सेम्हल की मूसलीति भाषा, निष्कप्रमाणं=चतुर्माषमानम्, गदितानुपानैः=यथादोषप्रोक्तानुपानैः। मा० र० । रक्तार्शसि, जीर्णविषमज्वरे च हितोऽयम्। पाण्ड्वादिषु बलाधानार्थं तु प्रसिद्ध एव ॥३१-३२॥

इत्यर्शोधिकारः।

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, मण्डूरभस्म तथा हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, चीता, भांगरा समभाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला मर्दन करें। और सीमल के रस या क्वाथ से तीन पहर घोटें। सूखने पर गिलोय के स्वरस से तीन पहर तक घोटें और एक निष्क भर की गोली बना लें। एक गोली खाकर दोषानुसार अनुपान पीवें तो सब प्रकार की बवासीर दूर होती है। यह रस करुणामय शङ्कर भगवान् ने संसार के लोगों के उपकार के लिये कहा है ॥ ३१-३२ ॥

इति अर्शोऽधिकारः।

अथाजीर्ण-चिकित्सा ।

महोदधिवटी-

एकैकं विषसूतञ्च जातीं टङ्कं द्विकं द्विकम् ।
कृष्णात्रिकं विश्वषट्कं द्विकं गन्धं कपर्दकम् ॥१॥
देवपुष्पं बाणमितं सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।
नाम्ना महोदधिवटी नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ २ ॥

अजीर्णचिकित्सामाह-एकैकमिति— महोदधिवट्याम्-एकैकं=विषसूतयोः प्रत्येकमेको भागः। प्रथमं लोहखल्वे विषं संचूर्ण्य घटिकाद्वयं जलेनार्द्रीकृत्य मसृणतरं विमृद्य च कज्जल्यादिकं दत्वा द्विरक्तिमिता वटी कार्या, द्विकं=द्विभागम्, देवपुष्पं=लवङ्गं बाणमितं=पञ्चभागम्। एषा च अलसक-विलम्बिका-आमाजीर्णविष्टब्धाजीर्णादौ उष्णजलेन युज्यते ॥ १-२ ॥

भाषा—विष एक तोला, शुद्ध पारा एक तोला, जायफल का चूर्ण दो तोला, भुना सुहागा दो तोला, पिप्पली का चूर्ण तीन तोला, सोंठ का चूर्ण छः तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, कौड़ीभस्म दो तोला, लौंग का चूर्ण पांच तोला। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला यत्न पूर्वक पीस लें यह महोदधिवटी नष्ट अग्नि को प्रदीप्त करती है। मात्रा दो रत्ती ॥ १-२ ॥

अग्नितुण्डरसः-

शुद्धसूतं विषं गन्धमजमोदा फलत्रिकम् ।
सर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकम् ॥ ३ ॥

सौवर्च्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं तथा ।
विषमुष्टिः सर्वसमा जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ॥
मरिचाभां वटीं खादेत् वह्निमान्द्यप्रशान्तये ॥४॥

अग्नितुण्डरसे—तुडि तोडने भौवादिकात्तु ण्डत, इति तुण्डम्, इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३-१-१३५. इति कः प्रत्ययः । 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमित्यमरः ।' अग्नेस्तुण्डमिव तुण्डं यस्य सोऽग्नितुण्डः। सर्जिक्षारं=सज्जी खार इति । सम्प्रति तु शोधितं सोडाख्यं प्रक्षिपन्ति । वह्निः=रक्तचित्रकमूलत्वक, सौवर्चलम्=कृष्णलवणम्, दुर्गन्धं शूलनाशनमित्यनर्थान्तरम । सामुद्रं=समुद्रजलवणम्, विषमुष्टिः=कुचिला इतिख्यातम् । विषरूपं फलविशेषः तच्च त्वक्जिह्वाहीनं ग्राह्यम् । (ज्व. ३७ कृमि ११) सर्वमिति—एको भागः सर्वेषां द्रव्याणाम् । सर्वद्रव्यसमानं विषमुष्टिचूर्णं विषमुष्टिसर्वतुल्यमिति शा. ध. च. । विषमुष्टिशब्दो महानिम्बपर्यायेषु दृश्यते । अतः—र. यो. सागरे—'तत्राशःकृमिविकारयोर्विषमुष्टिशब्देन महानिम्बबीजानि ग्राह्याणि, अग्निमान्द्ये कुचिलतिप्रसिद्धद्रव्यमिति रहस्यमित्युक्तम् । वसवराजीये तु—अग्निमान्द्यं प्रणाशयेत् ।' अशीति वातजान् रोगान् गुल्मञ्च ग्रहणीगदान् । पथ्याशुण्ठी गुडं चानु पलार्धं भक्षयेत् सदा, इति । रसेन्द्रकल्पद्रुमोद्धृते र० यो० सागरे तु—वह्निमान्द्यमजीर्णं च विसूचीं ग्रहणीगदम् । शूलं कोष्ठगतं वातरोगानन्यांश्च नाशयेत् । शूलं सर्वाङ्गजं वाऽपि शूलं च परिणामजम् । आमवातं विशेषेण हन्ति तत्वं शिवोदितमित्यधिकः पाठः । अयं बल्यो वृष्यो वेदनानाशकः, सर्वाङ्गकम्पैकाङ्ग

वातापस्मारेषु च प्रयुज्यते। रोगान्तदौर्बल्यावस्थायां बलाधानार्थं क्षुद्बोधनार्थं च दीयते। यत्र चाजीर्णे तरलमलप्रवृत्तिस्तत्र मुस्तक-क्वाथेन कर्पूरजलेन वा। चतुष्पलजले रक्तिकात्रयं कर्पूरचूर्णं दत्वा स्थापयेत, एतदेव कर्पूरजलं नाम। अजीर्णे मलबन्धे तु त्रिफला-जलेन, अम्लपित्ते धात्रीरसेन, सर्वाङ्गगौरवे कृमिजाजीर्णे चोष्ण-जलेन, प्रयोगश्चास्य भोजनस्योपरि न रिक्तोदरे। गुटिकापेक्षया चूर्णरूपेण प्रयुक्तस्त्वरितं फलति। यकृद्दोषे च सर्वत्र प्रचरति, निर्विषोऽप्ययम्। प्रसिद्धोऽयं रसः॥ ३–४॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध विष, शुद्ध गन्धक तथा अजवायन, हरड़, बहेड़ा, आंवला इनके चूर्ण, सज्जी, यवक्षार, चीते का चूर्ण, सधानमक, जीरे का चूर्ण, सौंचलनमक, वायविडंग का चूर्ण, समुद्र लवण, सौंठ चूर्ण, मिरच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सबके समान शुद्ध कुचले का चूर्ण लें। कज्जली में कुचले और विष का चूर्ण डाल जम्बीरी नीबू के रस से मर्दन करें। पश्चात् शेष द्रव्य मिला अच्छी प्रकार घोट काली मिरच के समान गोली बना लें। इसे खाने से मन्दाग्नि रोग शान्त होता है॥ ३–४॥

बडवानलो रसः—

शुद्धसूतस्य कर्षैकं गन्धकं तत्समं मतम्।
पिप्पली पञ्चलवणं मरिचञ्च फलत्रयम्॥ ५॥
क्षारत्रयं समं सर्वं चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः।

निर्गुण्ड्याश्च द्रवेणैव भावयेद्दिनमेकतः ।
वडवानलनामाऽयं मन्दाग्निञ्च विनाशयेत् ॥ ६ ॥

वडवानले—तत्समं=कर्षैकं, पञ्चलवणम्=सौवर्चलसैन्धवविडोद्भिदसामुद्राणि, क्षारत्रयं=यवसर्जिटङ्कणानि, द्रवेण=पत्रस्वरसेन । मा. ३ र. ॥ ५–६ ॥

भाषा—शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक एक कर्ष, पिप्पली, पांचों नमक, मिरच, हरड़ बहेड़ा, आंवला, इन सब का चूर्ण, सज्जी, भुना सुहागा तथा यवक्षार, एक २ कर्ष पारा गन्धक की कज्जली में अन्य द्रव्य मिला निर्गुण्डी का रस डालकर एक दिन भावना दें । यह बडवानल रस मन्दाग्नि रोग का नाशक है । मात्रा ४ रत्ती ॥ ५–६ ॥

हुताशनो रसः—

गन्धेशटङ्कणैकैकं विषमत्र त्रिभागिकम् ।
अष्टभागं तु मरिचं जम्भाम्भोमर्दितं दिनम् ॥ ७ ॥
तद्वटीं मुद्गमानेन कृत्वार्द्रेण प्रयोजयेत् ।
शूलारोचकगुल्मेषु विसूच्यां वह्निमान्द्यके ।
अजीर्णे सन्निपातादौ शैत्ये जाड्ये शिरोगदे ॥ ८ ॥

हुताशने—ईशः=पारदः, एकैकं=प्रत्येकमेको भागः । त्रिभागिकं=भागत्रयम् , जम्भाम्भोमर्दितम्=जम्बीरस्वरसेन मर्दितम् । आर्द्रेण=आर्द्रकस्वरसेन–त्रिमाषप्रमितेनेत्यर्थः । शूलारोचकगुल्मेषु=अजीर्णजन्यशूले, अरोचके गुल्मे चेत्यर्थः । विसूच्यां=विसूचीप्रथमावस्थायाम् , आमवाते चायं प्रयुज्यते ॥ ७–८ ॥

भाषा—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, भुना सुहागा एक २ तोला लें। शुद्ध विष तीन तोला और मिरच का चूर्ण आठ तोला लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला जम्बीरी नीबू के रस से मर्दन करें। मूंग के बराबर गोली बना अदरक के रस से खावें तो यह शूल, अरुचि, गुल्म, विसूचिका, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, सन्निपात आदि तथा शीत, जड़ता और सिर दर्द इन रोगों को दूर करता है। विषूचिका में कपूरजल के साथ देते हैं ॥ ७-८ ॥

बृहद्हुताशनो रसः—

एकद्विकद्वादशभागयुक्तं योज्यं विषं टङ्कणमूषणञ्च।
हुताशनो नाम हुताशनस्य करोति वृद्धिं कफजिन्नराणाम् ॥९॥

बृहद्धुताशने—विषस्यैको भागः टङ्कणस्य भागद्वयम्। ऊषणम्=मरिचं तस्य च द्वादशभागाः, मा. ३ र.। हुताशनस्य=वह्नेः। प्रवाहिकायां विष्टब्धाजीर्णे, आमाजीर्णे श्वासे च सति वह्निमान्द्ये प्रयुज्यते ॥ ९ ॥

भाषा—शुद्ध विष एक तोला, सुहागा दो तोला, काली मिर्च का चूर्ण बारह तोला, इन सब को जल से घोट गोली बनावे। इसे खाने से अग्नि वृद्धि होती है तथा कफ नाश होता है। इसका नाम हुताशन रस है। ॥ ९ ॥

अमृतकल्पवटी—

शुद्धौ पारदगन्धौ च समानौ कज्जलीकृतौ।
तयोरर्धं विषं शुद्धं तत्समं टङ्कणं भवेत् ॥१०॥

भृङ्गराजद्रवैर्भाव्यं त्रिदिनं यत्नतः पुनः ।
मुद्गप्रमाणा वटिका कर्त्तव्या भिषजां वरैः ॥११॥
वटीद्वयं हरेच्छूलमग्निमान्द्यं सुदारुणम् ।
अजीर्णं जरयत्याशु धातुपुष्टिं करोति च ॥१२॥
नानाव्याधिहरा चेयं वटी गुरुवचो यथा ।
अनुपानविशेषेण सम्यग् गुणकरी भवेत् ॥१३॥

अमृतकल्पवट्याम्—पारदगन्धकविषटङ्कणानां प्रत्येकमेको भागः, कृष्णभृङ्गराजरसेन त्रिदिनं भावयित्वा मुद्गमानां छाया-शुष्कां वटीं कारयेत्। विशेषतो रसशेषाजीर्ण इयं प्रयुज्यते ॥ १०-१३॥

भाषा—शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक एक तोला दोनों की कज्जली करे। फिर शुद्ध विष एक तोला, भुना सुहागा एक तोला डाल भांगरे के रस से यत्न पूर्वक तीन दिन भावना दे मूंग के बराबर गोली बना ले। दो गोली खाने से ही शूल, अग्निमांद्य, अजीर्ण रोग दूर होते हैं। यह वटी धातुपुष्टि करती है। विशेष २ अनुपानों से नाना व्याधियों को दूर करती है। यह बात गुरु के वचन के समान सत्य है। इसका नाम अमृत-कल्पवटी है ॥१०-१३॥

अग्निकुमारो रसः—

रसेन्द्रगन्धौ सह टङ्कणेन समं विषं योज्यमिह त्रिभागम् ।
कपर्दशङ्खाविह नेत्रभागौ मरीचमत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥१४॥

सुपक्कजम्बीररसेन घृष्टः सिद्धो भवेदग्निकुमार एषः ।
विसूचिकाऽजीर्णसमीरणार्त्ते दद्याद् द्विवल्लं ग्रहणीगदे च ॥१५

अग्निकुमारे—रसगन्धटङ्कणानां प्रत्येकमेको भागः, कपर्द-शङ्खयोः प्रत्येकं नेत्रभागौ=भागद्वयम् सिद्धो=वृद्धवैद्यमान्यत्वात् अर्तिगुणकरत्वात् प्रसिद्धः । मा० २ र० । अजीर्णजातिसारे, अपक्वदोषपरिपाकार्थमुष्णजलेन दीयते; वातातिसारे वातश्लेष्मा-तिसारे मुस्तकरसेन, विसूचिकायां वा जीरकचूर्णमधुना, प्रबलाग्नि-मान्द्ये भुक्तद्रव्यस्य दीर्घकालं यावदपरिपाके अलसतायामास्यसं-स्रवणे वमनोद्वेगे यथोक्तानुपानैर्मलबन्धनार्थं च प्रदीयते । र. इ. चि. 'कपर्दशङ्खौ त्रिलवौ' इति त्रिलवपदसाम्यात् नेत्रभागौ त्रिभागौ, इति केचन ।

कपर्दं शङ्खं च प्रताप्य जम्बीररसे प्रक्षिप्य शोधयन्ति वृद्धा गो. वि. । वस्तुतस्तु 'अजाविधनौ देवदत्तयज्ञदत्ताविति' भाष्योक्तन्यायेन कपर्दशङ्खयोर्मिलितयोर्भागद्वयं तथा चैकोभागः कपर्दस्यैको भागः शङ्खस्येति फलितोर्थः ॥१४-१५॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, भुना सुहागा, एक २ तोला, शुद्ध विष तीन तोला, कौड़ीभस्म दो तोला, शंखभस्म दो तोला मरिच का चूर्ण आठ तोला लें । कज्जली में अन्य द्रव्य मिला कर पके हुए जम्बीरी नीबू के रस से घोट तीन रत्ति की गोली बनावें यह अग्निकुमार रस है । इसका प्रयोग विसूचिका, अजीर्ण, वायु-रोग तथा ग्रहणी रोग को दूर करता है । ॥ १४–१५ ॥

वृहदग्निकुमारो रसः-

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं गन्धतुल्यञ्च टङ्कणम् ।
फलत्रयं यवक्षारं व्योषं पञ्चपटूनि च ॥ १६ ॥
द्वादशैतानि सर्वाणि रसतुल्यानि दापयेत् ।
सम्मर्द्य सप्तधा सर्वं भावयेदार्द्रकद्रवैः ॥१७॥
संशोष्य चूर्णयित्वा तु भक्षयेदार्द्रकाम्बुना ।
शाणमात्रं वयो वीक्ष्य नानाऽजीर्णप्रशान्तये ॥१८॥
रसश्चाग्निकुमारोऽयं महेशेन प्रकाशितः ।
महाग्निकारकश्चैव प्रतापे कालभास्करः ॥१९॥
अग्निमान्द्यभवान् रोगान् शोथं पाण्ड्वामयं जयेत्
दुर्नामग्रहणीसाम--रोगान् हन्ति न संशयः ।
यथेष्टाहारचेष्टस्य नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥२०॥

वृहदग्निकुमारे—रसापेक्षया द्विगुणो गन्धष्टङ्कणं च, द्वादशै नीति फलत्रयादिपटून्तानि द्रव्याणि प्रत्येकं रसतुल्यानि । ना जीर्णप्रशान्तये नानारोगजनितो योऽजीर्णः तस्य प्रशान्तये=द करणायमहाग्निकारकः=अत्यर्थं बुभुक्षाकरः । प्रतापे=रोगस्य प्र मनसामर्थ्ये, कालभास्करः=प्रलयसूर्यः ॥ १६-२०॥

भाषा—शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला, सुहा दो तोला, हरड़, बहेड़ा, आंवला, यवाक्षार, सोंठ, मिरच, पिप

ांचों नमक एक २ तोला लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला अद-
क के रस की सात भावनायें दें और सुखा कर चूर्ण कर लें।
ायु का विचार कर इसे अदरक के रस से सेवन करें तो नाना
कार के अजीर्ण नाश होते हैं। यह अग्निकुमार रस महेश ने
चारित किया है। महा अग्नि कारक है, प्रलय काल के सूर्य
के समान तेजस्वी है। इस से अग्निमान्द्य से होने वाले रोग
ोथ, पाण्डु, बवासीर, ग्रहणी, आमयुक्त रोग नष्ट होते हैं-इसमें
ोई संशय नहीं। इसके सेवन समय मनुष्य यथेष्ट आहार विहार
र सकता है। इस में कोई रुकावट नहीं। मात्रा- १ मासा
॥ १६-२० ॥

अपरो बृहदग्निकुमारो रसः—

व्योषं जातीफले द्वे च लवङ्गश्च वराङ्गकम्।
पत्रं शृङ्गी कणा टङ्कं यमानी जीरकद्वयम् ॥२१॥
सैन्धवश्च विडं हिङ्गु रस गन्धश्च रौप्यकम्।
लौहमभ्रं समं सर्वं जम्बीररसमर्दितम् ॥ २२ ॥
अजीर्णशान्तये खादेच्चतुर्गुञ्जां वटीं नरः।
अत्यग्निकारकश्चायं रसश्चाग्निकुमारकः ॥२३॥
सङ्ग्रहग्रहणीञ्चैव वातपित्तकफोद्भवाम्।
नाशयेदामदोषञ्च त्रिदोषजनितञ्च यत्।
शूलदोषं विसूचीश्च भास्करस्तिमिरं यथा ॥२४॥

लिम्पाकेन त्रिधा देया वृद्धदारेण पञ्चधा ॥ २६ ॥
रसं गन्धञ्च गरलं मेलयित्वा विभावयेत् ।
आर्द्रकस्य रसेनैव चित्रकस्य रसेन च ॥ २७ ॥
मुद्गप्रमाणां वटिकां कृत्वा खादेद् दिने दिने ।
क्षुत्प्रबोधकरी चेयं जीर्णज्वरविनाशिनी ॥ २८ ॥

बृहन्महोदधौ—वृद्धदारकान्ताः समभागेन ग्राह्याः । ततो दन्तीद्रावैः चतुर्दशभावना । एवं लिम्पाकेन=निम्बूकस्वरसेनापि भावनात्रयम्, वृद्धदारकस्वरसेन पञ्चभावना, अतः परं रसगन्धक-कज्जलीं शृङ्गिकविषं च दत्वा आर्द्रकरसेन चित्रकरसेन च भावनां दत्वा मुद्गमाना वटी कार्या । विसूचिकानिवृत्तौ मन्दज्वरेण सहाग्नि-सादे मलबन्धे चेयं प्रयुज्यते, सत्याध्माने निषिध्यते ॥ २५–२८ ॥

भाषा—लौंग, चीता, सोंठ, शुद्ध जमालगोटा, भुना सुहागा, विधारा एक २ कर्ष ले दन्तीमूल के क्वाथ की चौदह भावनायें दें। फिर नीबू के रस से तीन भावना दें और विधारे के क्वाथ की पांच भावना दें। इसमें शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक एक २ कर्ष की कज्जली और शुद्ध विष एक कर्ष मिला अदरक के रस से तथा चीते के क्वाथ से क्रमशः भावनायें देकर मूंग के समान गोली बना लें। इसे नित्य खावें तो यह भूख को जगाती है तथा जीर्णज्वर को नाश करती है ॥ २५–२८ ॥

रामबाणरसः—

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम् ।

जातिकाफलमथार्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥२६॥
माषमात्रमनुपानयोगतः सद्य एव जठराग्निदीपनः।
वह्निमान्द्य-दशवक्त्रनाशनो रामवाण इति विश्रुतो रसः॥३०॥
जाठरामयरुजाञ्च ताडकां दुःसहं ह्यरुचिकं कबन्धकम्।
सङ्ग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकं सामवातखरदूषणं जयेत् ॥३१॥

रामबाणे-अमृतं=कन्दविषं मरिचस्यैकभागाऽपेक्षया द्वैगुण्यम्। जातीफलस्यार्धो भागः, तिन्तिड़ीफलरसेन=अपक्वफलरसेन, तत्रैव स्वरससम्भवात् यत्रैतन्नलभ्यते तत्र पक्वतिन्तिड़ीफलहिमेन। विषान्बिल (धगमिलो इति कूर्माचल भाषा) स्वरसेनापि मर्दनं क्रियते। आमाजीर्ण-विष्टब्धाजीर्ण-ग्रहणीषु सन्धौ सर्वाङ्गे वा शूले सशर्करनिम्बूकस्वरसेन, प्रवाहिकायां, मरीचचूर्णमुस्तकरसमधुना, जीर्णप्रवाहिकायां बब्वूरपत्रस्वरसमधुना, आमवाते रास्नासप्तक-क्वाथानुपानेन, विल्वपत्ररसमधुना वा। ज्वरातिसारे जीरक-चूर्णमधुना। र. यो. सा. तु.—मर्दितमित्यनन्तरम्—

मर्दयेत्सकलमातपे खरे बीजपूरभवनागरङ्गजैः।
दाडिमोद्भवसदाकुसुमजैः शृङ्गवेरकरसैश्च मर्दितम॥
नूतनञ्च यदि वा पुरातनं सन्निपातमपि पातकोद्भवम्।
सेव्यतां सकलरोगनाशनं रामवाणममृतं रसायनम्॥
श्लेष्मा चाऽऽर्द्रकवारिणाऽथ पवनो निर्गुण्डिकाया द्रवैः
पित्तं धान्यजलैस्तथा त्रिकटुकैर्वासोद्भवैः श्वासजाः।
शुण्ठीसिन्धुहरीतकीभिरुदरं क्वाथैश्च पौनर्नवैः

शोथाः पाण्डुगदाः प्रयान्ति सकला मूत्रेण माषोन्मितः
व्योषोत्थैश्च फलत्रिकैः क्षयमथो क्षौद्रेण संसेवितः
वातार्ताः सकलास्तथैव विषमा वातारितैलैर्युतः ॥ इति पठ्यते।
वह्निमान्द्यमेव दशवक्त्रो रावणस्तस्य नाशनो मारकोऽतएव-
रामबाण इति विश्रुतो=विख्यातः। यथा रामस्य बाणेन महान्
बली रावणो हतः तथाऽयं बलवद्वह्निमान्द्यनाशन इत्यर्थः ।
दशवक्त्र-ताड़का-कबन्धक-कुम्भकर्ण-खरदूषणा रामायणप्रसिद्धा
राक्षसाः। मात्रा—२ र. ॥ २९—३१ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध विष, लौंग का चूर्ण, शुद्ध गन्धक, एक २ तोला, मिरचों का चूर्ण दो तोला, जायफल का चूर्ण आधा तोला लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर तिन्तिड़ीक के रस से घोटकर ६ रत्ती भर की गोलियां बनावें। उचित अनुपान के साथ सेवन से शीघ्र ही जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अग्निमान्द्यरूपी रावण के नाश के लिए यह रस रामबाण है। अतीसाररूपी ताड़का को, दुःसह अरुचिरूपी कबन्ध को, संग्रहग्रहणी रूपी कुम्भकर्ण को तथा आमयुक्त वातरूपी खर और दूषण को यह रामबाण जीतता है ॥ २९-३१ ॥

अजीर्णकण्टको रसः—

शुद्धसूतं विषं गन्धं समं सर्वं विचूर्णयेत् ।
मरिचं सर्वतुल्यञ्च कण्टकार्याः फलद्रवैः ॥३२॥
मर्दयेद् भावयेत् सर्वमेकविंशतिवारकम् ।

त्रिगुञ्जां वटिकां खादेत् सर्वाजीर्णप्रशान्तये।
अजीर्णकण्टकः सोऽयं रसो हन्ति विसूचिकाम् ॥३३॥

अजीर्णकण्टके—सर्वतुल्यं=त्रिभागम, कण्टकारी=व्याघ्री छोटी कटेलीति भाषा, तत्फलगुणा—रसे पाके कटुकं शुक्ररेचनं भेदि पित्ताग्निकृल्लघु-इत्यादि वै. श. स.। अग्निमान्द्ये नानाविधोद्गारवमनेच्छादिषु भुक्तद्रव्ये दीर्घकालमपरिणते गौरवे वेदनायां विशेषतः स्निग्धदेहस्य स्थूलस्यायमुपकरोति। विसूचिकायाः प्रथमावस्थायां सत्यन्योपद्रवाभावे जीरकबृहदेलाचूर्णमधुना देयः ॥३२-३३॥

भाषा—शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध विष १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, काली मिर्च ३ भाग इनको कटेली के रस से मर्दन कर २१ भावना दें। तीन रत्ती की गोली बनावे। इसके सेवन से सब अजीर्ण नाश होते हैं। यह रस विसूचिका रोग को दूर करता है। यह अजीर्णकण्टक रस है॥ ३२-३३॥

पाशुपतो रसः—

शुद्धसूतं[१] द्विधा गन्धं त्रिभागं तीक्ष्णभस्मकम्।
त्रिभिः समं विषं देयं चित्रकक्वाथभावितम् ॥३४॥
धूर्त्तबीजस्य भस्मापि द्वात्रिंशद्भाग[२]संयुतम्।
कटुत्रयं[३] त्रिभागं स्यात् लवङ्गैले च तत्समे ॥३५॥
जातीफलं तथा कोषमर्धभागं नियोजयेत्।

---

१ 'कर्ष सूतम्' पाठः। २ सर्वैः सतभागतः पाठः।
३ 'द्विधा त्रिकटुकं योज्यं' यो. र. पाठः।

तथार्धं पञ्चलवणं स्नुह्यर्कैरण्डतिन्तिडी-
अपामार्गाश्वत्थजञ्च क्षारं दद्याद् विचक्षणः ॥३६॥
हरीतकी यवक्षारं स्वर्जिकाहिङ्गु जीरकम् ।
टङ्कणं सूततुल्यं स्यादम्लयोगेन मर्दयेत् ॥३७॥
भोजनान्ते प्रयोक्तव्यो गुञ्जाफलप्रमाणतः ॥३८॥
रसः पाशुपतो नाम सद्यः प्रत्ययकारकः ।
दीपनः पाचनो हृद्यः सद्यो हन्ति विसूचिकाम् ॥३९॥
तालमूलीरसेनैव ह्युदरामयनाशनः ।
अतीसारं मोचरसैः ग्रहणीं तक्रसैन्धवैः ॥४०॥
सौवर्चलकणाशुण्ठी-युतः शूलं विनाशयेत् ।
अर्शो हन्ति च तक्रेण पिप्पल्या राजयक्ष्मकम् ॥४१॥
वातरोगं निहन्त्याशु शुण्ठीसौवर्चलान्वितः ।
शर्कराधान्ययोगेन पित्तरोगं निहन्त्ययम् ॥४२॥
पिप्पलीक्षौद्रयोगेण श्लेष्मरोगश्च तत्क्षणात् ।
अस्माद् परतरो नास्ति धन्वन्तरिमतो रसः ॥४३॥

पाशुपते—त्रिभिः सममिति=षडभागमित्यर्थः, धूर्तबीजस्य भस्म=भस्म चात्र अन्तर्धूमदग्धं ग्राह्यम् । कटुत्रयं=त्रिभागं मिलितं नवभागम् । लवङ्गमेला च प्रत्येकं तत्समे-मिलिते षड्भागमिते । जातीफलजातीकोषयोः प्रत्येकमर्धभागं सूतापेक्षया । तथार्धं पञ्च-

लवणं प्रत्येकं सूतापेक्षया अर्धभागता सार्धाद्धभागमित्यर्थः। स्नुही=सेहुण्ड इति। अर्कः=आंक इति, ऐरण्डः=शुक्ल-रक्त-पीत-भेदेन त्रिविधोऽपि ग्राह्यः, तिन्तिड़ी=इमली इति, अश्वत्थो=पिप्पल-वृक्षः, जीरकं=श्वेतजीरकम्। स्नुह्यादिटङ्कणान्ताः प्रत्येकं सूततुल्याः, अम्लयोगेन=अम्लवेतसजम्बीरेत्यादिना (१०२ श्लो. अ. १) गुञ्जा-फलप्रमाणतः=एकरत्तिमात्रया शीतलजलानुपानेन देयः। प्रत्यय-कारकः=विश्वासभूमिः, हृद्य इति=उदराध्मानजहृत्स्पन्दनेऽपि हितो दृष्टः, तालमूली=मूसली, मोचरसः=शाल्मलीनिर्यासः। अन्न-क्षयजप्रवाहिकायामयं सद्यः फलति। विसूचिकायामुष्णजलमिश्रित-निम्बूरसानुपानेन देयः ॥३४-४२॥

शुद्ध पारा एक तोला, शुद्ध गन्धक दो तोला कज्जली में लोह भस्म तीन तोला, शुद्ध विष छः तोला सब को मिला चीते के क्वाथ से भावना दे, अनन्तर धतूरे के बीजों की भस्म बत्तीस तोला तथा सोंठ का चूर्ण तीन तोला, मिरच का चूर्ण ३ तोला पिप्पली का चूर्ण तीन तोला, लौंग तीन तोला, छोटी इलायची के बीजों का चूर्ण तीन तोला, जायफल आधा तोला, जावित्री आधा तोला, पांचों नमक प्रत्येक आधा तोला मिलावे। सेहुण्ड का क्षार, आंक का क्षार, एरण्ड का क्षार, इमली का क्षार, अपामार्ग का क्षार, पीपल वृक्ष की छाल का क्षार, हरड़ का चूर्ण, यवक्षार, सज्जी, हींग, जीरे का चूर्ण, भुना सुहागा, एक २ तोला डालें। इन सब को अम्लवर्ग से मर्दन कर एक रत्ती की गोली भोजन के बाद खावें। यह पाशुपत नामक रस लाभ होने

तुरन्त विश्वास दिलाता है, दीपन है, पाचन है, हृदय के लिए हित है, विसूचिका को शीघ्र दूर करता है। मूसली के रस से दें तो उदरामय को दूर करता है। मोचरस से दें तो अतीसार को हटाता है। सेंधानमक मिले तक्र से दें तो ग्रहणी को नाश करता है। सौंचल नमक, पिप्पली तथा सोंठ इनके चूर्ण से शूल का नाशक है। तक्र के अनुपान से बवासीर को हटाता है। पिप्पली चूर्ण से मिला कर सेवन से राजयक्ष्मा को नाश करता है। सोंठ व सौंचल नमक से वातरोगों में हितकर है। खांड और धनियां मिला कर अथवा धनियें के जल में खाण्ड डाल कर अनुपान से पित्तरोगों का नाशक है। पिप्पली चूर्ण और शहद से दें तो कफ रोग को तत्क्षण दूर करता है। इस से बढ़कर धन्वन्तरि जी के मत में कोई रस नहीं है॥ ३४-४३॥

बृहच्छङ्खवटी—

दग्धशङ्खस्य चूर्णं स्यात् तथा लवणपञ्चकम्।
तिन्तिडीक्षारकञ्चैव कटुकत्रयमेव च॥४४॥
तथैव हिङ्गुकं ग्राह्यं विषं पारदगन्धकम्।
अपामार्गस्य वह्नेश्च क्काथैर्लिम्पाकजैर्द्रवैः॥४५॥
भावयेत् सर्वचूर्णं तदम्लवर्गैर्विशेषतः।
यावत् तदम्लतां याति गुडिकाऽमृतरूपिणी॥४६॥
सद्यो वह्निकरी चैव भस्मकञ्च[1] नियच्छति।

[1] भस्मकं नाशयेत् खलु पाठः।

भुक्त्वाऽऽकण्ठन्तु तस्यान्ते खादेच्च गुडिकामिमाम् ॥४७॥
तत्क्षणाज्जारयत्याशु पुनर्भोजनमिच्छति।
हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विषमज्वरम् ॥ ४८ ॥
गुल्माख्यं पाण्डुरोगञ्च निद्राऽऽलस्यमरोचकम्।
शूलञ्च परिणामोत्थं प्रमेहञ्च प्रवाहिकाम्।
वक्त्रस्रावञ्च शोथञ्च दुर्नामानि विशेषतः ॥ ४९ ॥

बृहच्छङ्खवट्याम्—तिन्तिड़ीक्षारकं=इमलीति ख्यातवृक्षत्वक् निर्मितक्षारं भस्म वा। अपामार्गस्य=चिटचिटा इति ख्यातस्य, वह्नेः=रक्तचित्रकस्य, लिम्पाकजैः=कागजीनीबू इति ख्यातस्य रसैः रम्लवर्गैः (१०२ श्लो० अ. १) विशेषतो भावयेत्। सप्त भावनाः सम्प्रदायः। तदैव अम्लता भवति भाव्यद्रव्यस्य, नियच्छति= नाशयति, आकण्ठम्=यथेच्छम्। जारयति=पाचयति, वक्त्रस्रावं= अपाकजनितमास्य संस्रवणम, रक्तस्रावं चेति पाठस्तु प्रमादात् मा. २ र.। अलसके विलम्बिकायां जीर्णोदराध्माने रसशेषाजीर्णे च विशेषतो दीयते, मलबन्धनमपि करोति॥ ४४-४९ ॥

भाषा—शंखभस्म, पाचों नमक, इमली का क्षार, सोंठ, मिर्च पिप्पली इनके चूर्ण, हींग, शुद्ध विष, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक समभाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला कर अपामार्ग के रस से, चीते के क्वाथ से तथा नीबू के रस से भावना दें। विशेष करके अम्लवर्ग से तब तक भावना दें जब तक कि वह गोली खट्टी न हो जाय। यह अमृतरूपी गोली शीघ्र ही अग्नि

बढ़ाती है। भस्मक रोग को दूर करती है। कण्ठ तक भोजन करके इस गोली को खावें तो भी तत्क्षण भोजन पच जाता है और शीघ्र ही पुनः भोजन की इच्छा होती है। वातदोष, पित्त-दोष, कुष्ठ, विषमज्वर, गुल्म, पाण्डुरोग, निद्रा, आलस्य, अरुचि, शूल, परिणामशूल, प्रमेह, प्रवाहिका, मुखस्राव, शोथ और विशेष-कर बवासीर रोग को यह नाश करती है॥ ४४-४६॥

भक्तविपाकवटी—

माक्षिकं रसगन्धौ च हरितालं मनःशिला।
(गगनं कान्तलोहं च यथायोग्यं समाहरेत्।)
त्रिवृद्दन्ती वारिवाहं चित्रकञ्च महौषधम्॥ ५०॥
पिप्पलीं मरिचं पथ्यां यमानीं कृष्णजीरकम्।
रामठं कटुकां पाठां सैन्धवं साजमोदकम्॥ ५१॥
जातीफलं यवक्षारं समभागं विचूर्णयेत्।
आर्द्रकस्य रसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च॥५२॥
सूर्य्यावर्त्तरसेनैव तुलस्याः स्वरसेन च।
आतपे भावयेद्वैद्यः खल्लपात्रे च निर्मले।
पेषयित्वा वटीं कुर्यात् गुञ्जाफलसमप्रभाम्॥ ५३॥
भुक्तोत्तरे या बहुभोजनान्ते मुहुर्मुहुर्वाञ्छति भोजनानि।
आमानुबन्धे च चिराग्निमान्द्ये विड्विग्रहे पित्तकफानुबन्धे॥५४
अर्शःसु शोथोदरकेऽप्यजीर्णे शूले त्रिदोषप्रभवे ज्वरे च।
शस्ता वटी भक्तविपाकसंज्ञा सुखं विपच्याशु नरस्यभुक्तम्॥५५॥

भक्तविपाकवट्याम्—वारिवाहं=मुस्तकम्, महौषधम्=शुण्ठी,

रामठं=हींग इति। पाठा=अम्बष्ठा । प्रथमं हरितालं पृथगेव मसृणीकृत्य शेषद्रव्यैः सह योजयित्वा, आर्द्रको निर्गुण्डी सूर्यावर्त्तः हुलहुल इति, तुलसी=श्वेततुलसी प्रत्येकं रसेन त्रिः सप्त वा भावना। खल्लपात्रे=खल्वे, गुञ्जाफलसमप्रभां=रक्तिमितां वटीं कुर्यात्। मुक्तोत्तरीया इति तन्त्रान्तरेषु अस्या इदन्नाम। बहु भोजनान्ते=आकण्ठभोजनात्पश्चात् भुक्ता सती मुहुर्मुहुः=पुनः पुनर्भोजनानि वाञ्छति। आमानुबन्धे च चिराग्निमान्द्ये=जीर्ण प्रवाहिकायां हि अग्निमान्द्यं भवति तत्रैवामानुबन्धोऽपि ज्ञेयः कतिचिद्दिनानि विड्विग्रहोऽपि भवति तथैव पित्तकफानुबन्धोऽपि मनुष्यभेदेनाऽवस्थाभेदेन च। शूले—त्रिदोषप्रभवे=त्रिदोषजे त्रिदोष इत्यत्र प्रदोषपाठः प्रामादिकः। नरस्य कोष्ठं=कोष्ठस्थमन्न त्यर्थो नेयः। आशु=त्वरितं विपाच्य सुखं कुर्यादित्यर्थः विपाच्येत्य विरेच्य इति पाठस्तु न मनस्तोषाय। अत्रैव ६२-६८ श्लोकै महाभक्तपाकवटी वक्ष्यते तत्र गगनकान्तलोहौ विशेषौ, तुलसीस्था ज्योतिष्मती पाठश्च। न चान्यद्विशेषः नरस्येत्यत्र निरस्येति पा उचितः॥ ५०-५५॥

भाषा—स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध ह ताल, शुद्ध मनसिल, अभ्रक, कान्तलौह, निसोत, दन्तीमू नागरमोथा, चीता, सोंठ, पिप्पली, मरिच, हरड़, अजवायन, का जीरा, हींग, कुटकी, पाठा, सेंधानमक, अजमोद, जायफल, य क्षार, समभाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला अदर सम्भालू, सूर्यावर्त्त तथा तुलसी के रस से धूप में भावनायें

स्वच्छ खरल में पीस १ रत्ति की गोली बनालें। भोजन के पीछे वा मात्रा से अधिक भोजन कर लेने पर इसे देना चाहिये। इससे बारम्बार और भोजन खाने की इच्छा होती है। आमानुबन्धयुक्त पुराने अग्निमान्द्य में, पित्त कफ के अनुबन्ध से युक्त कब्ज में, बवासीर में, शोथ में उदर में, अजीर्ण में, शूल में, रात्रि के पूर्वभाग में होने वाले ज्वर में, यह बटी देनी अच्छी है। यह कोष्ठ में, सुख से अन्न को पचाकर मल को निकाल देती है। इसका नाम भक्तविपाकवटी है ॥ ५०—५५ ॥

पञ्चामृतवटी—

अभ्रकं पारदं ताम्रं गन्धकं मरिचानि च।
समभागमिदं चूर्णं चाङ्गेरीरसमर्दितम् ॥ ५६ ॥
मर्दिते हि रसे भूयो जयन्तीसिन्धुवारयोः।
भावनापि च कर्त्तव्या गुञ्जापरिमिता वटी ॥ ५७ ॥
तप्तोदकानुपानेन चतस्रस्तिस्र एव वा।
वह्निमान्द्ये प्रदातव्या वट्यः पञ्चामृताभिधाः ॥५८॥

पञ्चामृतवट्याम्—मरिचानि जले प्रक्षिप्तानि तलस्थानि ग्राह्याणि, चाङ्गेरी=यस्याः पत्रचर्वणेन दन्तानामम्लभक्षणजनित-हृष्टता तत्क्षणान्निवर्तते=चुक्रिका, जयन्ती=जैंत इति सिन्धुवारः=सम्हालू इति। एतयो रसेन मर्दनं भावना च देया, गुञ्जापरिमिता=रक्तितुल्या। यकृत्प्लीहवृद्धावपीयं त्रिफलानुपानेन प्रदेया ॥५६-५८॥

भाषा—अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक, मिरच का चूर्ण, समभाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्यों को मिला

कर चाङ्गेरी के रस से मर्दन करें। पुनः जयन्ती के रस से और संभालू के रस से क्रमशः भावनायें देकर एक रत्ति प्रमाण गोली बना तीन चार गोली गरम जल से दें तो अग्निमान्द्य शान्त होता है। इसे पञ्चामृत वटी कहते हैं ॥ ५६–५८॥

क्रव्यादो रसः—

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्वायसी चार्धपलप्रमाणे।
सञ्चूर्ण्य सर्वं द्रुतमग्नियोगादेरण्डपत्रेऽथ निवेशनीयम्॥५९
कृत्वाऽथ तां पर्पटिकां विदध्याल्लौहस्य पात्रे त्ववपूतमस्मिन्
जम्बीरजं पक्वरसं पलानां शतं नियोज्याग्निमथाल्पमल्पम्॥६
जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः सुपञ्चकोलोद्भववारिपूरैः।
सवेतसाम्लैः शतमत्र योज्यं समं रजष्टङ्कणज सुभ्रष्टम्॥६
विडं तदर्धं मरिचं समञ्च तत् सप्तवारं चणकाम्लकेन।
क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसस्तु मन्थानकभैरवोक्तः॥६
माषद्वयं सैन्धवतक्रपीतो ह्यसौ सुधन्यः खलु भोजनान्ते।
गुरूणि मांसानि पयांसि पिष्ट-घृतानि सेव्यानि फलानि चापि
मात्रातिरिक्तान्यपि सेवितानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः
निहन्त्यजीर्णान्यपि षट् प्रवृद्धमग्निं करोति क्रमसेवनेन॥६
कार्श्यस्थौल्यनिबर्हणो गरहरः सामार्त्तिनिर्णाशनः
गुल्मप्लीहनिसूदनो ग्रहणिकाविध्वंसनः स्रंसनः।
वातश्लेष्मनिबर्हणः श्रमहरः मूलार्तिशूलापहः
वातग्रन्थिमहोदरापहरणः क्रव्यादनामा रसः॥ ६५॥

क्रव्यादरसे- रसस्य=पारदस्य (पलम् १०) बले=गन्धकस्य (प० २) शुल्वं=ताम्रभस्म (प० ½) अयो=लौहभस्म (प० ½ । सर्वेषां कज्जलीं विधाय, अग्नियोगात्=वादराग्नियोगाद्द्रुतं=तैल-समं तरलम्, महिषी मलस्थे, ऐरण्डपत्रे निवेशनीयम्=पर्पटीविधानेन ढालनीयम्। ततो लोह-पात्रे विचूर्ण्य अवपूतं=वस्त्रपूतम्, पलानां शतं=शतपलम्, जम्बीरजं=जम्बीरोद्भवं, पक्वरसं=पक्वफल-रसम्। अथ अल्पमल्पं=मन्दं मन्दं, नियोज्य जीर्णे रसे=मन्दाग्निना पाके-जाते, सवेतसाम्लै=रम्लवेतयुतैः सुपञ्चकोलोद्भववारिपूरैः= पिप्पली पिप्पलीमूलचव्य-चित्रकनागरैः पञ्चकोलमितिख्यातम्, इत्यस्य पञ्चकोलस्यक्वाथेन, शतं=पञ्चाशतम्।

भावना खलु दातव्या पञ्चाशत्प्रमितास्तथा। र. इ. चि. अ. ६ श्लो० ५ पञ्चाशत्प्रमिता पृथक् इति योगरत्नाकरसम्वादाच्च। नामैकदेशग्रहणे नामग्रहणमिति-न्यायेन शतशब्दोऽत्र पञ्चाशत्परको ज्ञेयः। ततो टङ्कणजं सुभ्रष्टं रजः=भ्रष्टसौभाग्यचूर्णं समं= रसादिद्रव्यचतुष्टयसमम्, न तु जम्बीररसकोलादिभावितद्रव्य-समम्। तदर्धं=टङ्कणार्धम्। बिडं=बिडलवणम्, समञ्च मरिचं= सर्वद्रव्यसमानभागंमरिचचूर्णम्। मरीचं सर्वतुल्यकमिति योग-रत्नाकरोक्तेः सर्वतुल्यं मरीचकमिति वसवराजीयोक्तेश्च।

ततः सप्तवारं चणकाम्लकेन—प्रातश्चणकक्षेत्रे वस्त्रं प्रसार्य चणकपत्रावश्यायाद्र्रं तद्वस्त्रमातपे शोषयेत। एवं कतिचिद्दिनानि कृत्वा तद्वस्त्रं जलेन प्रक्षाल्य तज्जलं मन्दाग्निना विपक्वं घनीभूतं चणकाम्लं नाम सर्वेषामम्लानामुत्तमम्। चणकक्षारवारिणा इति

(र. इ. चि.) पाठे तु चणकवृत्तं दग्ध्वा निर्मितक्षारजलेनेत्यर्थः। सप्तभावना प्रदेयाः। क्रव्यादनामा=क्रव्य=माममांसमत्तीति क्रव्यादस्तदाख्यः, मन्थानभैरवोक्तः=मन्थानभैरवमहार्णवग्रन्थकृता निर्दिष्टः। मात्रा माषद्वयम। सैन्धवतक्रानुपानेन रसोऽयं भूरिमांसप्रियस्य सिंघणक्षौणिपालस्य दिष्टस्ततश्च भैरवानन्देन ग्रासः समासादितः (र. र. स. १६—१४३) ॥ ५६—६५॥

भाषा—शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक दो पल, दोनों की कज्जली करे। फिर ताम्रभस्म $\frac{1}{2}$ पल लौहभस्म $\frac{1}{2}$ पल मिला सब को खरल कर लोहे की कड़छी में डाल मृदु आग पर पिघला अरण्ड के पत्ते पर पर्पटी बना ले। पुनः इसे चूर्ण कर एक लोहे के पात्र में डाले और पक्व जम्बीरी का छना हुआ रस एक सौ पल मन्द २ आग पर पकावे। जब सब रस सूख जावे तब उतार डालकर पीसे और पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चीता, सोंठ, अमलवेत इन के एकत्र क्वाथ से ५० भावना दे। सूख जाने पर सुहागे की खील ४ पल, विड्लवण दो पल, मरिच का चूर्ण दस पल डाले। फिर सब को पीस चणकाम्ल से सात बार भावित करे। यह प्रसिद्ध रस मन्थानभैरव का कहा हुआ है। इसका नाम क्रव्याद रस है। इसे दो माषा लेकर सेंधानमक मिले तक्र के अनुपान से भोजन के अन्त में पीवें तो बड़ा लाभ करता है। इसके सेवन के समय गुरुद्रव्य मांस, दूध, पीठी, घृत तथा फलों का सेवन करना चाहिये। यह रस मात्रा से अधिक खाये अन्न को भी दो पहर में अर्थात् छः घण्टों में पचा देता है। छः

प्रकार के अजीर्ण को दूर करता है। क्रमशः मात्रा को बढ़ा कर सेवन से अग्नि को प्रवृद्ध करता है। कृशता तथा स्थूलता दोनों को दूर करके शरीर को समता में लाता है। संयोगजविष तथा आमदोष से उत्पन्न रोगों को दूर करता है। गुल्म, प्लीहा तथा ग्रहणी का नाशक है। स्रंसन है। वातश्लेष्म को हटाता है, श्रम हरता है, अर्श वा भगन्दर और शूल का नाशक है। यह क्रव्याद रस वातग्रन्थि व महोदर को दूर करता है मा. २ र. ॥५९-६५॥

ज्वालानलो रसः--

क्षारद्वयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम्
सर्वतुल्या जया देया तदर्धं शिग्रु वल्कलम् ॥ ६६ ॥
एतत् सर्वं ज़याशिग्रु–वह्निमार्कवजै रसैः।
भावयेत् त्रिदिनं घर्मे ततो लघुपुटे पचेत् ॥ ६७ ॥
भावयेत् सप्तधा चार्द्र द्रवैर्ज्वालानलो भवेत्।
पाचनो दीपनो हृद्यश्चोदरामयनाशनः ॥ ६८ ॥
निष्कोऽस्य मधुना लीढोऽनुपानं गुडनागरैः।
ज्वराजीर्णमतीसारं ग्रहणीं वह्निमार्दवम्।
श्लेष्महृल्लासवमनमालस्यमरुचिं जयेत् ॥ ६९ ॥

ज्वालानले—क्षारद्वयं=यवक्षारस्वर्जिक्षारौ, क्षारत्रयमिति पाठे तु टङ्कणमधिकम्। जया=भङ्गा, सर्वतुल्या=नव वा दश भागाः, शिग्रु वल्कलं=सौभाञ्जनत्वक् तन्मूलमुशल्याः प्रचारः।

तदर्धं=जयार्धम। वह्नि=श्चित्रकः, मार्कवो=भृङ्गराजः, एतेषां स्व-रसैः पृथक् त्रिदिनं घर्मे भावयेत्। लघुपुटे=कपोतपुटे (प्रह. ७३ श्लोके) स्वाङ्गशीते आर्द्रकरसेन सप्तभावना। निष्को=माष-चतुष्टयम्। यकृति प्लीह्नि वा विकृते यत्रातीसारो मन्दाग्निश्च तत्राप्ययं प्रचरति ॥ ६६–६६ ॥

भाषा—यवक्षार, सज्जीक्षार, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, पिप्पली पिप्पली मूल, चव्य, चीता, सोंठ, एक २ तोला नौ तोला भांग का चूर्ण और सुहांजने की मूली का चूर्ण साढ़े चार तोले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला भांग, सुहांजना, चीता और भांगरा प्रत्येक के रस या क्वाथ से तीन २ दिन धूप में भावना दे। लघुपुट में पाक कर ले फिर अदरक के रस से सात वार भावना दे। इसे ज्वालानल रस कहते हैं। यह अग्नि को दीपन करता तथा पाचन है। हृदय के लिए हित है। अतीसार को नाश करता है। इसे एक निष्क भर ले मधु से चाट कर ऊपर से गुड़ और सोंठ मिला कर खावे। यह ज्वर, अजीर्ण, अतीसार ग्रहणी, अग्निमान्द्य, कफ, हृल्लास, वमन, आलस्य और अरुचि को जीतता है। मा. ४ र. ॥ ६६—६६ ॥

अमृतवटी—

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपञ्च नवभागयोजितैः क्रमशः।
वटिका मुद्गसमाना कफत्रिदोषानलमान्द्यहारिणी ॥७०॥

अमृतवट्याम्--अमृतं=वत्सनाभाख्यम् तस्य द्वौ भागौ वराटकं=पीतकपर्दभस्म तस्य पञ्चभागाः, मरिचचूर्णस्य नवभाग

जलेन मर्दयित्वा मुद्गसमानावटी रोगान्तदौर्बल्यावस्थाजनिताग्नि-मान्द्येऽपि प्रदीयते, रक्तजननी च भवति ॥ ७० ॥

भाषा—शोधित विष दो तोला, शुद्ध कौड़ीभस्म पांच तोला काली मिर्च का चूर्ण नौ तोला। जल से घोंट कर मूंग के समान गोली बनावे। यह कफनाशक, त्रिदोषनाशक, तथा अग्निमान्द्य नाशक है ॥ ६७–७० ।

बृहद्भक्तपाकवटी—

अभ्रं पारदगन्धकौ सदरदौ ताम्रञ्च तालं शिला
वङ्गञ्च त्रिफला विषञ्च कुनटी भागास्त्रयो दन्तिनः।
शृङ्गी व्योषयमानिचित्रजलदं द्वे जीरके टङ्कणं
एलापत्रलवङ्गहिङ्गु कटुकी जातीफलं सैन्धवम् ॥७१॥
एतान्यार्द्रक-चित्रदन्ति-सुरसा-वासारसैर्बिल्वजैः
पत्रोत्थैरपि सप्तधा सुविमले खल्ले विभाव्यान्यतः।
स्यादेवल्लमितं तथा च सकलव्याधौ प्रयोज्या बुधैः
विड्बन्धे कफजे त्रिदोषजनिते ह्यामानुबन्धेऽपि च ॥७२॥
मन्देऽग्नौ विषमज्वरे च सकले शूले त्रिदोषोद्भवे।
हन्यात् तानपि भक्तपाकवटिका भूयश्च सामं जयेत् ॥७३॥

बृहद्भक्तपाकवट्याम्—दरदः=शिंरफ इति, शिला=शिला-जि. कुनटी=नैपाली, मनःशिला, दन्तिनः=दन्तिमूलचूर्णस्य, शृङ्गी=काकड़ाशृङ्गी, जलदं=मुस्तकम्। सुरसा=तुलसी वासेत्यत्र

मूर्वेति पाठान्तरम् (र. यो. सा.) बिल्वपत्रोत्थैः=(७६ श्लो.) आर्द्रकादिप्रत्येकद्रव्येण सप्त भावना, वल्लमितं=द्विगुञ्जप्रमाणा सकलव्याधौ=तैस्तैरनुपानैः सर्वेष्वपि रोगेषु प्रयोज्या इत्यर्थः आमानुबन्धे=प्रायो जीर्णप्रवाहिकायां भवत्यामानुबन्धः । तत्र सांन आध्मानकोष्ठबद्धताऽनलसादे भवतीयं कार्यकरी ॥७१-७३॥

भाषा—अभ्रकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हिंगुल ताम्रभस्म, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनःशिल, वङ्गभस्म, तथा हरड़ बहेड़ा, आंवला इनके चूर्ण, शुद्ध विष; शुद्ध नैपाली मनसिल प्रत्येक द्रव्य एक भाग, दन्तीमूल का चूर्ण तीन भाग, काकड़ा सिंगी, सोंठ, मिरच, पिप्पली, अजवायन, चीता, मोथा, श्वेत जीरा, काला जीरा, सुहागा भुना, छोटी इलायची के बीज, तेज पत्र, लौंग, हींग, कुटकी, जायफल, सेंधानमक इन सबके चूर्ण पृथक् एक-एक भाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला अदरक रस से, चीते के क्वाथ से, दन्तीमूल के क्वाथ से, तुलसी पत्तों के रस से, बांसा के पत्तों के रस से तथा बेल के पत्तों रस से सात २ बार भावना दें। २ रत्ति की गोली बना लें। सब रोगों में दें। यह भक्तपाकवटी कफज तथा त्रिदोषज न बन्ध, आमयुक्त, अग्निमान्द्य, सब प्रकार के विषमज्वर तीनों दोषों से उत्पन्न शूलों में लाभ करती और आम जीतती है ॥ ७१-७३ ॥

लवङ्गादिवटी —

लवङ्गशुण्ठीमरिचानि अष्ट-सौभाग्यचूर्णानि समानि कृत्वा भाव्यान्यपामार्गहुताशवारा प्रभूतमांसादिकजारणाय ॥

लवङ्गादिवट्याम्--हुताशः=चीता इति, यथासम्भवं स्वरसेन क्वाथेन वा भावना देया। मात्रा ४ रत्ति। पोदीनस्वरसेन, वातार्शसि, कासेऽग्निमान्द्ये शूले, आमाजीर्णेऽपि दीयते। पुनः पुनर्दुर्गन्धिमलप्रवृत्तौ, अपक्वमलेनोदरशूलेऽजीर्णजोऽतिसार इति ज्ञात्वा तत्र भ्रष्टजीरकचूर्णमधुनोष्णजलेन वा योज्या॥ ७४॥

भाषा—लौंग, सोंठ, मिरच, सुहागे की खील, समभाग ले अपामार्ग के रस और चीते के रस से भावना दें। इसके सेवन से प्रभूत मात्रा में खाया मांस आदि गरिष्ठ भोजन भी पच जाता है।॥ ७४॥

बृहल्लवङ्गादि वटी—

लवङ्गजातीफलधान्यकुष्ठं जीरद्वयं त्र्यूषणत्रैफलञ्च।
एलात्वचं टङ्कवराटमुस्तं वचाऽजमोदाविडसैन्धवञ्च॥७५॥
तदर्धकं पारदगन्धमभ्रं लौहञ्च तुल्यं सुविचूर्ण्य सर्वम्।
तन्नागवल्लीदलतोयपिष्टं वल्लप्रमाणां वटिकाञ्च कृत्वा॥७६
प्रातर्विदध्यादपि चोष्णतोयैरियं निहन्याद् ग्रहणीविकारम्।
आमानुबन्धं सरुजं प्रवाहं ज्वरं तथा श्लेष्मभवं सशूलम्॥७७॥
कण्ठाम्लपित्तं प्रबलं समीरं मन्दानलं कोष्ठगतञ्च वातम्।
वटी लवङ्गादिवसुप्रणीता तथा सवातं विनिहन्ति शीघ्रम्॥७८॥

बृहद्लवङ्गादिवट्याम्—कुष्ठं=कूट इति, त्वचं=दारुसिता, लवङ्गादिसैन्धवान्तानां प्रत्येकमेको भागः। पारदादिलौहान्तानां

प्रत्येकमर्धो भागः, नागवल्लीदलतोयेन=पर्णपत्ररसेन पिष्ट्वा मा. २ र.। रुग्जं प्रवाहं=सशूलां प्रवाहिकाम्। वसुप्रणीता=वसूपपदेन कनचिद्भिषजानिर्मिता। यत्रामातिसारे नाभिदेशे सशूलं पुनः पुनरल्पमलप्रवृत्तिस्तत्र भ्रष्टजीरकचूर्णेन निवृत्तवेगायां विसूचिकायां सत्यतिसारे लवङ्गजलेन, पलाण्डुस्वरसेन वा, एवं आध्मानयुते वातार्शसि मध्याह्ने सायं चेयं गुटी प्रदीयते। प्रातश्चोष्णजलेन दशमूलषट्पलघृतं प्रदेयम् ॥ ७५-७८॥

भाषा—लौंग, जायफल, धनियां, कूट, श्वेत जीरा, कालाजीरा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, छोटी इलायची, दारचीनी, भुना सुहागा, कौड़ीभस्म, मोथा, वच, अजमोद, बिडनमक, सेंधानमक एक २ तोला लें। शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, आधा २ तोला, लौहभस्म ½ तोला लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला पान के रस से खरल कर २ रत्ति की गोली बना प्रातःकाल गरम पानी से खावे। आमानुबन्ध ग्रहणी, पीड़ायुक्त प्रवाहिका, श्लेष्मज्वर, शूल, कुष्ट, अम्लपित्त, प्रबल वायुरोग, मन्दाग्नि, कोष्ठगतवात तथा वायु के अनुबन्ध युक्त अन्य रोगों को यह वसुप्रणीत लवङ्गादिवटी दूर करती है ॥ ७५-७८ ॥

जातीफलादिवटी—

जातीफलं लवङ्गञ्च पिप्पली सिन्धुकामृतम्।
शुण्ठीधुस्तूरबीजञ्च दरदं टङ्कणं तथा ॥७९॥
समं सर्वं समाहृत्य जम्भनीरेण मर्दयेत्।
वल्लमाना वटी कार्य्या चाग्निमान्द्यप्रशान्तये ॥८०॥

जातीफलादिवट्याम्--सिन्धुको=नीलसिन्धुवारः। रा. नि. व. ४। अमृतं=विषम, जम्भनीरेण=जम्बीरस्वरसेन वल्लमाना=गुञ्जा-द्वयमिता। आमाजीर्णे आमवाते ग्रहण्यां चेयं प्रयुज्यते ॥७९-८०॥

भाषा-जायफल, लौंग, पिप्पली, सेंधानमक, शुद्ध विष, सोंठ, शुद्ध धतूरे के बीज, शुद्ध हिंगुल, भुना हुआ सुहागा, समभाग लें। जम्बीरी के रस से मर्दन करके २ रत्ति प्रमाण गोली से अग्निमान्द्य रोग दूर हो जाता है ॥ ७९-८० ॥

शङ्खवटी-

सार्धकर्षं रसेन्द्रस्य गन्धकस्य तथैव च।
विषं कर्षत्रयं दद्यात् सर्वतुल्यं मरीचकम् ॥ ८१ ॥
दग्धशङ्खं च तत्तुल्यं पञ्च कर्षाणि नागरात्।
स्वर्जिका रामठं कणा-सिन्धुसौवर्चलं विडम् ॥ ८२ ॥
सामुद्रमौद्भिदं चैव भावयेन्निम्बुकद्रवैः।
वटी ग्रहण्यम्लपित्तशूलघ्नी वह्निदीपनी।
वह्निमान्द्यकृतान् रोगान् सामदोषं विनाशयेत् ॥८३॥

शङ्खवट्याम्--रसेन्द्रस्य=पारदस्य, सार्धकर्षमर्धेन युतं कर्षम् (१½ क.) गन्धकस्य तथैव च (क. १½) मरीचकं सर्वतुल्यं ...कर्षम्, तत्तुल्यं शङ्खभस्म (६ क.) रामठं=हिङ्गु, कणा=पिप्पली, सिन्धु=सैन्धवम्, सौवर्चलं=कालानमक इति बिडं=...नमक इति, सामुद्रमुदधिजलान्निष्पन्नम्। औद्भिदम्=पांशु-लवणम्, खारीनमक इति, नागरादि-औद्भिदान्तानां प्रत्येकं

पञ्च पलानि, निम्बुकरसेन सप्त भावना। मा. २ र.। ग्रहणी-रोगेऽनया वायोरनुलोमनमनलवृद्धिरजीर्णदोषाध्मानानिवृत्तिश्च भवति। अम्लोद्गारे, अधोगताम्लपित्ते-अजीर्णजनितोदरवेदनायां चेयं प्रयुज्यते अनुपानं शीतलं जलम्, अतिस्रुतौ च मुस्तकरसमधुना जीरकचूर्णेन वा॥ ८१-८३॥

भाषा-शुद्ध पारा डेढ़ कर्ष, शुद्ध गन्धक १½ कर्ष, शुद्ध विष तीन कर्ष, मिरच का चूर्ण छः कर्ष, शंखभस्म छः कर्ष, सोंठ का चूर्ण पांच कर्ष, सज्जी, हींग, पिप्पली, सेंधानमक, सौंचलनमक, विडनमक, सामुद्र लवण तथा औद्भिद पांच पांच कर्ष ले पीसकर नीबू के रस से भावना दे गोली बनावे। इसके सेवन से ग्रहणी, अम्लपित्त, शूलरोग नष्ट होते हैं। यह अग्नि को दीप्त करती है। अग्निमान्द्य से होने वाले रोगों तथा आमदोष को भी हटाती है। मा० २ र.॥ ८१-८३॥

चिन्तामणिरसः-

रसं गन्धं मृतं[1] ताम्रं मृतमभ्रं फलत्रयम्।
त्र्यूषणं दन्तिबीजञ्च सर्वं खल्ले विमर्दयेत्॥८४॥
द्रोणपुष्पीरसैश्चापि भावयेच्च पुनः पुनः।
अस्य मात्रा प्रदातव्या गुञ्जैका वा द्विगुञ्जिका[2]॥८५॥
चिंतामणिरसो ह्येष चाजीर्णे शस्यते सदा।
आमवातं ज्वरं हन्ति सर्वशूलनिसूदनः॥ ८६॥

चिन्तामणौ--दन्तिवीजं=शोधितं ग्राह्यम्, सर्वसमं गृहीत्वा

१. विषं शुल्वं पाठः। २. त्रिगुञ्जिका पाठः।

खल्वे विमर्द्य, द्रोणपुप्पीरसेन सप्त भावना। मा. १-२ र.। ज्वरे चायं ३११ श्लोकेन पठितः। गुणपाठे ग्रन्थान्तरे 'ज्वरमष्टविधं हन्ति' इत्यपि दृश्यते ॥ ८४-८६ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म तथा हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली इन सबके चूर्ण, शुद्ध दन्तीबीज प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला गूमा के रस से सात बार भावना दें। इस की एक रत्ति या दो रत्ति की मात्रा दें। यह चिन्तामणिरस अजीर्ण आमवात ज्वर तथा सब प्रकार के शूल में लाभ करता है ॥ ८४-८६ ॥

प्रदीपनो रसः-

रसनिष्कं गन्धनिष्कं निष्कमात्रं प्रदीपनम्।
पलमर्धं प्रदातव्यं चुल्लिकालवणं बुधैः ॥८७॥
मर्दयित्वा प्रदातव्यमथास्य माषमात्रकम्।
अजीर्णे चाग्निमान्द्ये च दातव्यो राजवल्लभः ॥८८॥

प्रदीपने--निष्कं=माषचतुष्टयम्। प्रदीपनं=विषमिति पूर्वे टीकाकृतः। यत्तु प्रदीपनश्चित्रक इति कश्चित्, तदज्ञानविलसि-तम्। यतश्चित्रकपर्यायेषु प्रदीपनशब्दस्य कोषादिषु कुत्राप्य-दर्शनात्। व्याख्यातृभिश्च तथा अव्याख्यातत्वात् यद्यपि--

प्रदीपलोहितो यः स्यात् दीप्तिमान् दहनप्रभः।
महादाहकरः पूर्वैः कथितः सप्रदीपनः। र. त. टिप्पणी। इति वाक्येन लक्षितं प्रदीपन ग्रहणमत्र प्राप्तं तथापि परम्पराव्यवहारात

वृद्धानुमतत्वाच्च शृङ्गिकाख्यस्य ग्रहणम्। चुल्लिकालवणम्=नौसादर इति। पलमर्धं=पलं-अर्धं चेत्यर्थः। सार्धपलमिति यावत्। सार्धं पलं प्रदातव्यं चूलिकालवणमिति र. यो. सागरे राजवल्लभरसे पाठदर्शनात्। अत एव माषप्रमाणमात्राऽपि सङ्गच्छते॥ ८७-८८॥

भाषा—शुद्ध पारा १ निष्क, गन्धक १ निष्क, विष का चूर्ण १ निष्क, नौशादर डेढ़ पल ले। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलावे। इसकी एक माषा मात्रा दे तो अजीर्ण तथा अग्निमान्द्य दूर होता है। इसका नाम राजवल्लभ है॥ ८७-८८॥

विजयरसः—

रसस्यैकं पलं दत्त्वा नागञ्च गन्धकं पलम्।
क्षारत्रयं पलं देयं लवङ्गं पलपञ्चकम्॥८९॥
दशमूली जयाचूर्णं तद्द्रवेण तु भावयेत्।
चित्रकस्य रसेनाथ भृङ्गराजरसेन तु॥९०॥
शिग्रुमूलद्रवैश्चापि ततो भाण्डे निरुध्य च।
याममात्र पचेदग्नौ मर्दयेदार्द्रकद्रवैः।
ताम्बूलीपत्रसंयुक्तं खादेन्निष्कमितं सदा॥९१॥

विजयरसे—नाग=मूलविषम्, अजीर्णप्रकरणात् न शीसकम्। नागः शीस धातौ वत्सनाभे नागकेशरवृक्षे इति वै. श. सि. क्षारत्रयं मिलितं पलम्। दशमूल्या भङ्गायाश्च प्रत्येकं पलपञ्चकं न दशमूल्याः प्रत्येकं पलपञ्चकम्। चरके च्यवनप्राशे पलमे

निदध्यात्तु त्वगेलापत्रकेशरादितिवत्। तदिति—तत इत्यर्थेऽव्ययं पदम् चादिगणे पाठात्। नात्र तच्छब्दः पूर्वपदपरामर्शक इत्यतो दशमूलविजयाभावना देया न भवति चित्रकभृङ्गराजशिग्रुमूल-द्रवैः प्रत्येकं सप्तभावना। तदनु भाण्डे निरुध्य=भाण्डमुखनिरोधनं च कृत्वा याममात्रं=प्रहरमानम्, अग्नौ पचेत्। स्वाङ्गशीते च पुनरार्द्रकरसैः सप्तभावना ॥ ८९–९१ ॥

भाषा—शुद्ध पारा एक पल, शुद्ध गन्धक एक पल, दोनों की कज्जली करे। शुद्ध वत्सनाभ विष एक पल, यवक्षार, सज्जी, सुना सुहागा, प्रत्येक द्रव्य एक पल, लौंग का चूर्ण पांच पल दशमूल, क्वाथ तथा भांग चीता भांगरा और सुहांजने की जड़ इनके रसों से भावनायें दें। शुष्क होने पर एक पात्र में सारे भावित चूर्ण को डाल मुंह बन्दकर एक पहर तक अग्नि पर पकावें। फिर अदरक के रस से मर्दन करें। पान के पत्ते में रखकर एक निष्क भर खावें तो अजीर्ण आदि रोग नष्ट होते हैं ॥८९–९१॥

महाभक्तपाकवटी—

माक्षिकं रसगन्धौ च हरितालं मनःशिला।
गगनं कान्तलौहञ्च सर्वमेतच्च कार्षिकम् ॥९२॥
त्रिवृद्दन्तीवाराहं चित्रकञ्च महौषधम्।
पिप्पलीं मरिचं पथ्यां यमानीं कृष्णजीरकम् ॥९३॥
रामठं कटुकां पाठां सैन्धवं साजमोदकम्।
जातीफलं यवक्षारं समभागं विचूर्णयेत् ॥ ९४ ॥

आर्द्रकस्य रसेनैव निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च।
सूर्य्यावर्त्तरसेनैव ज्योतिष्मत्या रसेन च ॥९५॥
आतपे भावयेद्वैद्यः कृत्वा गुञ्जामितां वटीम्।
भक्षयेत् तां वटीं प्राज्ञो लवङ्गेन नियोजिताम् ॥९६॥
भुक्तोत्तरीये बहुभोजनान्ते आमानुबन्धे चिरवह्निमान्द्ये।
विड्विग्रहे वातकफानुबन्धे शोथोदरानाहगदेऽप्यजीर्णे ॥९७॥
शूले त्रिदोषप्रभवे ज्वरे च शस्ता वटी भक्तविपाकसंज्ञा।
सुखं विरेच्याशु नरस्य कोष्ठं मुहुर्मुहुर्वाञ्छयतीप्सितान्नम् ॥९८

महाभक्तपाकवट्याम्—-माक्षिकमिति व्याख्यातचरोऽयम् (५०-५५ श्लो.) ॥ ९२-९८ ॥

भाषा—स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हड़ताल, शुद्ध मनसिल, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला निशोथ, दन्तीमूल, मोथा, चीता, सोंठ, पिप्पली, मिरच, हरड़, अजवायन, काला जीरा, हींग, कुटकी, पाठा, सेंधानमक, अजमोद, जायफल, यवक्षार, प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण को एक २ कर्ष लें। सबको मिला कर अदरक के रस से, निर्गुण्डी के रस से, सूरजमुखी के रस से, मालकंगनी के रस से धूप में भावना देकर एक २ रत्ति की गोली बनावें। उसे बुद्धिमान वैद्य रोगी को लौंग के चूर्ण से खिलावे। बहुत भोजन खा लेने पर, आमानुबन्धयुक्त पुराने अग्निमान्द्य में,

कब्ज में, वातकफ के अनुबन्ध से युक्त शोथ उदररोग आनाह वा अजीर्ण में शूल में त्रिदोषज ज्वर में भक्तविपाक वटी को दे। यह भोजन के बाद दी जाती है। मनुष्य के कोष्ठ को सुखपूर्वक विरेचन करके यह बार बार भूख लगाती है ॥ ९२-९८ ॥

रसराक्षसः—

ताम्रं पारदगन्धकं त्रिकटुकं तीक्ष्णञ्च सौवर्चलम्।
खल्ले मर्द्य दिनं विधाय सिकताकुम्भेऽष्टयामं ततः।
स्विन्नं तस्य च रक्तशाकिनिभवं क्षारं समं मेलयेत्
लुङ्गाम्लोत्थजलैर्विभाव्यसकलं नाम्ना रसो राक्षसः ॥९९॥

रसराक्षसे—तीक्ष्णम्=तीक्ष्णलोहभस्म, सिकताकुम्भे=बालुकायन्त्रे, स्विन्नं=स्वेदितम्, तस्य च स्वेदितौषधस्य समं, रक्तशाकिनिभवं=रक्तपुनर्नवाकृतं क्षारं मेलयेत। तदनु-लुङ्गाम्लोत्थजलैः= लुङ्गो=मातुलुङ्गस्तदम्लोत्थजलैः=सुपक्वात्यम्लमातुलुङ्गरसैरित्यर्थः। जलैरित्युक्तेऽपि अम्लपदोपादानं सुपक्वात्यम्लार्थं द्योतयति। त्रिः सप्त वा भावना। मा. २ र.। क्रमेणास्य रक्तिकाष्टकं यावन्मात्रावर्धनं तथैव ह्रासः ॥ ९९ ॥

भाषा— ताम्रभस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोंठ मिरच, पिप्पली, तीक्ष्णलोहभस्म, सौंचल नमक, समभाग लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिलाकर दिन भर घोटें। पश्चात् बालुकायन्त्र में एक पहर भर स्वेदन करें फिर निकाल कर उसमें लाल पुनर्नवा क्षार को समभाग डाले और बिजौरा के रस से भावना दें। यह रसराक्षस है ॥ ९९ ॥

त्रिफलालौहम्—

त्रिफलामुस्तवेल्लैश्च सितया कणया समम् ।
खरमञ्जरिबीजैश्च लौहं भस्मकनाशनम् ॥ १०० ॥

अजीर्णप्रसङ्गाद्भस्मकचिकित्सामप्याह—त्रिफलेति- भस्मकोऽयं प्रायो मधुमेहिषु दृश्यते । वेल्लो=विडङ्गः, कणा=पिप्पली, खरमञ्जरिबीजानि=अपामार्गबीजानि । सर्वसममत्र लौहभस्म । मा. २ र. । अस्य सेवने—अपामार्गतण्डुलपायसं महिषीक्षीरकृतं त्वरितं लाभाय देयम् । क्षुधं हन्यादपामार्गक्षीरगोधारसेश्रृता । च. सू. २-३२ ॥ १०० ॥

भाषा—हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, वायविडंग, मिश्री, पिप्पली, अपामार्ग के बीज; इन सब के चूर्ण समभाग ले । तथा इसमें मिलित चूर्ण के समान लौहभस्म मिलावे । इस त्रिफलालौह से भस्मकरोग दूर होता है ॥ १०० ॥

अपामार्गाद्यञ्जनम्-

अपामार्गस्य पत्रञ्च मरिचञ्च समं समम् ।
अम्लरोलीयुतं पिष्टमञ्जनात् सूचिकां जयेत् ॥ १०१ ॥

अपामार्गाद्यञ्जने—अम्लरोली=चाङ्गेरी, सूचिकां=विसूचिकाम् । शेषं सुगमम् ॥ १०१ ॥

भाषा—अपामार्ग के पत्ते, मिरच का चूर्ण दोनों समभाग ले चांगेरी के रस से अच्छी प्रकार पीसकर अञ्जन करें तो विसूचिका रोग नष्ट होता है ॥ १०१ ॥

अग्निकुमारः—

टङ्कणं रसगन्धौ च समं भागत्रयं विषात् ।
कपर्दशङ्खयोस्त्र्यंशं वसुभागं मरीचकम् ॥ १०२ ॥
दिनं जम्भाम्भसा पिष्टं वल्लमात्रं प्रदापयेत् ।
विसूचीशूलविष्टम्भ-वह्निमान्द्ये ज्वरे तथा ।
अजीर्णे सङ्ग्रहण्याञ्च सिद्धश्चाग्निकुमारकः ॥१०३॥

अग्निकुमाररसे—टङ्कणमित्याद्यग्निकुमारस्य— रसेन्द्रगन्धा-विति (१४-१५ श्लो०) पूर्वोक्तेन साम्यमस्ति केवलं कपर्दशङ्ख-योर्द्विभागत्रिभागे वैषम्यमिति व्याख्यातचरम् ॥ १०२-१०३ ॥

भाषा—सुहागे की खील, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, एक २ तोला, शुद्ध विष तीन तोला, कौड़ीभस्म तीन तोला, शंखभस्म तीन तोला, मिरच का चूर्ण आठ तोला कज्जली में अन्य द्रव्यों को मिला जम्बीरी के रस से पीसें। इसे दो रत्ति मात्रा में दे। विसूची, शूल, विष्टम्भ, अग्निमान्द्य, ज्वर, अजीर्ण, संग्रहणी, इन रोगों को दूर करने में यह अग्निकुमार सिद्ध है ॥१०२-१०३॥

अपरा शङ्खवटी—

द्वौ क्षारौ रसगन्धकौ सलवणौ व्योषञ्च तुल्यं विषम् ।
चिञ्चा[1]शङ्खचतुर्गुणं रसवरैर्लिम्पाकजातैः कृतम् ।
वारं वारमिदं सुपाक[2]रचितं लौहं क्षिपेद्धिङ्गुकम्[3] ।
भ्रष्टं[4] टङ्कसमं सुमर्दितमिदं[5] गुञ्जाप्रमाणं[6] भजेत् ॥१०४॥

१—चिञ्चाभस्म, २—सुपाकचरितम् , ३—हिङ्गुलम् ४—भूयष्टङ्कसमम् , भ्रष्टङ्कसममिति वा ५—समुदितम् ६—पचेत् पा०

ख्याता शङ्खवटी महाग्निजननी शूलान्तकृत् पाचनी
कासश्वासविनाशिनी क्षयहरी मन्दाग्निसन्दीपनी।
वातव्याधिमहोदरादिशमनी तृष्णामयोच्छेदिनी
सर्वव्याधिनिसूदनी क्रिमिहरी दुष्टामयध्वंसिनी ॥१०५

अपरशङ्खवट्याम्—सलवणौ=लवणेन लवणाभ्यां वा सहितौ सैन्धवं सैन्धवसौवर्चले वा, व्योषं=त्रिकटु, चिञ्चाशङ्खचतुर्गुणं= चिञ्चाशङ्खयोः प्रत्येकमेकभागापेक्षया चातुर्गुण्यं तत्र चिञ्चा- स्त्वग्भस्मक्षारो वा देयः। रसवरैः=सुपक्कफलजैः, लिम्पाकजातैः= लिम्पाको जम्बीरस्तदुद्भवैरम्लैरित्यर्थः, वारम्बार=मनेकशः सुपरि रचितं लौहं=वारितरं लौहभस्म; हिङ्गुकं=हींग इति, टङ्क= सोहागा इति लौहहिङ्गुटङ्कानां समं=प्रत्येकमेको भागः महाग्नि- जननी=अतीवक्षुतकरी, विषूचिकायामजीर्णे कृमिरोगे च सर्व- शूलेऽपीयं प्रयुज्यते ॥ १०४–१०५ ॥

इत्यानन्दीटीकायामजीर्णाधिकारः।

भाषा—सज्जी, यवक्षार, पारा, गन्धक, सेंधानमक, त्रिकटु शुद्ध विष एक २ तोला, इमलीक्षार चार तोला, शंखभस्म चार तोला। कज्जली में सब को मिला नीबू के रस से सात भावना दे। फिर शतपुटी लौह एक तोला, हींग एक तोला, भुना सुहागा एक तोला मिला घोट एक रत्ति की गोली बनावें। यह शंखवटी अग्नि का अत्यन्त दीपन करती है। शूल को हटाती है, पाचन है। खांसी तथा दमे को नाश करती है। क्षय को हरती है।

न्द अग्नि को सन्दीपन करती है। वातव्याधि एवं महोदर आदि रोगों का नाश करती है। तृष्णा को शान्त करती है तथा इसी प्रकार के अन्य सब रोगों को दूर करती है। क्रिमि नाश करती तथा दुष्ट रोगों को दूर करती है॥ १०४-१०५॥

इति अजीर्णचिकित्सा।

अथ क्रिमिचिकित्सा।

क्रिमिकालानलो रसः—

विडङ्गं द्विपलञ्चैव विषचूर्णं तदर्धकम्।
लौहचूर्णं तदर्धञ्च तदर्धं शुद्धपारदम्॥ १॥
रसतुल्यं शुद्धगन्धं छागीदुग्धेन पेषयेत्।
छायाशुष्कां वटीं कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम्॥२॥
धान्यजीरानुपानेन क्रिमिकालानलो रसः।
उदरस्थं क्रिमिं हन्याद् ग्रहण्यर्शःसमन्वितम्॥ ३॥
अग्निदः शोथशमनो गुल्मप्लीहोदरान् जयेत्।
गहनानन्दनाथेन भाषितो विश्वसम्पदे॥ ४॥

क्रमप्राप्तां कृमिचिकित्सामाह—विडङ्गमिति—कृमिकालानले- ऽं=द्विपलार्धं पलमित यावत्, पुनस्तदर्ध=मर्धपलं ततस्तद- र्द्धं पलचतुर्थांशम्, रसतुल्यं=पारदतुल्यम्, अग्निदः=क्षुत्करः, मनः=पाण्डौ कामलायां वा चक्षुषि गलदेशे च सति शोथे पकरोति। व्यावहारिकी मा.-तु २ र.। आमाशयपक्वा- कृमिषु धान्यजीरानुपानेन देयः॥१-४॥

भाषा—वायविडंग का चूर्ण २ पल, विष १ पल, लौह ½ पल, शुद्ध पारा† चौथाई पल, शुद्ध गन्धक चौथाई पल लें। कज्जली में मिला बकरी के दूध से खरल कर १६ रत्ती की वटी बना छाया में सुखा धनियां और जीरे के अनुपान से सेवन करें। इसे क्रिमिकालानल रस कहते हैं। इसे खाने से पेट के कीड़े नष्ट होते हैं तथा ग्रहणी बवासीर नाश होती है। यह अग्निवृद्धि करता है, शोथ को शान्त करता है गुल्म प्लीहा तथा उदर रोगों को जीतता है। यह रस लोकोपकार के लिये गहनानन्दनाथ ने कहा है ॥ १–४ ॥

क्रिमिविनाशो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धमभ्रं लौहं मनःशिला।
धातकी त्रिफला लोध्रो विडङ्गं रजनीद्वयम् ॥ ५ ॥
भावयेत् सप्तधा सर्वं शृङ्गबेरभवै रसैः।
चणमात्रां वटीं कृत्वा त्रिफलारससंयुताम् ॥ ६ ॥
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय क्रिमिरोगोपशान्तये।
वातिकं पैत्तिकं हन्ति श्लैष्मिकञ्च त्रिदोषजम्।
नाम्ना क्रिमिविनाशोऽयं क्रिमिरोगकुलान्तकः ॥ ७ ॥

क्रिमिविनाशे—धातकी=धातकीपुष्पाणि, लोध्रः=पठानी लोध इति, रजनीद्वयं=हरिद्रादारुहरिद्रे, शृङ्गबेरभवै रसैः=आर्द्रकरसेन, तदभावे शुण्ठीक्वाथेन, त्रिफलारससंयुताम्=त्रिफला

†—प्रयोगों में पारा गन्धक सुवर्णादि शुद्ध ही डाले जाते हैं स्वर्णादि धातुओं की भस्म ही डाली जाती है। अतः पारदादि के साथ शुद्ध व स्वर्णादि धातुओं के साथ भस्म नहीं लिखा जायेगा।

द्वयं त्रिफलां गृहीत्वा द्विपलजले रात्रौ मर्दयित्वा प्रातः स्वच्छं जलमनुपेयम्। क्रमिरोगकुलान्तकः=सर्वविधक्रमिनाशकः । भा. २ र. ॥५—७॥

भाषा—पारा, गन्धक, अभ्रक, शुद्ध लौह, शुद्ध मनसिल, तथा धाय के फूल, हरड़, बहेड़ा, लोध, वायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी इन सबको समभाग लें। कज्जली में मिला अदरक के रस से सात भावना दे चने के समान गोली को प्रातःकाल त्रिफला के रस से खावें तो क्रिमिरोग शान्त होता है। वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक त्रिदोषज तथा सब प्रकार के क्रिमियों को यह क्रिमिविनाशनरस नाश करता है। भा० १ र० ॥५–७॥

(क्रिमिविनाशनरसः) क्रिमिरोगारिरसः–

सूतं गन्धं मृतं लौहं मरिचं विषमेव च।
धातकी त्रिफला शुण्ठी मुस्तकं सरसाञ्जनम् ॥८॥
पाठा त्रिकटु मुस्ता च बालकं बिल्वमेव च।
भावयेत् सर्वमेकत्र स्वरसैर्भृङ्गजैस्ततः ॥ ९ ॥
वराटिकाप्रमाणेन भक्षणीयो विशेषतः।
क्रिमिरोगविनाशाय रसोऽयं क्रिमिनाशनः ॥१०॥

क्रमिविनाशने—रसाञ्जनम्=

...लाभं विषरक्तदोषशमनं सश्वासहिध्मापहम्।
...वं वातविनाशनं क्रमिहरं दार्व्युद्भवं शोभनम् ।र. प्र. सु. । ६-२५।

पाठा=अम्बष्ठा, मुस्तकस्य भागद्वयमत्र उभयत्र पठनात्।

बिल्वं=बालबिल्वपेशी, समानं गृहीत्वा भृङ्गराजरसेन सप्त भावना। वराटका प्रमाणेन 'बीजकोषोत्रराटकः' (अ.) कमल-बीजप्रमाणेन देयः। अत्र मम—पलाशबीजसनामुकीकम्पिल्लकाः समानभागाः सर्वसमाना शर्करा माषमात्रा यथोक्तानुपानेन देया सूक्ष्मकृमिविनाशाय ॥ ८—१० ॥

भाषा–पारा, गन्धक, लौह, मिरच, विष, धाय के फूल, हरड़ बहेड़ा, आंवला, सोंठ मोथा, रसौंत, पाठा, काली मिरच, सौंठ, पिप्पली, मोथा, सुगन्धबाला, वेलगिरी, इन को समभाग ले भांगरे के रस की भावना दे एक कौड़ी भर क्रिमिरोग के नाश के लिए खावें। यह क्रिमिनाशन रस है ॥ ८-१० ॥

कीटमर्दो रसः—

शुद्धसूतं शुद्धगन्धो ह्यजमोदा विडङ्गकम्।
विषमुष्टिः ब्रह्मबीजं क्रमाद् द्विगुणितं भवेत् ॥११॥
चूर्णयेन्मधुना मिश्रं निष्कैकं क्रिमिजिद्भवेत्।
कीटमर्दो रसो नाम मुस्ताक्वाथं पिबेदनु ॥१२॥

कीटमर्दे-विषमुष्टिः=कुचिला इति, तच्छोधनप्रकारो यथा-(अ. ३७)

दोलायन्त्रे सारनाले विषमुष्टिपलत्रयम्।
पक्वं विशोषितं चूर्णं शुद्धं सर्वत्र योजयेत्। र. का. धे. ४७।

ब्रह्मबीजं=पलाशबीजं विशेषकृमिघ्नत्वात्। गो. टी., बाल-बोधिन्यान्तु-ब्रह्मबीजं=भार्गीबीजमित्यर्थः कृतः, तथा च भार्गी

तु कटुतिक्तोष्णा····कृमिघ्नी च····। रा. नि.। इति भार्ग्या कृमिघ्नत्वेऽपि ब्रह्मबीजपर्यायेषु न भार्गी न वा भार्गी पर्यायेषु ब्रह्मबीजशब्दो दृश्यते। द्विगुणितमिति–सूतापेक्षया गन्धस्य द्वौ भागौ एवं क्रमात् द्विगुणितकरणे ब्रह्मबीजस्य द्वात्रिंशद्भागा भवन्ति। ये तु–द्विगुणितं–क्रमोत्तरमिति मन्यन्ते तेषां कृमिमुद्गरस्य अत्रैव (१४–१५ श्लो०) पाठः पुनरुक्तिमापद्येत। द्विगुणितशब्दस्य तथाविधेऽर्थे शक्त्यभावाच्च। निष्कैकं=माषकचतुष्टयम्। उभयथापि कुपीलोरेकमात्रायां चतुर्थांशो भवत्यतः मा. ४–८ र. ज्ञेया। तोलकद्वयमुस्ताक्वाथमनुपिबेत॥ ११–१२॥

भाषा–पारा एक तोला, गन्धक दो तोला ले कज्जली करें। फिर अजवायन ४ तोला, विडंग ८ तोला, शुद्ध कुचला १६ तोला तथा ढाक के बीज ३२ तोला क्रम से लें। इन सबको पीसकर शहद के साथ एक निष्क भर खावें तो यह क्रिमियों को नाश करता है। इसे कीटमर्द रस कहते हैं। इसे खाकर मोथे का क्वाथ पीवे। मात्रा २ रत्ती॥ ११–१२॥

क्रिमिघ्नो रसः—

क्रिमिघ्नकिंशुकारिष्ट–वीजं सुरसभस्मकम्।
वल्लद्वयं चाखुपर्णी–रसैः क्रिमिविनाशनम्॥१३॥

कृमिघ्नेति—कृमिघ्नं=विडङ्गम्, किंशुकः=पलाशः, अरिष्टो=निम्बः, एतेषां बीजम्, सुरसभस्मकं=शोभनं सूतभस्म, वल्लद्वयं=गुञ्जाषट्कम्, आखुपर्णीरसैः=मूषाकर्णीरसैः, आमाशयगतकृमिषु देयते, कृमिजन्याक्षेपकेऽपि॥१३॥

भाषा—वायविडंग, ढाक के बीज, नीम के बीज, और उत्तम रससिन्दूर समभाग ले पीस कर चार रत्ति की गोली बनावें और रोगी को मूषकपर्णी के रस से दें तो क्रिमि नाश होते हैं ॥ १३॥

क्रिमिमुद्गरोरसः—

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाजमोदाविडङ्गं विषमुष्टिका च।
पलाशबीजश्च विचूर्णमस्य निष्कप्रमाणं मधुनाऽवलीढम् ॥१४

पिबेत् कषायं घनजं तदूर्ध्वं
रसोयमुक्तः क्रिमिमुद्गराख्यः।
क्रिमिं निहन्यात् क्रिमिजांश्च रोगान्
सन्दीपयत्यग्निमयं त्रिरात्रात् ॥१५॥

क्रिमिमुद्गरे—क्रमेणवृद्ध=मेकोत्तरवृद्धम्, यथा-रसः १, गन्धः २, अजमोदाऽत्र यमानी ३, विडङ्गम् ४, विषमुष्टिका=कुपीलुः ५, पलाशबीजम् ६. सर्वं सञ्चूर्ण्य वस्त्रेण गालयित्वा निष्कमात्रया मधुना पटोलपत्ररसयुतो देयः। सति चाध्मानादिपूपद्रवेषु चूर्णक जला (अ १-१७०) नुपानेन देयो निम्बपत्ररसैर्वा। कीटमर्दरस (११-१२ श्लो०) द्रव्यैः समानतास्य किन्तु मानभेदः॥ १४-१५॥

भाषा—पारा एक तोला, गन्धक दो तोला, अजवायन तीन तोला, वायविडंग चार तोला, कुचला पांच तोला, ढांक के बीज छः तोला कज्जली में मिला पीस लें। इसे क्रिमिमुद्गर रस कहते हैं। रोगी इसको एक निष्क भर ले शहद से चाट ऊपर से मो

का क्वाथ पीवे। यह क्रिमिमुद्गररस क्रिमि तथा क्रिमियों से उत्पन्न होने वाले रोगों का नाश करता है। तीन दिन प्रयोग करने से ही अग्नि को प्रदीप्त करता है। मा. ४-८ र. ॥ १४-१५ ॥

क्रिमिधूलिजलप्लवो रसः—

पारदं गन्धकं शुद्धं वङ्गं शङ्खं समं समम्।
चतुर्णां योजयेत् तुल्यं पथ्याचूर्णं भिषग्वरः ॥१६॥
दण्डयन्त्रेण निर्मथ्य पटोलस्वरसं क्षिपेत्।
कार्पासबीजसदृशीं कुर्य्याद्वै यत्नतो वटीम्।
त्रिवटीं भक्षयेत् प्रातः शीततोयं पिबेदनु ॥१७॥
केवलं पैत्तिके योज्यः कदाचित् वातपैत्तिके।
श्रीमद्गहननाथोक्तः क्रिमिधूलिजलप्लवः ॥ १८ ॥

क्रिमिधूलिजलप्लवे--पथ्या=हरीतकी। दण्डयन्त्रेण=पटोलपत्राणि दण्डेन मर्दयित्वा तत्स्वरसेन भावना। पैत्तिक इति–वृद्धे पूदरस्थक्रिमिषु वेदना, पाण्डुता–कामलादिपित्तविकृतौ शीतलजलेन प्रदेयः। मलशुद्धिरप्यनेन भवति गुदक्रिमिषु विशेषतोऽयं प्रचरति ॥ १६–१८ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, वंग, शङ्खभस्म, प्रत्येक द्रव्य समभाग लें। सबके समान हरड़ का चूर्ण लें। कज्जली में मिला पटोलपत्र के स्वरस डाल घोट कपास के बीज के समान गोली बना प्रातः तीन गोली खा ऊपर से ठंडा पानी पीवें। इसे केवल पित्तज क्रिमिरोग में प्रयोग करें। कदाचित् वातपित्तज क्रिमिरोग में भी

प्रयोग करा सकते हैं। यह श्रीमान् गहनानन्द नाथ का कहा हुआ क्रिमिधूलिजलप्लव रस है। यह रस गुदा के निकटस्थ अति सूक्ष्म श्वेत क्रिमियों का नाश करता है॥ १६-१८॥

क्रिमिकाष्ठानलो रसः—

विशुद्धं पारदं गन्धं वङ्गं तालं वराटकम्।
मनःशिला कृष्णकाचं सोमराजी विडङ्गकम्॥ १९॥
दन्तीबीजञ्च जैपालं शिवा टङ्गणचित्रकम्।
कर्षमात्रन्तु प्रत्येकं वज्रीक्षीरेण मर्दयेत्॥ २०॥
कलायसदृशीं कृत्वा वटिकां भक्षयेत् ततः।
क्रिमिकाष्ठानलो नाम रसोऽयं परिनिर्मितः।
श्लैष्मिके श्लेष्मपित्ते च श्लेष्मवाते च शस्यते॥२१॥

कृमिकाष्ठानले—कृष्णकाचं=कृष्णलवणम्, कृष्णवर्णकाच भस्म इति कश्चित्। सोमराजी=बापूची इति, दन्तीबीजं=क्षुद्र दन्तीबीजम्, जैपालं=जमालगोटा इति, ह्रस्वदीर्घभेदेन दन्ती द्विधा। तयोर्ह्रस्वा-उदुम्बरदलाकारा, अन्या-एरण्डदलाकारा। वै. श. सि.। दन्त्युदुम्बरपर्णी स्यादिति चरकश्च-क. १२. १। शिवा-स्थाने शिलेति पाठान्तरम् तत्र शिला मनःशिला शिला. शिलाजतु इति व्याख्यानद्वयं नातिरमणीयम्। प्रथमे मनःशिलाया भागद्वयं स्याद्द्वितीये तु कृमिरोगस्य कस्मिँश्चिदपि योगे शिलाजतुपाठा भावत्। वज्री=थूहर इति, कलायः=मटर इति॥ १९-२१॥

भाषा—पारा, गन्धक, वंग, हड़ताल, कौड़ीभस्म, शुद्ध मनसिल, काला नमक, सोमराजी के बीज, वायविडंग, दन्तीबीज, शु० जामलगोटा, हरीतकी, सुहागा, चीता, एक २ कर्ष ले सेहुण्ड के दूध से मर्दन कर मटर के समान गोली बना ले इसका नाम क्रिमिकाष्ठानलरस है। इसे श्लैष्मिक, श्लेष्मपित्तज, श्लेष्मवातज क्रिमिरोग में देने से लाभ होता है। मा. १ र. ॥१६–२१॥

लाक्षादिवटी—

लाक्षाभल्लातश्रीवास–श्वेतापराजिताशिफाः।
अर्जुनस्य फलं पुष्पं विडङ्गं सर्जगुग्गुलू ॥ २२ ॥
एभिः कीटाश्च शाम्यन्ति धूपितेच गृहे सदा।
भुजङ्गा मूषिका दंशा घुणा लूताश्च मत्कुणाः।
दूरादेव पलायन्ते क्लिन्नकीटाश्च ये स्मृताः ॥ २३ ॥

लाक्षादिव्याख्याम्—लाक्षा=लाख इति सा च अश्वत्थबदरवृक्षादौ क्षुद्रैः श्वेतवर्णकृमिभिर्निर्मीयते, भल्लातकः=भिलावा इति, श्रीवासः गन्दाबिरोजा इति, यस्मात् तारपीनतैलं निस्सरति। चीड़ इत्याख्य-(सरल)वृक्षनिर्यासः। श्वेतापराजिताशिफा=श्वेतपुष्पविष्णुक्रान्ता-मूलम्, सर्जगुग्गुलू=सर्जः, सालवृक्षनिर्यासः, राल इति। गुग्गुलुः प्रसिद्ध एव (अर्शः १२-२२) सर्वे समानाः। अत्र योगरत्नाकरतः—कुङ्कुमकुसुमविडङ्गं लाङ्गलिभल्लातकमथोशीरम् श्रीवेष्टकसर्जरसं चन्दनमथकुष्ठमष्टमं दद्यात्, एष सुगन्धो धूपः सकृत्कृमीणां विनाशकः प्रोक्तः शय्यासु मत्कुणानां शिरसि च गात्रेषु यूकानाम्। कृ. यो० १०–११। २२—२३॥

भाषा—लाख, भिलावा, बिरोजा, श्वेत विष्णुक्रान्ता की जड़, अर्जुन के फल और फूल, वायविडंग, राल, गूगल, समभाग पीस अंगारों पर रख घर में धूप दें तो सब प्रकार के कीड़े नष्ट हो जाते हैं। सांप, चूहे, दंश, घुण, मकड़ी, खटमल तथा क्लिन्न अर्थात् सील वाले स्थानों में उत्पन्न होने वाले सभी कीट इस धूप की गन्ध से दूर से ही भाग जाते हैं॥ २२-२३॥

क्रिमिहरो रसः—

शुद्धसूतमिन्द्रयवमजमोदां मनःशिलाम्।
पलाशबीजं गन्धश्च देवदाल्या द्रवैर्दिनम्॥ २४॥
सम्मर्द्य भक्षयेन्नित्यं शालपर्णीकषायकम्[1]।
सितायुक्तं पिबेच्चानु क्रिमिपातो भवत्यलम्॥ २५॥

क्रिमिहरे—इन्द्रयवं=कुटजबीजम्, देवदाली जीमूतकः कड़ुवीबिन्दाल इति। मात्रा—द्विरक्तिका; सितायुतशालपर्णीरसेन हृद्गतक्रिमिषु युक्तोऽत्र शालपर्णीस्थाने मुद्गपर्णीरसोयुक्त इतोऽपि, आखुपर्णीरसो युक्ततरस्तन्त्रान्तरसम्वादात्। तथा च-मुद्गपर्णी हिमा···क्रिमिघ्नीकफशुक्रनुत्। ध. नि.। र. र. समुच्चये क्रिमिहरे रसे-भक्षयेन्नित्यमाखुकर्णीकषायकम्। २८-२३३॥ २४-२५॥

भाषा—पारा, गन्धक, इन्द्रजौ, अजवायन, मनसिल, ढाक के बीज, समभाग लें। कज्जली में मिला बंदालडोडे के रस में एक दिन घोटकर सुखा लें। इसे खाकर ऊपर से मिश्री

१—आखुपर्णीकषायकम् र. र. स. पा०।

विडङ्गलौहम्—

रसं गन्धञ्च मरिचं जातीफललवङ्गकम् ।
शुण्ठी टङ्गं कणा तालं प्रत्येकं भागसम्मितम् ॥२६॥
सर्वचूर्णसमं लौहं विडङ्गं सर्वतुल्यकम् ।
लौहं विडङ्गकं नाम कोष्ठस्थक्रिमिनाशनम् ॥ २७ ॥
दुर्नाम ह्यरुचिञ्चैव मन्दाग्निञ्च विसूचिकाम् ।
शोथं शूलं ज्वरं हिक्कां श्वासं कासं विनाशयेत् ॥ २८॥

विडङ्गलौहे—विडङ्ग=वायविडङ्ग इति, लौहस्य नवभागाः, विडङ्गस्याऽष्टादशभागाः । कृमिषु सत्युदरशूलवमनादिषु प्रशस्तः, तुकरश्च तथा ग्रहणीनाशकः । मा. ४ र. ॥ २६-२८ ॥

* इति रसेन्द्रसारसंग्रहस्यानन्दीटीकायां कृमिचिकित्सा *

भाषा—पारा, गन्धक, मिरच, जायफल, लौंग, सौंठ इन के चूर्ण, भुना सुहागा, पिप्पली, हड़ताल एक २ भाग लें। सब के समान लोह और इन सबके समान वायविडङ्ग ले कज्जली में मिला लें। इस विडंगलौह से कोष्ठ के कृमि नाश होते हैं। यह बवासीर, अरुचि, मन्दाग्नि, विसूचिका, शोथ, शूल, ज्वर, हिचकी, श्वास, कास सब रोगों को हटाता है। मा. २-४ र. ॥२६-२८॥

अथ पाण्डु-कामला-चिकित्सा !

निशालौहम्—

लौहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफला-रोहिणीयुतम् ।
प्रलिह्यात् मधुसर्पिर्भ्यां कामलापाण्डुशान्तये ॥ १ ॥

क्रमप्राप्तां पाण्डुकामलाचिकित्सामाह—लौहचूर्णमिति-निशा-लौहे-निशायुग्मं=हरिद्रादारुहरिद्रे । रोहिणी=कटुकी । सर्वद्रव्य-समं लौहं देयम् । मा. २ र. । प्रत्यहं त्रिर्विभिन्नप्रमाणमधुसर्पिर्भ्यां लेहयेत् । मलप्रवृत्तिरप्यनेन भवति । प्रायो यकृद्विकृत्यैव पाण्डु-कामले भवतस्तत्र गुडूची विशेषतः सज्वरकामलायां प्रचरति ॥१॥

भाषा—हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी सम भाग सबके बराबर लौह सब को पीसकर घी और शहद तथा के गिलोय रस से खावें तो कामला और पाण्डुरोग अच्छा होता है । मा. २ रत्ती ॥१॥

धात्रीलौहम्—

धात्रीलौहरजोव्योष-निशाक्षौद्राज्यशर्कराः ।
भक्षणाच्च विनिघ्नन्ति कामलाश्च हलीमकम् ॥ २ ॥

धात्रीलौहे-धात्री=आमलकी, लौहरजः=लौहभस्म, क्षौद्रं मधु, आज्यं=घृतम्, सर्वे समानाः । लौहं सर्वसमम् मा. २ र. ॥२॥

भाषा—आंवला, लौह, सौंठ, मिरच, पिप्पली, हल्दी इन सबके बराबर लौह को मिला घी, शहद और खांड के साथ खावें तो कामला तथा हलीमक रोग नष्ट होता है । मा. २ र. ॥२॥

पञ्चाननवटी—

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतताम्राभ्रगुग्गुलुः ।
जैपालबीजं तुल्यांशं घृतेन वटकीकृतम् ॥ ३ ॥
भक्षयेद्बदरास्थ्याभं शोथपाण्डुप्रशान्तये ।
पञ्चाननवटी ख्याता पाण्डुरोगकुलान्तिका ॥४॥

पञ्चाननवट्याम्—जयपालबीजं शोधितम्, तुल्यांशमिति=सर्वैं समानाः वटकी कृतम्=घृतयोगेन बदरास्थ्याभं बदरास्थिसमानां वटीं कुर्यात । यकृत्क्रियाविकारजपाण्डौ कामलायां च दीयते । मा. २ र. । जैपालस्य सर्वचूर्णसमानतेति तु न युक्तं तुल्यांशमित्युक्तेः ॥ ३–४ ॥

भाषा—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, गुग्गुल, जमालगोटा, समभाग ले घी से झरबेर की गुठली के समान गोली बनावें। इसके सेवन से शोथ और पाण्डुरोग दूर होता है। इसका नाम पञ्चाननवटी है। यह पाण्डुरोगों को नष्ट करती है। यदि इस रस में से अभ्रकभस्म को निकाल दिया जाय तो पाण्डुसूदन(३८) रस होता है मा. २ र. ॥ ३–४ ॥

प्राणवल्लभो रसः—

हिङ्गुलसम्भवं सूतं काश्मीरोद्भवगन्धकम् ।
लौहं ताम्रं वराटश्च तुत्थं हिङ्गु फलत्रिकम् ॥५॥
स्नुहीक्षीरं यवक्षारो जैपालो दन्तिकं त्रिवृत् ।
प्रत्येकं शाणभागन्तु छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ ६ ॥

चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद् वारिणा मधुना सह ।
प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ ७ ॥
श्लेष्मदोषं समालोक्य युक्त्या च त्रुटिवर्द्धनम् ।
निहन्ति कमलां पाण्डुमानाहं श्लीपदं तथा ॥ ८ ॥
गलगण्डं गण्डमालां व्रणानि च हलीमकम् ।
शोथंशूलमुरुस्तम्भं सङ्ग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ ९ ॥
वान्ति मूर्छां भ्रमिं दाहं कासं श्वासं गलग्रहम् ।
असाध्यं सन्निपातञ्च जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ १० ॥
वातरक्तं तथा शोषं कण्डूं विस्फोटकापचीम् ।
नातः परतरं किञ्चित् कामलार्त्तिरुजापहम् ॥ ११ ॥

प्राणवल्लभे-हिङ्गुलः=शिङ्गरफ इति, ततः सम्भवं=डमरु यन्त्रेण निष्कासितं सूतम्, काश्मीरोद्भवं=काश्मीरी केसर इति, तुत्थमिति=तुत्थभस्म, स्नुहीक्षीरं=सेहुण्डदुग्धम, दन्तिकं=दन्ती मूलम, त्रिवृत्=निशोथ इति, छागीक्षीरेण=अजादुग्धेन, वारिणा मधुना=मधुमिश्रितजलेनेत्यर्थः । त्रुटिः=सूक्ष्मैला, अत्र तद्बीजपर स्त्रुटिशब्दः, सूक्ष्मैलाबीजप्रमाणं प्रत्यहं मात्रावर्धनम । पाण्डौ कामलायां वा यकृत्प्लीह वृद्धौ सति च शोथे ज्वरे मलशुद्ध्यर्थं प्रत्य प्रातर्मधूदकेन सेवनम । मा. २ र. योग्या । अयं योगो गुल्मे ३८ ४१ प्लीह्नि २८-२६ श्लोकैः पुनः स्यात् ॥ ५-११ ॥

भाषा—हिंगुल से निकाला पारा, गन्धक, काश्मीरी केशर लोह, ताम्र, कौड़ीभस्म, तूतिया हींग, हरड़, बहेड़ा, आंवला

सेहुण्ड का दूध, जौखार, शुद्ध जमालगोटा, दन्तीमूल, निसोत एक २ शाण लेकर बकरी के दूध से पीस चार रत्ति की गोली बना शहद के जल से रोगी खावे। यह प्राणवल्लभ नामक रस गहनानन्द ने कहा है। श्लेष्मदोष बढ़ा हो तो युक्तिपूर्वक पूर्व अल्प मात्रा से प्रारम्भ कर थोड़ा थोड़ा बढ़ाते हुए पूर्ण मात्रा तक देना चाहिये। इससे कामला, पाण्डु, आनाह, श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण, हलीमक, शोथ, शूल, ऊरुस्तम्भ, संग्रहग्रहणी, वमन, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, कास, श्वास, गलग्रह, असाध्य सन्निपात, जीर्णज्वर, अरोचक, वातरक्त, शोषरोग, कण्डूरोग, विस्फोटक, अपची आदि नाश होते हैं। इससे बढ़कर कामला रोग की और कोई औषध नहीं है ॥ ५-११ ॥

कामेश्वरो रसः—

पलं सूतं पलं गन्धं पथ्याचित्रकयोः पलम्।
मुस्तैलापत्रकाणाञ्च प्रति सार्धपलं क्षिपेत् ॥१२॥
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं त्रिषश्चापि पलं न्यसेत्।
नागकेशरकं कर्षमेरण्डस्य पलं तथा ॥१३॥
पुरातनगुडेनैव तुल्येनैव विमिश्रयेत्।
मर्दयेत् कनकद्रावैर्भावयेच्च घृतान्वितम् ॥१४॥
वटिकां वदरास्थ्याभां कारयेद् भक्षयेन्निशि।
पाण्डुरोगहरः सोऽयं रसः कामेश्वरः स्वयम् ॥१५॥

कामेश्वरे-चित्रको=रक्तचित्रकः, प्रत्येकं पलम्, एला=छोटी इलायची इति, पत्रकं=पत्रज इति। त्रयाणां मिलितं सार्धपलचतुष्टयम्। नागकेसरस्य कर्षं तोलकम्, सर्वसमो पुरातनगुडः। कनकद्रावैः=धत्तूरपत्ररसेन घृतमिश्रितेन बदरास्थिप्रमाणां वटीं कुर्यात्॥ १२-१५॥

भाषा—पारा एक पल, गन्धक एक पल, दोनों की कज्जली में हरड़ एक पल, चीता एक पल, मोथा डेढ पल, छोटी इलायची डेढ पल, तेजपात डेढ पल, सोंठ एक पल, मिरच एक पल, पिप्पली एक पल पिप्पली मूल एक पल, शुद्ध विष एक पल; नागकेशर एक कर्ष, एरण्ड एक पल डालें। सबको खरल करके सारे चूर्ण के समान पुराना गुड़ मिला धतूरे के रस से भावन मर्दन कर शुष्क होने पर घी से छोटे बेर की गुठली के बराबर गोली रात को सोते समय रोगी को दें। यह पाण्डुरोग को नाश करने वाला है। स्वयं कामेश्वर है। मा. २ र.॥ १२-१५॥

त्रिकत्रयाद्यं लौहम्—

पलं लौहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः।
सितायाश्च पलञ्चैकं क्षौद्रस्यापि पलं तथा॥१६॥
तोलकं कान्तलौहस्य त्रिकत्रयसुभावितम्।
ततः पात्रे विधातव्यं लौहे च मृन्मये तथा॥१७॥
हविषा भावितञ्चापि रौद्रे च शिशिरे तथा।
भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चापि प्रदापयेत्॥१८॥

१—त्रिकत्रयसमन्वितम्।

अनुपानं प्रदातव्यं बुध्वा दोषबलाबलम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च सुदारुणहलीमकम्† ।
अम्लपित्तं तथा शूलं शूलञ्च परिणामजम् ।
कासं पञ्चविधं श्वासं ज्वरं प्लीहानमेव च ॥
अपस्मारं तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च ।
अग्निमान्द्यमजीर्णञ्च श्वयथुञ्च सुदारुणम् ॥
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥१६॥

त्रिकत्रयाद्ये—लौहस्य किट्टस्य=मण्डूरभस्मनः, गव्यस्य सर्पिषः=गोघृतस्य, त्रिकत्रयं=त्रिफला, त्रिकटु त्रिमदास्तत्र विडङ्गचित्रकमुस्तकास्त्रिमदाख्या। त्रिकत्रयस्य प्रत्येकं तोलकं गृहित्वा मिलितक्वाथेन मृन्मये लौहे वा पात्रे, रौद्रे=आतपे शिशिरे रात्रौ च सप्तभावना, ततस्तथैव हविषा=गव्यघृतेन सप्तभावना। क्वाथेन भावनाऽसमर्थत्वे त्रिकत्रयस्य नवतोलकचूर्णं दत्वा-हविषा सप्त भावना देया। पाठश्च—त्रिकत्रयसमन्वितमिति (भै. र.व.) अस्ति। मा. ३ र.। अनुपानम् कोकिलाक्षपत्ररसः। कामलामिति कुम्भकामलायां हलीमके वातजे पित्तजे वा पाण्डुरोगे नखमुखचक्षुस्त्वगादीनां पीतवर्णे ईषत्कृष्णवर्णे वा तादृशवर्णे मले मूत्रे च ज्वरोपसर्गे प्रातः सायं प्रयोज्यम्। अम्लपित्तमिति=ऊर्ध्वगताम्लपित्ते;

† हलीमकमित्यस्यानन्तरं निहन्तिनात्र इत्यतः पूर्वं (र० यो० सा०) अधिकः पाठः।

श्वासमिति=प्रतमकश्वासे, ज्वरं=जीर्णज्वरम्, उपद्रवभूतं स्वतन्त्रं वा गुल्मं रक्तगुल्मं पित्तगुल्मं वा । पाण्डोः कामलायाश्च जीर्णावस्थायां सति पुरीषाऽप्रवृत्तावल्पशोथे च पञ्चामृतलौहमितोऽपि विशेषतयोपकरोति फलत्रिकादिक्वाथानुपानेन तु प्रायशो दीयते। फलत्रिकादिर्यथा-फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बजैरिति ॥ १६-१९॥

भाषा—मण्डूर एक पल, गौ का घी एक पल, मिश्री एक पल, शहद एक पल, कान्तलोह एक तोला इन्हें एकत्र लोहे या मिट्टी के पात्र में त्रिफला, त्रिकुटा तथा विडङ्ग, मोथा और चीता इनके क्वाथ से भली भांति भावनाएं दें और घी से भावित कर धूप और शिशिर में रखें। इसे भोजन के आदि में मध्य में और अन्त में सेवन करें। दोष के बलाबल को देखकर अनुपान दें। इस से कामला, पाण्डु तथा भयङ्कर हलीमक रोग दूर होता है इस में सन्देह नहीं, जैसे सूर्य से अन्धकार दूर होता है। मा. र र. ॥१६-१९॥

विडङ्गादिलौहम्—

विडङ्गमुस्तत्रिफला-देवदारुषड्षणैः ।
तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥२०॥
तैरक्षमात्रां गुडिकां कृत्वा खादेद् दिने दिने ।
कामलापाण्डुरोगार्त्तः सुखमाप्नुतेऽचिरात् ॥२१॥

विडङ्गाद्यौ-विडङ्गम्=कृमिघ्नम्, देवदारु=देवदार इति श्र- सारो ग्राह्यः। षड्षणैः=पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्य, चित्रकना-

मरिचैः, अयश्चूर्णं=लौहभस्म, तुल्यमात्रं=द्वादशभागमष्टगुणे गोमूत्रे=सर्वचूर्णाऽष्टगुणिते (२४×८=१९२) द्विरुत्तरनवतिशततोल-कमिते। अत्र द्रवद्वैगुण्यं न व्यवहरन्ति वृद्धा इति गो. टी.। मन्दाग्निना लौहपाकपरिभाषया पाकः। पाकलक्षणं च–रसोगन्धः शुभः पाके वर्ति स्याद्गाढ़मर्दनादिति वृन्दटीका व्याख्याकुसुमावली। अक्षमात्रां गुडिकामिति=गुडिकाकरणसौकर्यार्थमिदम्। मा. २. र.। कफजपाण्डुरोगे प्रचरति ।। २१ ।।

भाषा—वायविडंग, मोथा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, देवदार, सोंठ, पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चीता, मरिच एक २ तोला। लोह बारह तोले। फिर सब से आठ गुणा गोमूत्र डाल कर पकावें। ठीक पाक हो जाने पर एक अक्ष की गोली बना लें। प्रतिदिन योग्य मात्रा से खाने से कामला और पाण्डुरोग के रोगी शीघ्र नीरोग होते हैं। मा. २ र.। लोहे से आठ गुणा गोमूत्र लेकर केवल लोहे को उसमें पकाना चाहिये अन्य द्रव्य पीछे से उसमें मिलावें।। २०—२१ ।।

अन्यविडंगादिलौहम्—

विडङ्गत्रिफला व्योषं शुद्धलौहन्तु तत्समम्।
पुरातनगुडेनाथ लेहयेद् दिनसप्तकम्।
श्वयथुं नाशयेत् शीघ्रं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।।२२।।

अन्यविडङ्गादौ-पुरातनगुडेन=एकवर्षपुराणगुड़ेन सर्वचूर्णाद्विगु-णेन। पित्तजपाण्डुरोगे मलमूत्रनखशरीरादीनां पीतत्वज्वरदाहोद-न्यादिसत्वे. एवं कामलायां मलादीनां हारिद्रवर्णे लक्षिते प्रयो-ज्यम्। शोथातिसाराद्युपद्रवसत्वे च प्रातः सायम् मा. २ र. ।।२२।।

भाषा—वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली समभाग। सबके समान लौह मिला पुराने गुड़ के साथ चटाने से सात दिन में सूजन पाण्डुरोग तथा हलीमक रोग नष्ट होते हैं। मा. २ र.॥ २२॥

त्रैलोक्यसुन्दरो रसः—

मानञ्चैकं चतुः सूतं षडभ्रं वसुलौहकम्।
गन्धकं त्रिफलाव्योष-चूर्णं मोचरसस्य च॥ २३॥
मुषली चामृतासत्वं प्रत्येकं पञ्चभागिकम्।
भावयेत् सर्वमेकत्र त्रिफलानां कषायके॥ २४॥
भावना विंशतिर्देया दशरात्रं सुभावनाः।
शिग्रु चित्रकमूलाभ्यामष्टधा च पृथक् पृथक्॥ २५॥
सितया च समं क्षौद्रैः शोथपाण्डुक्षयापहः।
ज्वरातीसारसंयुक्त-सर्वोपद्रवनाशनः।
त्रैलोक्यसुन्दरो नाम रसो माषमितो हितः॥ २६॥

त्रैलोक्यसुन्दरे—मानञ्चैकं=शुष्कचूर्णीकृतस्य मानकन्दस्यैको भागः, चतुःसूतं=शुद्धसूतस्य चत्वारो भागाः, षडभ्रं=अभ्रकभस्मनः षड्भागा वसुलौहकं=लौहभस्मनोऽष्टौ भागाः, गन्धाद्यमृतासत्वान्ता- दशद्रव्याणां प्रत्येकं पञ्चभागाः, सर्वमेकीकृत्य दशभिरहोरात्रैस्त्रि- फलाक्वाथेन विंशति भावना देयाः। एवं शिग्रुचित्रकमूलक्वाथैः प्रत्येकमष्टभावना। मा. १ मा. त्रिदोषजे सान्निपातिके वा पाण्डु- कामलायाञ्च सर्वशरीरस्य मलमूत्रादेश्च पाण्डुतायां पीततायां वा

अराद्युपद्रवसत्वे मूलकपञ्चाङ्गरसानुपानेन कासनीरसानुपानेन, वा काकमाचीरसानुपानेन देयः। अत्र मानञ्चैकंचतुःसूतमिति पाठे-एतत्समानार्थत्रैलोक्यनाथरसे (र. यो. सा.) 'पलानि चत्वारि रसस्य पञ्चगन्धस्य' इति रसस्य भागचतुष्टयमतोऽत्र चतुःसूतमिति पाठो युक्तः प्रतिभाति । मानञ्चैकमित्यस्यार्थः प्रामाणिकवङ्ग-भाषाकारै (मानकचुएकभाग) मानकन्दस्यैको भाग इत्यर्थः कृतोऽतो अस्माभिरपि तथैव व्याख्यातः ॥ २३-२६ ॥

भाषा—मानकन्द एक भाग, पारा चार भाग, अभ्रक छः तोला, लोह आठ तोला, शुद्ध गन्धक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, मोचरस, मूसली, गिलोय का सत, प्रत्येक पांच तोले लें । कज्जली में मिला त्रिफला क्वाथ से दस दिन में बीस भावना दें। फिर सुहांजने की तथा चीते की जड़ के क्वाथ की आठ २ भावना दें। यह त्रैलोक्यसुन्दर रस एक माषा ले मिश्री तथा शहद के साथ खाने से शोथ, पाण्डु, क्षय तथा ज्वर और अतिसार से युक्त सब उपद्रवों को नष्ट करता है । मा. २ ग.॥ २३-२६ ॥

दार्व्यादिलौहम्—

दार्वीत्वक्त्रिफलाव्योष-विडङ्गान्ययसो रजः ।
मधुसर्पियुतं लिह्यात् कामलापाण्डुरोगवान् ॥ २७ ॥
शालिषष्टिकगोधूम-यवमुद्गादयो हिताः ।
रसाश्च जाङ्गलभवा मधुराः पाण्डुरोगिणाम् ॥२८॥

दार्व्यादिलौहे—दार्वीत्वक्=दारुहरिद्रामूलत्वकचूर्णम्, दार्व्यश्च

त्वच उत्तमा इति वचनात्। अयसोरजो=लोहभस्म, सर्वसमम्। एतच्च जीर्णज्वरे शोथे यकृत्प्लीहवृद्धौ विशेषतो रक्ताल्पतायामेक-रक्तिमात्रया घृतमधुभ्यां प्रत्यहं द्विस्त्रिर्वा प्रयोज्यम्॥ २७॥

पाण्डौ पथ्यमाह—शालीति–शालि:=महाशालि-कलम-तूर्णका-दयो हैमन्तिका-धान्यभेदा:। षष्टिक:=षष्टिका: षष्टिरात्रेण पच्यन्ते-षष्टिकोऽत्रापि पूजित:। कृष्णात्रेय:। षष्टिकश्च द्विविधो गौर: कृष्णगौरश्चेति तत्रापि गौर: श्रेष्ठ:। वा. भ. टी. सर्वाङ्गसुन्दरा। वा. भ. टी. आ. र. तु–यो व्रीहि: षष्टिरात्रेण पच्यते स षष्टिक:। चान्येभ्यो व्रीहिभ्य उत्तम: स च त्रिविध:–गौर: कृष्ण: कृष्णगौर-श्चेति। अतोऽधुना 'साबूदाना' स्थाने षष्टिकस्य पथ्ये व्यवहारो युक्त:। रसा:=मांसरसा। जाङ्गलभवा= जाङ्गलदेशजाता:। जाङ्ग-ललक्षणम् (अर्श: १३) ते च विष्किर-प्रतुद--गुहाशय-प्रसहादय:। मधुरा:=स्वादुरसा:, पाण्डुरोगीणां हिता:=पथ्या:। इदमत्रा-वधेयम्—प्रत्यहं मलशुद्धिर्लघुभोजनं सामयिकफलरससेवनं नगराद्बहिर्विशुद्धवातातपसेवनम्। सम्भवश्चेन्नातिशीतोष्णप्रदेशे जलवायुपरिवर्त्तनम। कामशोकभयमद्यचायप्रभृतिमदकरद्रव्यपरि-वर्जनं पाण्डुरोगिभ्यो हितम। पथ्यनिर्वाचकशाल्यादिश्लोकस्यास्य-पाण्डुरोगोदिता (५३) इत्यस्यानन्तरं प्रवेशो युक्त:॥ २८॥

भाषा—दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, वायविडंग समभाग सबके समान लौह मिला घोटकर रखें। इस दार्व्यादिलौह को शहद तथा घी से मिलाकर खावे तो पाण्डु और कामला रोग अच्छे होते हैं। पाण्डु रोगी को

शालि, सठ्ठी, गेहूं, जौ, मूँग जंगली जानवरों के रस व मधुर रस हित हैं। मा. २ र. ॥ २७—२८ ॥

चन्द्रसूर्यात्मको रसः—

सूतकं गन्धको लौहमभ्रकञ्च पलं पलम् ।
शङ्खटङ्कवराटञ्च प्रत्येकार्धपलं हरेत् ॥ २९ ॥
गोक्षुरबीजचूर्णञ्च पलैकं तत्र दीयते ।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं वाष्पयन्त्रे विभावयेत् ॥ ३० ॥
पटोलः पर्पटी भार्गी विदारी शतपुष्पिका ।
दन्ती[1] वासा कुण्डली च काकमाचीन्द्रवारुणी ॥३१॥
वर्षाभूः केशराजश्च शालिञ्ची द्रोणपुष्पिका ।
प्रत्येकार्धपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वटीं चरेत् ॥ ३२ ॥
चतुर्दशवटीं खादेत् छागी दुग्धानुपानतः ।
गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्यात्मको रसः ॥ ३३ ॥
हलीमकं निहन्त्याशु पाण्डुरोगं सकामलम् ।
जीर्णज्वरं सविषममम्लपित्तमरोचकम् ॥ ३४ ॥
शूलं प्लीहोदरानाहमष्ठीलागुल्मविद्रधीन् ।
शोथं मन्दानलं हिक्कां कासं श्वासं वमिं भ्रमिम् ॥३५॥
भगन्दरोपदंशौ च दद्रु कण्डूव्रणापचीः ।

१—कुण्डलीदाडिमीवासा पा० ।

उरुस्तम्भमामवातं दाहं तृष्णां कटीग्रहम् ॥ ३६ ॥
युक्तो मण्डेन मद्येन मुद्गयूषेण वारिणा ।
गुडूचीत्रिफलावासा–क्काथनीरेण वा क्वचित् ॥३७॥

चन्द्रसूर्यात्मके–प्रत्येकार्धपलमिति=प्रत्येकमर्धपलं-द्वितोलकम्। सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात्समासः। वाष्पयन्त्रे=तप्तखल्वे (१—१६) पटोलं=पटोलपत्रम्, पर्पटी=पित्तपापड़ा इति, शतपुष्पिका=सौंफ इति, दन्ती= (कृमि श्लोकः १६), वासा=वासकः, कुण्डली-गुडूची, काकमाची=वायसी, इन्द्रवारुणी=इन्द्रायन इति, वर्षाभूः=पुनर्नवा, केशराजो=भृङ्गराजः, शालिञ्चः पत्तूरः एतन्नाम शाकः, द्रोणपुष्पिका–गोमा घास इति। एतासां प्रत्येकमर्धपलरसैर्भावयित्वा वटीं चरेत्। ततः प्रत्यहं चतुर्दशादिनं यावच्छागीदुग्धानुपानेन एकैकां वटीं खादेत्। चतुर्दशादिनात्मकोऽयं कल्पः। अष्ठीला-पौरुषग्रन्थिगो रोगः। प्रायो वार्धक्ये दृश्यते ॥ २६–३७ ॥

भाषा—पारा, गन्धक, लौह, अभ्रक एक २ पल, शङ्खभस्म आधा पल, सुहागा १ पल, कौड़ीभस्म आधा पल, गोखरू के बीज का चूर्ण १ पल, कज्जली में मिला सबको पीस तप्त खल्व में आगे लिखी औषधों के रस से भावित करें। पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, भार्गी विदारीकन्द, सौंफ, दन्तीमूल, बाँसा, गिलोय, मकोय, इन्द्रायण, पुनर्नवा, केशराज, शालिञ्च शाक, गूमा प्रत्येक का आधा आधा पल रस लेकर भावना दे गोली बना लें। चौदह गोली सेवन करें। बकरी का दूध अनुपान है। यह चन्द्रसूर्यात्मक रस गहनानन्द नाथ ने कहा है। हलीमक, पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर,

विषमज्वर, अम्लपित्त, अरोचक, शूल, प्लीहा, उदररोग, आनाह, अष्ठीला, गुल्म, विद्रधि, शोथ, मन्दाग्नि, हिचकी, कास, श्वास, वमन, भ्रम, भगन्दर, उपदंश, दद्रु, कण्डू, व्रण, अपची, ऊरुस्तम्भ, आमवात, दाह, तृष्णा, कमरदर्द सबको दूर करता है। इस रस को दोष आदि के अनुसार कहीं मण्ड से, मद्य से, मूंग के रस से, जल से, गिलोय के स्वरस से, त्रिफला के क्वाथ से या अडूसे के रस से दे। मा. २ र.॥ २९–३७॥

पाण्डुसूदनरसः—

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालञ्च गुग्गुलम्।
समांशमाज्यसंयुक्तां गुडिकां कारयेद्भिषक् ॥३८॥
एकैकां भक्षयेन्नित्यं पाण्डुशोथप्रशान्तये।
शीतलञ्च जलं चाम्लं वर्जयेत् पाण्डुसूदने ॥३९॥

पाण्डुसूदने—रसादिगुग्गुल्वन्ताः, समांशाः, आज्यं=गव्यघृतं योग्यतया देयम्। मा. १ र.। यकृति लोह्नि पाण्डुशोथादौ यत्राऽऽनाहस्तत्राऽयं प्रवर्तते। पञ्चाननवट्यां (३–४) एतदपेक्षया अभ्रभस्मनोऽधिकत्वात्फलाधिक्यम्॥ ३८–३९॥

भाषा—पारा, गन्धक, ताम्र, जमालगोटा, गुग्गुलु समभाग। गुग्गुलु को घी से कूट कज्जली में मिला कर पुनः कूटे और गोली बना ले। एक गोली नित्य खावे तो पाण्डुरोग, और शोथ दोनों शान्त होते हैं। इस रस के सेवनकाल में रोगी ठण्डा जल और खटाई त्याग दे। मा. १ र.॥ ३८—३९॥

मण्डूरवज्रवटकः—

पञ्चकोलं समरिचं देवदारु फलत्रिकम् ।
विडङ्गमुस्तयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्मिताः ॥ ४० ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।
पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥ ४१ ॥
ततोऽक्षमात्रान् वटकान् पिबेत् तक्रेण तक्रभुक् ।
पाण्डुरोगं जयत्याशु मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ४२ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषमुरुस्तम्भमथापि वा ।
क्रिमिं प्लीहानमानाहं गलरोगञ्च नाशयेत् ।
मण्डूरवज्रनामायं रोगानीकप्रणाशनः ॥४३॥

सिद्धफलं वृद्धवैद्यादृतं—मण्डूरवज्रवटकमाह—पञ्चकोलमिति-पञ्चकोलं=पिप्पल्यादिपञ्चकम् । त्रिपलसम्मिताः=प्रत्येकं पलत्रयम्। मण्डूरं द्विगुणं=सर्वचूर्णाद्विगुणितम् । अष्टगुणे मूत्रे=मण्डूरापेक्षया सर्वचूर्णयुतमण्डूरापेक्षया वा,

निर्वाप्य बहुशो मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते
ग्राहयन्त्यष्टगुणितं गोमूत्रं सर्वचूर्णतः । इति

अन्ये तु—मूत्रमष्टगुणं मण्डुरचूर्णादेवाऽऽहुः । प्रचारस्तु सर्वचूर्णाष्टगुणमूत्रेण—आसन्नपाके च तस्मिन् 'चूर्णानां पाकोनास्तीति' वचनात्तथा चूर्णबहुत्वाच्च चूर्णप्रक्षेपः । तथा च—

'प्रायो न पाकश्चूर्णानां भूरिचूर्णस्य तेन हि ।
आसन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्य पाकमागते' इति वृन्दटीका।

अक्षमात्रानुदुम्बरमानान्, वटकान् तक्रेण, पुनर्नवारसेन कोकिलाक्षरसेन वा पिबेत्। तक्रभुग्=घण्टाद्वयं मर्यादीकृत्य कुडवमात्रयाऽहोरात्रं तक्रमेव पिबेत्। वृन्दस्थेऽस्य पाठे दार्वीमाक्षिकाधिकौ पथ्ये च सात्म्यभोजनम् ॥ ४०—४३ ॥

भाषा—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ, मिरच, देवदार, हरड़, बहेड़ा, आंवला, विडंग, मोथा तीन २ पल। सब चूर्ण से दुगुना मण्डूर। मण्डूर से आठ गुणा गोमूत्र ले पहले गोमूत्र में मण्डूर को पकावे। जब गाढ़ा हो जाये तो पिप्पली आदि का चूर्ण डाले और मिलाकर एक अक्ष बराबर वटक बना के छाछ के साथ खावे। छाछ का ही पथ्य ले। इससे पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, अरोचक, बवासीर, ग्रहणीदोष, ऊरुस्तम्भ, क्रिमिरोग, प्लीहा, आनाह, गलरोग आदि सब रोग नष्ट होते हैं। यह मण्डूरवज्र नामक वटक अनेक रोगों का नाश करने हैं ॥ ४०-४३ ॥

लघ्वानन्दरसः—

पारदं गन्धकं लौहं विषमभ्रकमेव च।
समांशं मरिचञ्चाष्टौ टङ्कणञ्च चतुर्गुणम् ॥ ४४ ॥
भृङ्गराजरसैश्चाम्लवेतसैः सप्त भावनाः।
गुञ्जाद्वयं पर्णखण्डे खादेत् साय निहन्ति च ॥ ४५ ॥
पाण्डुतामरुचिञ्चैव मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरम्।
वातश्लेष्मभवान् रोगान् जयेदचिरसेवनात् ॥ ४६ ॥

वातव्याध्युक्त (श्लो० ३१-३२) लघ्वानन्दाद्गुणपाठोऽधिकोऽत्र लघ्वानन्दरसे ॥ ४४-४६ ॥

भाषा—पारा, गन्धक, लौह, विष, अभ्रक एक २ तोला, मरिच चूर्ण आठ तोला, भुना सुहागा चार तोला कज्जली में मिला भांगरे के रस से, अम्लवेत के रस से सात २ भावना दे दो रत्ति की गोलियां बनालें। इसे पान के पत्ते में रखकर सायंकाल खावें। यह पाण्डु, अरुचि, मदाग्नि, ग्रहणी, ज्वर तथा वातश्लेष्मज रोगों को शीघ्र दूर करता है ॥ ४४-४६ ॥

सम्मोहलौहः—

त्रिकटु त्रिफला वह्निविडङ्गं लौहमभ्रकम्।
एतानि समभागानि घृतेन वटिकां कुरु ॥४७॥
कामलां पाण्डुरोगञ्च हृद्रोगं शोथमेव च।
भगन्दरं कोष्ठक्रिमिं मन्दानलमरोचकम् ॥ ४८ ॥
तान् सर्वान् नाशयेदाशु बलवर्णाग्निवर्धनः।
सम्मोहलौहनामाऽयं पाण्डुरोगे च पूजितः ॥ ४९ ॥

सम्मोहलौहे—वह्नि=श्चित्रकः, लौहस्यात्रैको भागो न सर्व-समानता। मा. २ र. ॥ ४७-४९ ॥

भाषा—सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, वायविडग, लोह, अभ्रक समभाग घी से मर्दन कर गोली बनालें। इससे कामला, पाण्डु, हृद्रोग, शोथ, भगन्दर, पेट के कीड़े, मन्दाग्नि, अरुचि ये सब रोग शीघ्र दूर होते हैं। बल

वर्ण और अग्नि बढ़ती हैं। यह सम्मोहलौह पाण्डुरोग में भी उत्तम है। भा, २ र. ॥ ४७–४६ ॥

त्र्यूषणादिमण्डूरम्—

स्विन्नमष्टगुणे मूत्रे लौहकिट्टं सुशोधितम्।
पाकान्ते त्र्यूषणं वह्नि-वरादार्वीसुरद्रुमान् ॥५०॥
विडङ्गबीजचूर्णञ्च मुस्तं किट्टसमं क्षिपेत्।
प्रातः कर्षं भजेदस्य जीर्णे तक्रौदनं भजेत् ॥ ५१ ॥
हलीमकं पाण्डुरोगमर्शांसि श्वयथुं तथा।
ऊरुस्तम्भं जयेदेतत् कामलां कुम्भकामलाम् ॥५२॥

त्र्यूषणादिमण्डूरे—त्र्यूषणं=त्रिकटु, वरा=त्रिफला, दार्वी=दारुहरिद्रा, सुरद्रुमो=देवदारु सर्वचूर्णसमं शोधितं पुराणं लौहकिट्टमादाय सर्वचूर्णमिलितकिट्टचूर्णस्य चाष्टगुणं गोमूत्रं ग्राह्यम्। प्रथमं गोमूत्रे मन्दाग्निना किट्टपाकं कृत्वा घनीभूते पाके त्र्यूषणादिचूर्णं क्षिप्त्वाऽऽलोड्यावतारयेत्। हलीमकादयो यकृद्विकृतिजा रोगाः अतः सर्वत्र यकृद्विकृतौ प्रचार्यमिदम्। भा, ४ र. ॥ ५०–५२ ॥

भाषा—गोमूत्र ८० तोले में दस तोला मण्डूर डाल पकावे। शेष काल में सोंठ, मिरच, पिप्पली, चीता, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी, देवदारु, विडंग के बीज, मोथा इन सबका चूर्ण दस तोला डाल अच्छी प्रकार मिला वटक बना लें। इसे एक कर्ष भर प्रातःकाल खावें। पचने के बाद छाछ और चावल का भोजन

रोगी करे। यह हलीमक, पाण्डुरोग, अर्शरोग, सूजन, ऊरुस्तम्भ, कामला, कुम्भकामला को दूर करता है। मा. ३ र.। पाण्डु में स्वर्णमाक्षिक योग का त्र्यूषणादि मण्डूर तथा हंस मण्डूर योगरत्नाकर के विशेष हित हैं ॥ ५०-५२ ॥

कामला-चिकित्सा—

पाण्डुरोगोदिता योगा घ्नन्ति ते कामलामपि ॥ ५३॥

यकृद्विकृतिसामान्यात्पाण्डुचिकित्सां कामलायामप्यतिदिशति पाण्डुरोगोदितेति। पाण्डौ कामलायां च शोथे पुनर्नवामण्डूरम् पुनर्नवाष्टककाथो वा लौहयुतः शस्तः। तत्र हृत्स्पन्दने सति चतुर्मुख-लब्धानन्द-चिन्तामणिरसाः शस्ता। कामलायां शोथातिसारौ चेत् स्तः तत्र लौहपर्पटी देया ॥ ५३ ॥

भाषा—जो योग पाण्डुरोग में कहे हैं वे कामला रोग का भी नाश करते हैं ॥ ५३ ॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः।
प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः ॥ ५४ ॥

त्रिफलाया इति—दार्व्या=दारुहरिद्रायास्तस्याश्च चित्राभेदः (चोतरो) विशिष्टमुपकरोति। निम्बस्य कोमलपत्राणां त्वचो वा क्वाथः। माक्षिकं=मधु। शीलितो=रोगस्य गुरुलघुतापेक्षया द्विसप्ताहमारभ्य मासद्वयं यावदारोग्यं वा। अत्र विशेषः केवलोऽपि मूलकपत्रस्वरसः पलमात्रया प्रातः सायं पीतः नातिचिराय कामलां हरति। फलत्रिकादिक्वाथस्तु प्रागुक्त एव ॥ ५४ ॥

इत्यानन्दी टीकायां पाण्डुकामलाचिकित्साधिकारः समाप्तः।

भाषा—त्रिफला का क्वाथ, गिलोय का स्वरस; दारुहल्दी का क्वाथ या नीम का रस प्रातःकाल शहद मिलाकर पीवें तो कामलारोग नष्ट होता है। कामला तथा पाण्डु की चिकित्सा में रोगी को प्रतिदिन यकृद्रेचक औषधियों से कोष्ठ शुद्धि कराते रहना चाहिये॥ ५४॥

इति पाण्डुकामलाचिकित्सा।

अथ रक्त-पित्तचिकित्सा!

अर्केश्वरो रसः—

मृतार्कं सूतवङ्गौ च मृताभ्रञ्च समाक्षिकम्।
अमृतास्वरसैर्भाव्यं त्रिःसप्तकं पुटे पचेत्॥ १॥
वासाक्षीरविदारीभ्यां चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः।
भक्षणाद्धि निहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम्॥ २॥

क्रमप्राप्तां रक्तपित्तचिकित्सामाह-अर्केश्वरे-मृतार्कमिति-मृतार्कं=निरुत्थं ताम्रभस्म, सूतवङ्गौ=रससिन्दूरं वङ्गभस्म च, समाक्षिकं=स्वर्णमाक्षिकभस्मयुतम्, अमृता=गुडूची, तस्याः स्वरसैः=रार्द्रां गुडूचीमादाय निष्कासितेन रसेन—त्रिःसप्तकं=एकविंशतिवारं भाव्यं तत गुडूचीपत्रपुटे कृत्वा पुटे=पुटपाकविधिना पचेत्। मा. ४ र.। वासा-क्षीरविदारी=भूमिकूष्माण्डः, एतयोर्हिमेन मधुमिश्रितेन देयः, सुदारुणं=कठिनम्, आशु=शीघ्रम, निहन्ति=नाशयति। ऊर्ध्वगत-रक्तपित्तेऽयं विशेषतः प्रयुज्यते विकृतायां च यकृत्क्रियायां तज्जनिते ज्वरे केवलगुडूचीस्वरसेन देयः॥ १-२॥

भाषा—ताम्र, रससिन्दूर, वंग, अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक इनके भस्म समभाग ले। सब को मिला गिलोय के स्वरस से भावना दे इक्कीस वार पुट दें। फिर इसे निकाल कर पीस रखें। इस अर्केश्वर रस की चार रत्ति की मात्रा बांसा, क्षीरविदारीकन्द के स्वरस के साथ दें तो शीघ्र ही भयंकर रक्तपित्त भी दूर होता है। मा. २ र.॥ १-२॥

सुधानिधिरसः—

सूतं गन्धं माक्षिकञ्चैव लौहं सर्वं घृष्ट्वा त्रैफलेनोदकेन।
लौहे पात्रे गोमयैः पाचयित्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रशान्त्यै॥३॥

सुधानिधौ—त्रैफलेनोदकेन=त्रिफलाहिमेन लोहपात्रे कज्जलीं विधाय, माक्षिकं लौहं च दत्वा त्रिफलोदकेन विमर्द्य ततो गोमयाग्निना शनैः पचेत्। मा. १ र.। लाक्षोदकानुपानेनोर्ध्वगतरक्तपित्त-आमाशयादिभ्यश्च प्रवृत्ते पुनः पुनः प्रदेयः। अत्र विशेषः—केवलोऽपि उदुम्बरशलाटुरसः पलमात्रया प्रतिदिनं त्रिःपीतः बहुभिर्योगैरसाधितं रक्तं रुणद्धि॥ ३॥

भाषा—पारा, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक, लोह समभाग कज्जली में मिला लोहे के पात्र में इस चूर्ण को और त्रिफला के क्वाथ को डालकर उपलों की आग से पकावे। पकने पर गोली बना कर रक्खे। इसे रात्रि को दे तो रक्तपित्त रोग शान्त होता है। मात्रा १ र.॥ ३॥

आमलाद्यं लौहम्—

आमलापिप्लीचूर्णं तुल्यया सितया सह।
रक्तपित्तहरं लौहं योगराजमिदं स्मृतम्॥ ४॥

वृष्याग्निदीपनं बल्यमम्लपित्तविनाशनम् ।
पित्तोत्थानपि वातोत्थान् निहन्ति विविधान् गदान् ॥५॥

आमलाद्यलौहे—आमलकीपिप्पलीचूर्णसमं लौहभस्म सर्वसमाः-सिता । योगराजमिति—विशेषगुणकरत्वात् योगानां रक्तपित्ताम्लपित्तहरयोगानां राजा । राजाहः सखिभ्यष्टच् । ५ । ४ । ६१ । इति टिलोपः । ऊर्ध्वगरक्तपित्ते, अम्लशूले महाम्लपित्ते च आमलकी-रसेन प्रयोज्यम् । मा० २ र० ॥ ४-५ ॥

भाषा—आमला, पिप्पली, मिश्री समभाग सबके समान लौह मिला पीसकर रखे । यह आमलाद्य लौह रक्तपित्त के नाशकर योगों का राजा है । यह वृष्य, अग्निदीपक, बलदायक, अम्ल पित्त नाशक है; पित्तज तथा वातज अनेक रोगों को दूर करता है । मा. २ र. ॥ ४–५ ॥

शतमूल्याद्यं लौहम्—

शतमूली सिताधान्य–नागकेशरचन्दनैः ।
त्रिकत्रयतिलैर्युक्तं लौहं सर्वगदापहम् ।
तृष्णादाहज्वरच्छर्दि–रक्तपित्तविनाशनम् ॥ ६ ॥

शतमूल्याद्यलौहे—शतमूली= शतावरी, सिता= शर्करा, चन्दनमत्र=श्वेतं ग्राह्यं तस्य रक्तपित्तहरत्वात्, तथा च—'तृष्णा-पित्तास्रदाहजित्' इति वै. श. सि. । रक्तचन्दनमित्यन्ये । त्रिक-त्रयम् (पाण्डौ १७) तिलं=कृष्णतिलम्, सर्वसमं लौहभस्म जलेन मर्दयेत् । मा. २ र. । सर्वगदापहमिति—ऊर्ध्वगे रक्ते यक्ष्मणि च

कफेन सह पृथक् वा मुखनासाभ्यां वमनेन सह वा रक्तागमे दूर्वा-स्वरसमधुना प्रातः सायं प्रदेयम्। अल्पमात्रया पुनः पुनर्वा। अधोगतरक्तपित्ते मलेन मूत्रेण वा सह रक्तागमने आन्त्रिकसन्निपाते च उदुम्बररसमध्वनुपानेन। पाण्डौ कामलायां यकृत्प्लीहवृद्धौ च प्रातः सायं यथायोग्यानुपानेन योज्यम्, सिद्धफलोऽयं योगः ॥६॥

भाषा—शतावर, मिश्री, धनियां, नागकेशर, लालचन्दन, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, मोथा, विडंग, चीता, काले तिल समभाग सबके समान लौह मिला लें। यह शतमूल्याद्य लौह सर्वरोग-नाशक है। तृष्णा, दाह, ज्वर, वमन, रक्तपित्त इन्हें नाश करता है। यह रक्तपित्त की सिद्ध औषधि है। मा. १-२ र.। अनुपान अडूसे का रस और मधु है॥ ६॥

अभ्रप्रयोगः—

रक्तपित्ते पिबेत् व्योमसहितं पर्पटीरसम् ॥ ७॥

वासाद्राक्षाऽभयानाञ्च क्वाथं वा शर्करान्वितम्।
योगवाहिरसान् सर्वान् रक्तपित्ते प्रयोजयेत् ॥ ८॥

अभ्रयोगे-व्योम=अभ्रम्। अभ्रभस्म पर्पटस्वरसेन सेव्य इति जी. टी.। अन्ये तु-रक्तपित्ती पिबेद्बोलसहितं पर्पटीरसम्। वासाद्राक्षाभयाक्वाथं पिबेत् पश्चात् सशर्करम्। (रसराजसुन्दरः) इति वाक्येन साम्यान्मूले व्योमस्थाने बोलमिति पाठं मत्वा रसपर्पटीमाहुः। बोलं=रक्तबोलम् दम्मुल अखवायन) ॥ ७॥

वासाद्राक्षादौ—कपिञ्जलाधिकरणन्यायेन वासादीनां प्रत्येकमपि क्वाथः। शर्करा=सिता, तया युतो रक्तपित्ते देयः। योग-

वाहिरसानिति-रक्तपित्तकुलकण्डन-(शुद्धपारदवलिप्रवालकमित्यादिः र. यो. सा.) आदिरसान् ॥ ८ ॥

भाषा-रसपर्पटी में अभ्रक मिला रोगी रक्तपित्त में उचित अनुपान से पीवे। अथवा बांसा, मुनक्का, हरड़ इनके क्वाथ में चीनी मिला पीने को दें तो रक्तपित्त दूर होता है। रक्तपित्त में सभी योगवाही रस दे सकते हैं ॥ ७-८ ॥

रक्तपित्तान्तको रसः

मृताभ्रं मुण्डतीक्ष्णञ्च माक्षिकं रसतालकम् ।
गन्धकञ्च भवेत् तुल्यं यष्टिद्राक्षाऽमृताद्रवैः ॥ ९ ॥
दिनैकं मर्दयेत् खल्ले सिताक्षौद्रसमन्वितम् ।
माषमात्रं निहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
ज्वरं दाहं क्षतक्षीणं तृष्णां शोषमरोचकम् ॥१०॥

रक्तपित्तान्तके—मुण्डतीक्ष्ण=मुभयोर्भस्म, रसः=पारदः तालकं=हरितालम, रसतालकं—सूतगन्धकतालरक्तशङ्खीनां बालुकायन्त्रे यामचतुष्टयं पाकान्निष्पन्नं परिभाषितं । यष्टि=मधुयष्टिः, द्राक्षा=स्वल्पा महती वा, एतासां द्रावैः=स्वरसैः. दिनैकं प्रत्येकं स्वरसेनैकं दिनं पृथङ्मर्दयेत् । माषमात्रमष्टरक्तिकम् । केचित्तु—माषशब्देनात्र शिम्बीधान्यं (उड़द इति) तन्मात्रं रक्तिकामितमित्याहुः । सुदारुणे रक्तपित्ते क्षये मुखेन रक्तनिर्गमे, अन्यत्रापि ऊर्ध्वाधःप्रवृत्ते रक्ते वासास्वरसमधुना देयः । रक्तपित्तोपद्रवाः—ज्वरदाहतृष्णादयोऽपि शाम्यन्ति । आन्त्रिकसन्निपाते मलेन सह रक्तप्रवृत्तौ च योज्यः ॥ ९—१० ॥

भाषा—अभ्रक, मुण्डलौह, तीक्ष्णलौह, स्वर्णमाक्षिक, पारा, हड़ताल, गन्धक समभाग कज्जली में मिला मुलहठी, मुनक्का, गिलोय के क्वाथ वा रस से एक २ दिन मर्दन करें। इसे एक माषा मिश्री और शहद मिला रोगी खावे तो यह रस घोर रक्तपित्त को शान्त करता है तथा ज्वर, दाह, क्षतक्षीण, तृष्णा, शोषरोग, अरुचि इन्हें नाश करता है ॥ ९-१० ॥

रसामृतरसः—

रसस्य द्विगुणं गन्धं माक्षिकञ्च शिलाजतु।
गुडूची चन्दनं द्राक्षा मधुपुष्पञ्च धान्यकम् ॥ ११ ॥
कुटजस्य त्वचं बीजं धातकी निम्बपत्रकम्।
यष्टिमधुसमायुक्तं मधुशर्करयाऽन्वितम् ॥ १२ ॥
विधिना मर्दयित्वा तु कर्षमात्रन्तु भक्षयेत्।
धारोष्णपयसा युक्तं प्रातरेव समुत्थितः ॥ १३ ॥
पित्तं तथाऽम्लपित्तञ्च रक्तपित्तं विशेषतः।
निहन्ति सर्वदोषञ्च ज्वरं सर्वं न संशयः।
रसामृतरसो नाम गहनानन्दभाषितः ॥ १४ ॥

रसामृते—रसस्यैको भागः, गन्धादिशर्करान्त-द्रव्याणां प्रत्येकं भागद्वयम्। चन्दनं=श्वेतचन्दनं रक्तचन्दनमपि न विरुद्धं तस्यापि रक्तपित्तहरत्वात्। मधुपुष्पं=महुवा फूल इति, कुटजस्य बीजं=इन्द्रयवाः, कर्षमात्रमिति-उदुम्बरप्रमाणम्। वस्तुतस्तु माषकादारभ्य

अर्धतोलकं यावद्धारोष्णपयसा देयः । मधुशर्करयेति—एकवचनान्ताद्यदेकवर्षपुराणं मधु शर्करारूपतामापद्यते तदेव-मधुशर्कराशब्देन ग्राह्यम् । यथा—शर्करान्या मधुभवा माधवी मधुशर्करा इति ध. नि. ॥ ११–१४ ॥

भाषा—पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, स्वर्णमाक्षिक, शिलाजीत, गिलोय, लालचन्दन, मुनक्का, महुआ के फूल, धनियां, कुटज की छाल, इन्द्रजौ, धाय के फूल, नीम के पत्ते, मुलहठी प्रत्येक का चूर्ण एक २ तोला कज्जली में मिला पुराने मधु से घोट प्रातःकाल कर्ष भर खाकर ऊपर से धारोष्ण दूध पीवें । यह पित्तरोग, अम्लपित्त विशेषतः रक्तपित्त तथा सब दोषों से उत्पन्न सम्पूर्ण ज्वरों को नष्ट करता है—इसमें संशय नहीं । यह रसामृत रस गहनानन्द ने कहा है ॥ ११–१४ ॥

खण्डकूष्माण्डकः—

कूष्माण्डकात् पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
पचेत् तप्ते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढ़े ॥ १५ ॥
यदा मधुनिभः पाको न्यसेत् खण्डशतं तदा ।
पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च ॥ १६ ॥
त्वगेलापत्रमरिच—धान्यकानां पलार्धकम् ।
न्यसेत् चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या सङ्घट्टयेन् मुहुः ॥ १७ ॥
तत्पक्वं स्थापयेद् भाण्डे दत्वा क्षौद्रं घृतार्धकम् ।
तद्यथाऽग्निबलं खादेद् रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ १८ ॥

खण्डकूष्माण्डके–निष्कुलीकृतमिति–निस्त्वगस्थिकृतं कूष्माण्डं शलाकया कृतच्छिद्रं किंचिज्जलं दत्त्वोत्स्वेद्य क्षौमे निवेश्य पीडयेत्। आतपे मनाक्संशोष्य पिष्ट्वा च पलशतं गृहीत्वा विपक्तव्यं पाके खण्डशतं देयमिति कर्मभागः। पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले इति-कणाशुण्ठ्योः प्रत्येकं पलद्वयम्। जीरकस्य च द्वे पले। तन्त्रान्तर-सम्मतं चैतत्। तद्यथा–द्विपलांशैः कणा शुण्ठी–जीरकैरवचूर्णितै-रिति। वैद्यप्रसारकेऽप्येतादृशमेव विवृतम्। व्यवहारोऽपीत्थमेव। चक्रस्तु–पारणसम्बन्धाद्धपलत्वमाह—त्वगादीनां पलार्धं प्रत्येकम्। घृतार्धकमिति–प्रस्थार्धमानम। पाकलक्षणं तस्य–'युक्तसर्पिषि कूष्माण्डे पाको गन्धेन मुद्रया' इति। चक्रेणाप्युक्तम्–अत्रापि मुद्रया पाको निस्त्वचं निष्कुलीकृतमिति अन्यत्र खण्डकूष्माण्डात्संमतः सकलो रसः। तन्त्रान्तरे–कूष्माण्डपलशताद्यावान्रसः पीडनेन संभवति तावता पाक उक्तः। तेनेहापि तथैवाऽऽकूतम्। प्रचारश्चे-त्थमेव। अत्र तन्त्रान्तरम—

वृद्धं पुरातनं चापि कूष्माण्डं कठिनं दृढम्।
त्वक्साराभ्यां विनिर्मुक्तमन्तर्बीजैर्विवर्जितम्।
स्विन्नं सुपिष्टं दृषदि वस्त्रेण च प्रपीडितम्।
विशुष्कमातपे किञ्चिद्ग्राह्यं तत्तुलयाधृतम्।
उदुम्बरे कटाहे च पचेत्प्रस्थेन सर्पिषः।
कृत्वा क्षौद्रनिभं तस्मिन्क्षिपेत्खण्डशतं भिषक्।
कूष्माण्डपीडनात्तोयं यत्तेन विपचेत्पुनः॥
सुशीतपाके निष्पन्ने सर्पिषाऽर्धं क्षिपेन्मधु॥

कणापलद्वयं चापि जीरकं च सनागरम् ॥
त्रिसुगन्धि सधान्याकं मरिचं शुक्ति मानिकम् ॥ इत्यादि
अत्र वृन्दटीकैवोद्धृता ।

मात्रा अर्धतोलकादारभ्य क्रमेण छागदुग्धानुपानेन वर्धनीया । अत्र गुणपाठोऽधिकः ।

कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः ।
वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसादनम् ।
उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरबोधनम् ।

अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्माण्डकरसायनमिति वृन्दे । वातपित्तप्रकृतौ मुखनासा गुदमेढ्रतो रक्तनिर्गमे रक्तार्शसि च विज्वरे प्रदेयः ॥१५-१८॥

भाषा—पके हुए पेठे के छिलके छील डाले और बीज निकाल दे । अब उसे एक पात्र में कुछ जल डालकर आग पर रख कुछ देर स्वेदन करे । शीतल होने पर पीसकर कपड़े में से रस निचोड़ ले और निकले रस को सुरक्षित रखे । गूदे को कुछ देर धूप में सुखा कर सौ पल ले । इसमें एक प्रस्थ घी डाल तांबे के पात्र में मन्द-मन्द पकावे । जब पकते २ शहद की तरह लाल रङ्ग का पाक हो जाय तो उसमें वह सुरक्षित रस और एक सौ पल खांड डाल पुनः पाक करे पाकशेष काल में पिप्पली, सोंठ, श्वेत जीरा प्रत्येक का चूर्ण दो २ पल, दारचीनी, इलायची, तेजपात, मिरच, धनियां प्रत्येक का चूर्ण आधा पल डाले और कड़छी से भली प्रकार मिलाकर उतार ले । ठण्डा होने पर घी से आधा

शहद मिलावे। इसे खण्डकूष्माण्डक कहते हैं। अग्नि बल देख कर रक्तपित्त और क्षतक्षय के रोगी को दें। मा. ½-१ तोला ॥ १५-१८ ॥

शर्कराद्यं लौहम्—

शर्करातिलसंयुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चाम्लपित्तहरं परम् ॥ १६ ॥

शर्कराद्यलौहे—तिलं=कृष्णतिलम्, त्रिकत्रयम् (पाण्डौ १७) अयो=लौहभस्म तच्च सर्वचूर्णसमम्। मा. १ र.। वातपित्तप्रधान-क्षये कासे सश्लेष्मरक्तनिर्गमे दूर्वारसमधुना। अधोगतरक्तपित्ते आन्त्रिकसन्निपाते च मलेन सह रक्तागमे, एवं मूत्रणात् प्राक् मध्ये पश्चाद्वा रक्तागमे रक्तार्शसि च पक्वोदुम्बररसमधुना तृणपञ्च-मूलक्वाथेन काकजङ्घारसेन वा देयम् ॥१६॥

भाषा-खांड, काले तिल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, विडंग, मोथा, चीता समभाग सबके समान लौह मिलावें। इससे रक्तपित्त और अम्लपित्त रोग शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। मा. २ र.। १६ ॥

समशर्करलौहम्—

लौहाच्चतुर्गुणं क्षीरमाज्यं द्विगुणमुत्तमम्।
चूर्णं पादन्तु वैडङ्गं दद्यात् मधुसिते समे ॥ २० ॥
ताम्रपात्रे दृढे पक्त्वा स्थापयेद् घृतभाजने।
माषकादिक्रमेणैव भक्षयेद् विधिपूर्वकम् ॥ २१ ॥

अनुपानं प्रयुञ्जीत नारिकेलोदकादिकम् ।
रक्तपित्तं जयेत् तीव्रमम्लपित्तं क्षतक्षयम् ।
प्रहर्षकान्तिजननमायुष्यमुत्तमोत्तमम् ॥ २२ ॥

समशर्करे—लौहभस्म १ भा., गव्यदुग्धं ४ भा., अत्रवृद्धवैद्या छागीदुग्धमामनन्ति । गव्यघृतं २ भा., वैडङ्गचूर्णम्, पादं १|४ भा. मधु १ भा., सिता १ भा., मधुसिते चेति-प्रत्येकं लौहसमामिति बालबोधिनी । ताम्रपात्रे मन्दाग्निना पाकं कृत्वा मुद्रया पाके जाते विडङ्गचूर्णं दत्वाऽऽलोड्य शीते मधु दत्वा माषकादिक्रमेण=प्रत्यहं माषकवृद्ध्या सेवनीयम् । कल्पोऽयम् । अनुपानञ्च नारिकेलोदकम् । अम्लपित्तक्षतक्षयादौ=आदिपदाद्रक्तपित्ते दूर्वानुपानेन सति जीर्णे रक्तपित्ते रक्तवमने, रक्तस्रावे च मधुतण्डुलोदकेन अम्लपित्त आमलकीरसेन ॥२० २२॥

भाषा-लौह ४ तोला, गौ का दूध १६ तोला, गौ का घी ८ तोला सबको तांबे के पात्र में डालकर पकावें। गाढ़ा होने पर विडंग का चूर्ण एक तोला डाल दें। अच्छी प्रकार मिलाकर उतार लें। ठंडा होने पर शहद ४ तोला और मिश्री ४ तोला मिला घी के चिकने पात्र में रखें। इस समशर्कर लौह को एक माषा से आरम्भ कर क्रमशः प्रतिदिन एक २ माषा बढ़ा सेवन करें। अनुपान में नारियल का जल आदि पीवें। यह तीव्र रक्तपित्त, अम्लपित्त तथा क्षतक्षय रोग को दूर करता है, प्रसन्नता देता है, कान्ति तथा आयु को बढ़ाता है ॥ २०-२२ ॥

कपर्दको रसः—

मृतं वा मूर्च्छितं सूतं कार्पासकुसुमद्रवैः ।
मर्दयेद् दिनमेकन्तु तेन पूर्य्या वराटिका ॥ २३ ॥
निरुध्य चान्धमूषायां भाण्डे रुध्वा पुटे पचेत् ।
उद्धृत्य चूर्णयेत् श्लक्ष्णं मरिचैर्द्विगुणैः सह ॥२४॥
गुञ्जामात्रं घृतेनैव भक्षयेत् प्रातरुत्थितः ।
उदुम्बरं घृतश्चैव ह्यनुपानं प्रयोजयेत् ।

कपर्दकरसो नाम्ना रक्तपित्तविनाशनः ॥ २५ ॥

कपर्दके—मृतं=रससिन्दूरादि, मूर्च्छितम् (१–६) कज्जली-पर्पट्यादि; कार्पासपुष्परसेनैकं दिनं मर्दयित्वा शुष्कचूर्णेन वराटिका पूरयित्वा अजादुग्धपिष्टटङ्कणेन मुखं निरुध्य—अन्धमूषायां=वज्रमूषायाम् (१–६) पुटे पचेदिति—तादृशः पुटपाको विधेयो यथा सूतं नापगच्छेत ततः कपर्दसहितस्य द्विगुणं मरिचचूर्णं दत्वा रक्षयेत् । उदुम्बरं=पक्वोदुम्बरम् । क्षयेऽप्ययं प्रदेयः ॥२३–२५॥

भाषा—रससिन्दूर वा कज्जली को कपास के फूलों के रस में एक दिन घोटे । फिर इसे पीली कौड़ियों में भर उन्हें अन्धमूषा में रख मूषा को एक हांडी में रख मुँह बन्द करके पुट दे । स्वांग शीतल होने पर निकाल कौड़ियों समेत पीस ले । अब जितना यह चूर्ण हो उससे दुगुना काली मिरचों का चूर्ण मिला लें । इस कपर्दक रस को एक रत्ति ले घी में मिला प्रातःकाल सेवन करें

और अनुपान में गूलर और घी खावें तो रक्तपित्त नाश होता है। २३-२५ ॥

नीलोत्पलसिताक्षौद्र-संयुक्तं पद्मकेशरम् ।
तण्डुलोदकपानेन रक्तपित्तं नियच्छति ॥ २६ ॥

नीलोत्पलादिचूर्णं—नीलोत्पलं=नीलकमलं=नीलोफर इति, पद्मकेशरं=रक्तोत्पलकेशरं । तच्च माषकमितम्, नीलोत्पलमर्ध-तोलकम्, सिता क्षौद्रे तोलकमिते। तण्डुलकोदकं पलमिति ज्ञेयम् शीतकषायकल्पेन तण्डुलोदककल्पना तस्य ज्येष्ठाम्बुसंज्ञा न. प.। रक्तपित्तौषधीनामनुपानरूपेणापीदं प्रचरति ॥२६॥

॥ इत्यानन्दीटीकायां रक्तपित्ताधिकारः ॥

भाषा—नीलोत्पल, मिश्री, शहद इन से मिला कर कमलकेशर खाया जाये और ऊपर से तण्डुलोदक पिया जाये तो रक्तपित्त रोग शान्त होता है ॥ २६ ॥

इति रक्तपित्तचिकित्सा ।

अथ यक्ष्म-चिकित्सा ।

रास्नादिलौहम्—

रास्नाऽश्वगन्धाकर्पूर-भेकपर्णीशिलाह्वयैः ।
त्रिकत्रयसमायुक्तैः लौहं यक्ष्मान्तकृन्मतम् ॥ १ ॥
सर्वोपद्रवसंयुक्तमपि वैद्यविवर्जितम् ।
हन्ति कासं स्वराघातं राजयक्ष्मक्षतक्षयम् ।

बलवर्णाग्निपुष्टीनां वर्धनं दोषनाशनम् ॥ २ ॥

१-क्षयपरीक्षा—(१) प्रत्यहं सायं ज्वरभावः। (२) कासः कफश्च शुक्लवर्णः प्रातर्विशेषतया दृश्यते। (३) रक्तवमनं कफेन सह रक्तागमो वा शरीरभारहानिः। (४) निद्राणस्य रात्रौ स्वेदोद्गमः। (५) कालान्तरे च क्षयी मुखदर्शनादेवानुमीयते। (६) कफे चाणुवीक्षणेन क्षयबीज[T. B.]प्राप्तिः इदञ्च निश्चितं लक्षणम्। (७) वक्षःपरीक्षया श्वासेन सह न प्रश्वासेन घर्षणशब्दो कफस्फुटनशब्दो वा। (८) वक्षः प्रतिकृतौ (XRAY) विकृतचिह्नानि। (९) नाड़ीसंख्या वृद्धिश्चञ्चला च नाड़ी।

२-इदमत्रावधेयम। (१) क्षयी नगराद्बहिः सततं रजोधूमादिरहितं नात्युष्णशीतवातसेवनं कुर्यात्। (२) किञ्चित् कालं शिरो विहाय नातिपीडाकरमातपं सेवेत। (३) विश्रमो दत्तावधानतया सति सम्भवे मलत्यागोऽपि शयितस्यैव। (४) अस्थिक्षये च यदङ्गं तत् तस्य सततं विश्रमो मासत्रयम्। (५) लघु पुष्टिकरं पथ्यम्। (६) मनःप्रसादो ब्रह्मचर्यं रागद्रोहोद्रेकभयक्रोधचायपानमदादिभ्य आत्मरक्षा नियमवर्तिता च।

रास्नादिलौहे—रास्ना=कुलिञ्जन इति शुण्ठीवत्कन्दः सुगन्धिद्रव्यं ग्राह्यम्, भेकपर्णी=मण्डूकपर्णी-तदभावे ब्राह्मी। शिलाह्वयं शिलाजतु····अथ क्षये गिरिजतु····यो. र.। इति यक्ष्मनाशे शिलाजतुनः प्राथम्येन परिगणनात्, शिलाह्वयं वा भिषगप्रमत्तः। च. चि. अ. १.। इत्यत्र शिलाह्वयपदेन शिलाजतुनः स्पष्टप्रतिपा-

दनान्न मनःशिला, लौहं=सर्वचूर्णसमम् । मा. २ र. । स्वराघातं= स्वरक्षयम्, स्वरयन्त्रगते-इदं बोध्यम् । वासकपत्ररसहरितदूर्वा-रसमधुना वा योज्यम् । जीर्णक्षये रक्तपूयादियुतकासे कार्श्ये शोथातिसारपाण्ड्वादिष्वभ्यर्हितमिदम् । बलवर्णाग्निपुष्टीनां= बलस्य वर्णस्याऽग्नेः पुष्ट्या शरीरभारस्य च वर्धनम् व्यवायशोषे रोगान्तदौर्बल्ये च देयम् ॥ १–२ ॥

भाषा–कुलिञ्जन, असगन्ध, कपूर, मण्डूकपर्णी, शिलाजीत, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, विडंग, मोथा, चीता समभाग सबके समान लौहभस्म मिलाकर घोटे । इस रास्नादि लौह के सेवन से यक्ष्मा नाश होता है । सब उपद्रवों से युक्त और वैद्यों से वर्जित खांसी, स्वरभङ्ग, राजयक्ष्मा तथा क्षतक्षय को भी यह दूर करता है । बल, वर्ण, अग्नि, पुष्टि को बढ़ाता है, दोषों का नाशक है ॥ १–२ ॥

राजमृगाङ्को रसः—

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं शिलागन्धकतालकम् ॥ ३ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
वराटिका तेन पूर्या चाजाक्षीरेण टङ्कणम् ॥ ४ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुध्वा मृद्भाण्डे तां निरोधयेत् ।
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत् स्वाङ्गशीतलम् ॥ ५ ॥
दशपिप्पलिकैः क्षौद्रैर्मरिचैर्वा घृतान्वितैः ।

गुञ्जाचतुष्टयश्चास्य क्षयरोगप्रशान्तये ॥ ६ ॥
सघृतैर्दापयेद्वाऽथ वातश्लेष्मभवे क्षये ।
रसो राजमृगाङ्कोऽयं नानारोगनिसूदनः ॥ ७ ॥

यक्ष्मणि प्रथिते-राजमृगाङ्के—रसभस्म=रससिन्दूरम्, मृततास्रस्य=ताम्रभस्मनः, शिला=मनःशिला, प्रतिभागद्वयं=शिलादीनां प्रत्येकं द्वौ भागौ, वराटिका=कपर्दिका-(अति. १५) मृद्भाण्डे=बहिर्मृत्कर्पटवेष्टिते तां वराटिकां कृत्वा निरोधयेत्। मृद्भाण्डस्य मुखे सन्धिबन्धनं कृत्वा शुष्कं सत, गजपुटे (उत्र. ३१२) षोडशाङ्गुलगर्त्ते पचेदिति सम्प्रदाय इति आढमल्लः । यथा-पारदगन्धादीनामुड्डयनं मानहानिश्च न भवेत्तथा यतनीयम्। चूर्णयेत्=सकपर्दमित्यर्थः। मरिचैः, ऊनत्रिंशत्संख्याकैः, घृतान्वितैः=घृतं नवनीतस्योपलक्षणम्। यक्ष्मणि प्रमेह-श्वास-कास-स्वरभङ्ग-शिरःपार्श्व-सर्वाङ्ग-शूलादिषु, अस्योपयोगो भवति। क्षये दृष्टफलश्चायं दीर्घकालसेवनेन। ताम्रस्थाने ताराभ्रेति पाठान्तरे तत्राऽभ्रन्तु क्षयघ्नत्वादुचितमेव ॥३-७॥

भाषा-रससिन्दूर तीन भाग, स्वर्ण एक भाग, ताम्र एक भाग, मनसिल, गन्धक, हड़ताल प्रत्येक द्रव्य दो भाग चूर्ण कर कौड़ियों में भर बकरी के दूध से सुहागे को पीस उससे कौड़ियों के मुख को बन्द कर दें। उन कौड़ियों को एक हांडी में बन्द करके सन्धि लेप कर सुखा गजपुट में फूंक दें। स्वांगशीतल होने पर निकाल कौड़ी समेत चूर्ण कर रखें। इस रस की चार रत्ति को

मात्रा दस पिप्पल का चूर्ण और शहद मिलाकर दें। अथवा काली मिरच और घी मिला कर दें तो क्षयरोग शान्त होता है। यदि वातश्लेष्मज क्षय हो तो इसे केवल घी से दें। यह राजमृगाङ्क रस नाना रोगों को शान्त करता है ॥ ३-७ ॥

मृगाङ्को रसः—

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत्।
गन्धकञ्च समं तेन रसतुल्यन्तु टङ्कणम् ॥ ८ ॥
तत्सर्वं गोलकं कृत्वा काञ्जिकेन च पेषयेत्।
भाण्डे लवणपूर्णेऽथ पचेद् यामचतुष्टयम् ॥ ९ ॥
मृगाङ्कसंज्ञको ज्ञेयो राजयक्ष्मानिकृन्तनः।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य मरिचैः सह भक्षयेत् ॥ १० ॥
पिप्पलीदशकैर्वापि मधुना सह लेहयेत्।
पथ्यन्तु लघुभिर्मांसैः प्रयोगेऽस्मिन् प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥
व्यञ्जनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारै रहिङ्गुभिः।
एलाऽजाजीमरीचैस्तु संस्कृतैरविदाहिभिः ॥ १२ ॥
वृन्ताकबिल्वतैलानि कारवेल्लञ्च वर्जयेत्।
स्त्रियं परिहरेद् दूरं कोपश्चापि विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

मृगाङ्के-रसेन=पारदेन, हेम=सुवर्णभस्म, मौक्तिकं=मुक्ता, गन्धकं च समं=गन्धकस्यैको भागः, रसतुल्यन्तु टङ्कणं=सौभाग्यस्यैको भागः, काञ्जिकेन=कुल्माषधान्यमण्डादिसाधितं काञ्जिकं

विदुः (शा. ध. अ. १० श्लो. १२) गोलकं कृत्वा शुष्कं मृन्मूषासम्पुटे निधाय सन्धिरोधं च कृत्वा लवणपूर्णे भाण्ड इति स्थालिकामर्धां लवणेन पूरयित्वा सम्पुटं तत्र निधाय शेषं लवणेन पुनः पूरयित्वा यामचतुष्टय=मेकं दिनं पचेत्। मरिचैरिति=अष्टभिरेकोनत्रिंशद्भिर्वा मधुना लेहयेत्। लघुभिर्मांसै=र्लावादिमांसैः। प्रमेहे यक्ष्मणि, उरःक्षते कांस्यक्रोडे चाल्पज्वरे हृत्पार्श्वपीडायां रक्तयुतश्लेष्मणि कृशे च रोगिणि छागीदुग्धानुपानेन स्वल्पमरिचचूर्णेन रक्तिकामात्रया प्रयोज्यः॥ ८-१३॥

भाषा—पारा एक तोला, स्वर्ण एक तोला, मोतीभस्म दो तोला, गन्धक दो तोला, भुना सुहागा एक तोला कज्जली में अन्य वस्तु मिला कांजी से पीस एक मूषा में रख सन्धि बन्द कर एक हांडी में नमक नीचे ऊपर भर बीच में मूषा को रख बारह घण्टे की आंच दे। स्वांगशीतल होने पर निकाल रखे। यह राजयक्ष्मा का नाशक मृगाङ्क रस है। इस की चार रत्ति की मात्रा मिरचों के चूर्ण और मधु के साथ अथवा दस पिप्पल का चूर्ण और मधु में मिलाकर खावे। पथ्य में लघु मांस तीतर आदि का, घी में पकी हुई नाना प्रकार की भाजियें, जिनमें अधिक क्षार न हो, हींग न डाली हो, जो इलायची, जीरा तथा काली मिरच आदि अविदाही द्रव्यों से संस्कृत हों देनी चाहियें। रोगी बैंगन, बेल, तेल, करेला न खावे। स्त्री से दूर रहे तथा क्रोध को त्याग दे। दमे में भी इससे लाभ होता है। यह यक्ष्मा के ज्वर को शीघ्र कम करता है॥ ८-१३॥

रत्नगर्भपोट्टलीरसः—

रसं वज्रं हेम तारं नागं लौहञ्च ताम्रकम् ।
तुल्यांशं मरिचं[1] देयं मुक्ताविद्रुममाक्षिकम् ॥१४॥
शङ्खं तुत्थञ्च तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः ।
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्ण्या वराटिका ॥ १५ ॥
टङ्कणं रविदुग्धेन मुखं लिप्त्वा निरोधयेत् ।
मृद्भाण्डे तां निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥१६॥
आदाय चूर्णयेत् सर्वं निर्गुण्ड्या सप्त भावयेत् ।
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ॥ १७ ॥
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ।
क्षयरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥१८॥
योजयेत् पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा ।
महारोगाष्टके कासे श्वासे चैवातिसारके ।
पोट्टलीरत्नगर्भोऽयं सर्वरोगकुलान्तकः ॥ १९ ॥

र. इ. चि. तु—नानाधान्यैर्यथाप्राप्तैस्तुषवर्ज्यैर्जलान्वितैः ।
मृद्भाण्डं पूरितं रक्षेद्यावदम्लत्वमाप्नुयात् ॥
तन्मध्ये घनवाङ्मुण्डी विष्णुक्रान्ता पुनर्नवा ।
मीनाक्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥

---

[1]—मारितं पाठः ।

त्रिफला गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकः ।
समूलकाण्डं पिष्ट्वा तु यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥
पूर्वाम्लभाण्डमध्ये तु धान्याम्लकमिदं भवेत् ।
स्वेदनादिषु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत् ॥
अत्यम्लमारनालं वा तदभावे प्रयोजयेत् ।

रत्नगर्भपोट्टल्याम्—रसं=रससिन्दूरम्, वज्रं=हीरकभस्म, तदभावे वैक्रान्तं देयम्, हेम=स्वर्णभस्म तारं=रौप्यभस्म, नागं=शीशभस्म, अत्र नागस्थाने गन्धमिति पाठः। स च युक्तस्तुल्यांशं मरिचं=मरिचचूर्णस्यैको भागः। विद्रुमं=प्रवालम्, तुत्थं=तुत्थभस्म, सर्वे समानभागाः। सप्ताहं रक्तचित्रकमूलत्वक् क्वाथेन भावयित्वा तेन चूर्णेन पीतवराटिका आपूर्य रविदुग्धार्द्रीकृतटङ्कणचूर्णेन तासां मुखं निरुध्य गजपुटे पूर्ववत् पचेत् (ज्वर ३१२)। ततः सकपर्दं विचूर्ण्य निर्गुण्ड्यार्द्रकरसेन प्रत्येकं सप्तभावना। चित्रकक्वाथेनैकविंशति भावनाः। शेषं पूर्ववत्। महारोगाष्टके=

वातव्याध्यश्मरी कुष्ठमेहोदरभगन्दराः ।
अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥
योगी याज्ञवल्क्यः

नारदस्मृतौ तु—वातव्याधिः, अश्मरी, ग्रहणीस्थाने उन्मादरा-जयक्ष्मश्वासा महारोगेषु पठिताः। साधारणस्वेदे रात्रिस्वेदे क्षय-कासे च दशमूलक्वाथेन देयः। मेहे मेदसि=अस्थिक्षये-आन्त्रवृद्धौ-च भवत्यनेन लाभः। क्लीवेभ्योऽपि युज्यते। रसकामधेन्वादौ—
'राजावर्त्तं च वैक्रान्तं गोमेदं पुष्परागकम् ।

शङ्खं च तुल्यतुल्यांशमिति पाठोऽधिको दृश्यते । एतैश्च फलाधिक्यं स्यात् ॥ १४–१९ ॥

भाषा—पारा, हीराभस्म, स्वर्ण, चांदी, सीसा, लौह, तांबा, काली मिरचों का चूर्ण, मोतीभस्म, मूंगाभस्म, स्वर्णमाक्षिक, शंखभस्म, शुद्ध नीलाथोथा, समभाग एकत्र मिला चीते के काथ से सात दिन मर्दन करे। फिर इसे चूर्ण कर कौड़ियों में भरें। सुहागे को आक के दूध से मर्दन कर उससे कौड़ियों के मुख को बन्द करदें। फिर इन कौड़ियों को एक मिट्टी के पात्र में डाल शराव से मुख को बन्द कर सन्धिबन्धन कर गजपुट में फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर निकाल कौड़ियों समेत सारे को चूर्ण कर सम्भालू और अदरक के रस से सात २ और चीते के काथ से इक्कीस भावना दे सुखाकर चार रत्ति की मात्रा पिप्पलीचूर्ण और शहद से दे अथवा मिरचों के चूर्ण तथा घी से दे। इससे क्षयरोग साध्य हो या असाध्य नष्ट होता है। वातव्याधि आदि आठ महारोग खांसी, श्वास, अतीसार इन सब रोगों को रत्नगर्भपोट्टलीरस दूर करता है। ॥१४-१९॥

लोकेश्वरपोट्टलीरसः—

रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् ।
द्विगुणं गन्धकं दत्त्वा मर्दयेत् चित्रकाम्बुना ॥ २० ॥
पूर्ण्या वराटिका तेन टङ्कणेन निरुध्य च ।
भाण्डे चूर्णप्रलिप्तेऽथ क्षिप्त्वा रुद्ध्वा च मृण्मये ॥२१॥

शोषयित्वा गजपुटे पुटेत् तु चापराह्णिके।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वा तु विन्यसेत् ॥२२॥
एष लोकेश्वरो नाम वीर्य्यपुष्टिविवर्धनः।
गुञ्जाचतुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ २३ ॥
मरिचैर्घृतयुक्तैश्च भक्षयेद्दिवसत्रयम्।
अङ्गकार्श्येऽग्निमान्द्ये च कासे पित्ते क्षयेऽपि च ॥२४॥
लवणं वर्जयेत् तत्र साज्यं दधि च याजयेत्।
एकविंशद्दिनं यावत् सघृतं मरिचं पिबेत्।
पथ्यं मृगाङ्कवद्देयं शयीतोत्तानपादतः ॥ २५ ॥
ये शुष्का विषमाशनैः क्षयरुजा व्याप्ताश्च येऽष्ठीलया
पाण्डुत्वेन हताः कुवैद्यविधिना ये चाधिना दुर्भगाः।
ये तप्ता विविधैर्ज्वरैः श्रममदोन्मादैः प्रमादं गताः।
ते सर्वे विगतामया हतरुजः स्युः पोट्टलीसेवनात् ॥२६॥

लोकेश्वरपोट्टल्याम्—रससिन्दूरस्यैको भागः, सुवर्णभस्म १½ भा., गन्धकस्य भागद्वयम्, चित्रकद्रवेण विमर्द्य पूर्ववद्वराटिकामापूर्य रविदुग्धेन गोदुग्धेन वा टङ्कणमार्द्रीकृत्य तेन वराटिकामुखरोधनं कृत्वा सुधाधवलितशरावद्वयाभ्यन्तरे क्षिप्त्वा सन्धिबन्धनं विधाय शोषयित्वा गजपुटे पचेत्। अरत्निमात्रके गर्ते पुटेदिति—अन्यत्र दृश्यते। स्वाङ्गशीतं सकपर्दं चूर्णयेत्,

पूर्ववत्। अष्ठीला पौरुषग्रन्थिः। त्रिविधैर्ज्वरैः=रनिश्चितनिदानज्वरैः। यकृज्जन्यक्षयेऽप्ययं देयः ॥२०-२६॥

भाषा—रसासिन्दूर १ तोला, स्वर्ण ३ माशे, गन्धक २ तोला। पहले रससिन्दूर और गन्धक को अच्छीप्रकार पीसे फिर स्वर्णभस्म मिला चीते के क्राथ से घोटे। शुष्क होने पर पीली कौड़ियों में भर और सुहागे से कौड़ियों का मुंह बन्द करदे। एक मिट्टी की हांडी में जिस के अन्दर चूना फिरा हो कपड़मिट्टी कर सूख जाने पर हांडी में कौड़ियों को रख मुंह बन्द कर सन्धिबन्धन कर सुखा ले। इसे सायंकाल गजपुट दे। अगले दिन स्वांगशीतल होने पर निकाल कौड़ियों समेत चूर्ण कर शीशी में रख ले। यह लोकेश्वर रस वीर्यवर्धक और पुष्टिकारक है। इसको चार रत्ति मात्रा में ले पिप्पली चूर्ण शहद अथवा काली मिरच का चूर्ण घी मिला कर देह की कृशता, अग्निमान्द्य, खांसी, पित्तरोग तथा क्षय रोग में तीन दिन सेवन करावें। इसके सेवनकाल में रोगी नमक न खावे। दही में घी डाल कर खिलावें। रोगी २१ दिन तक घी में काली मिरचों का चूर्ण मिलाकर पीवे। पथ्य मृगाङ्क के समान है। रोगी सीधा चित लेटा रहे। जो रोगी विषम भोजनों से सूख गये हैं, जो क्षयरोग से आक्रान्त हैं, जो पौरुषग्रन्थि वा पाण्डुरोग से पीड़ित हैं, जो कुवैद्य के इलाज से वा चिन्ता शोक आदि मानसिक रोगों से कान्तिहीन हो गये हैं, जो विविध ज्वरों रोगों से तप रहे हैं तथा जो श्रम मद और उन्माद से प्रमाद प्राप्त हो गये हैं, वे सभी इस लोकेश्वरपोटली रस के सेवन

से रोगमुक्त और पीड़ा रहित हो जाते हैं ॥ २०—२६ ॥

कनकसुन्दरो रसः-

रसस्य तुर्यभागेण हेमभस्म प्रयोजयेत् ।
मनःशिला गन्धकश्च तुत्थं माक्षिकतालकम् ॥२७॥
विषं टङ्कणकं सर्वं रसतुल्यं प्रदापयेत्
मर्दयेत् सर्वमेकत्र खल्लपात्रे च निर्मले ॥ २८ ॥
जयन्तीभृङ्गराजोत्थैः पाठाया वासकस्य च ।
अगस्तलाङ्गलाग्नीनां स्वरसैश्च पृथक् पृथक् ॥२९॥
भावयित्वा विशोष्याथ पुनश्चाद्रकवारिणा ।
सप्तधा भावयित्वा च रसः कनकसुन्दरः ॥ ३० ॥
गुञ्जाद्वयं त्रयं वाऽस्य राजयक्ष्मप्रशान्तये ।
मधुना पिप्पलीभिर्वा मरिचैर्वा घृतान्वितम् ॥ ३१ ॥
सन्निपाते प्रदातव्यमाद्रकस्य रसेन वै ।
जयपालरजोभिर्वा गुल्मिने शूलरोगिणे ॥३२॥
अम्लवर्जं चरेत् पथ्यं बल्य हृद्यं रसायनम् ।
वर्जयेल्लवणं हिङ्गु तक्रं दधि विदाहि यत् ॥३३॥

कनकसुन्दरे—रसस्य पारदस्यैको भागः, हेमभस्मनस्तुर्य भागश्चतुर्थांशम्, मनःशिलादीनां प्रत्येकमेको भागः । जयन्त्या द्रकान्तानां प्रत्येकं स्वरसेन पृथक् सप्तभावनाः । अग्निश्चित्र

गुल्मिनां शूलिनां च यथोक्तमात्रया जयपालमूलचूर्णानुपानेन योज्यः। उरःक्षत व्यवायशोषे च प्रचुरश्लेष्मनिर्गमे, एवं तीव्रज्वरे अरुचिपार्श्वशिरःशूलश्वाससरक्तपूयकफनिर्गमे चायं योज्यः ॥२७–३३॥

भाषा—पारा एक तोला, स्वर्ण ३ माशा, मनसिल, गन्धक, नीलाथोथा, स्वर्णमाक्षिक, हड़ताल, विष, भुना सुहागा एक २ तोला लें। कज्जली में अन्य द्रव्य मिला जयन्ती, भांगरा, पाठा, बांसा, अगस्त्य, कलिहारी, चीता इनके रस से पृथक २ भावना दे सुखा फिर अदरक के रस से सात बार भावना दें और सुखा लें। इसे कनकसुन्दररस कहते हैं। इस रस की २ या ३ रत्ति की मात्रा पिप्पलीचूर्ण और शहद से या मरिचचूर्ण और घी से दें तो राजयक्ष्मा शान्त होता है। इसको सन्निपात ज्वर में अदरक के रस से देना चाहिये। गुल्म तथा शूलरोग में इसमें जमालगोटे का चूर्ण मिलाकर दे। इसके प्रयोग के समय पथ्य ऐसा खावें जो बलदायक, हृदय को सुखद व रसायन हो। खटाई, नमक, हींग, छाछ, दही तथा विदाही पदार्थ न खावें ॥ २७–३३ ॥

हेमगर्भपोट्टली—

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृतताम्रस्य भागैकं भागैकं गन्धकस्य च ॥३४॥
मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्द्वियामान्ते समुद्धरेत् ।
पूर्यां वराटिका तेन टङ्कणेन विलेपयेत् ॥३५॥

वराटीं पूरयेद्भाण्डे रुद्‌ध्वा गजपुटे पचेत् ।
विचूर्णयेत् स्वाङ्गशीते पोट्टली हेमगर्भिका ।
मृगाङ्कवच्चतुर्गुञ्जा-भक्षणाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ३६ ॥

हेमगर्भपोट्टल्यां—द्वियामान्त इति-यामद्वयान्त इत्यर्थः। मृगाङ्कवदिति यत्र मृगाङ्कप्रयोगस्तत्रास्यापि प्रयोगः। भक्षणादि-विधिः—पथ्यादिकञ्च मृगाङ्कस्यैव। विशेषतस्त्वयमान्त्रक्षयजग्रह-ण्यां युज्यते ॥ ३४-३६ ॥

भाषा—रससिन्दूर ३ तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्र एक तोला, गन्धक एक तोला इन्हें मिला मर्दन कर चीते के क्वाथ से दोपहर तक घोटे। शुष्क होने पर कौड़ियों में भर मुख को सुहागे से बन्द कर दे। उन कौड़ियों को एक हांडी में रख शराव से मुख बन्द कर दे और सन्धिबन्धन कर गजपुट में फूंक दे। स्वांगशीतल होने पर कौड़ियों सहित चूर्ण करले। इस हेमगर्भपोट्टली को मृगाङ्क के समान चार रत्ति देने से राजयक्ष्मा रोग दूर होता है। मात्रा एक रत्ती ॥ ३४-३६ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरो रसः—

गन्धो रसश्च तुल्यांशौ द्वौ भागौ टङ्कणस्य च ।
मौक्तिकं विद्रुमं शङ्खभस्म देयं समांशिकम् ॥३७॥
हेमभस्मार्धभागञ्च सर्वं खल्ले विमर्दयेत् ।
निम्बुद्रवेण सम्पिष्य पिण्डिकां कारयेत् ततः ॥३८॥
पश्चाद् गजपुटं दत्वा सुशीतञ्च समुद्धरेत् ।

हेमभस्मसमं तीक्ष्णं तीक्ष्णार्धं दरदं मतम् ॥ ३६ ॥
एकीकृत्य समस्तानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
ततः पूजां प्रकुर्वीत रसस्य दिवसे शुभे ॥४० ॥
सर्वाङ्गसुन्दरो ह्येष राजयक्ष्मनिकृन्तनः ।
वातपित्तज्वरे घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥४१॥
अर्शःसु ग्रहणीदोषे मेहे गुल्मे भगन्दरे ।
निहन्ति वातजान् रोगान् श्लैष्मिकांश्च विशेषतः ॥४२॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तं घृतयुक्तमथापि वा ।
भक्षयेत् पर्णखण्डेन सितया चार्द्रकेण वा ॥४३॥

कासोक्तरसरत्नाकरीयसर्वाङ्गसुन्दरे— गन्धादिशङ्खान्ताः समांशाः, निम्बुद्रवेण=कागजी नीबू इति ख्यातस्य रसेन— अत्र हस्तप्रमाणगर्त्ते गजपुटदानम्, तीक्ष्णं=तीक्ष्णलौहम् । रसस्य पूजां=रसपूजाविधिस्तु—आनन्दकन्दद्वितीयोल्लासतो ज्ञेयः; यक्ष्मणि तीव्रज्वरे कासे च सत्यतिसारे प्रयुज्यते । सिद्धोऽयं योगः । प्रमेहे अमृतासत्वेन कांस्यक्रोडे तु—निर्गुण्डीरसेन । मा. २ र. ॥३०-४३॥

भाषा—गन्धक एक तोला, पारा एक तोला, दोनों की कज्जली करे। फिर भुना सुहागा दो तोला, मोती एक तोला, मूंगा एक तोला, शंख इनके भस्म १ तोला, स्वर्णभस्म $\frac{1}{2}$ तोला सब द्रव्यों को मिला खरल में पीस नीबू के रस से घोट पिण्डी सी बना कर शुष्क होने पर सम्पुट में रख गजपुट में फूंक दे। स्वांगशीतल

होने पर निकाल पीस लें। तीक्ष्णलौह की भस्म आधा तोला और शुद्ध हिंगुल तीन माषा मिला सूक्ष्म चूर्ण कर ले। फिर शुभ दिन में इस रस की पूजा करें। यह सर्वाङ्गसुन्दर रस राजयक्ष्मा रोग को नाश करता है। वातपित्तज ज्वर, घोर सन्निपात, बवासीर, ग्रहणीदोष, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, वातजरोग विशेषतः श्लैष्मिक-रोग इन सबको दूर करता है। पिप्पलीचूर्ण और मधु वा घी के साथ, पान के पत्ते में, मिश्री से या अदरक के रस के साथ इसे खावें। यह बहु परीक्षित है। ३७—४३॥

लोकेश्वरो रसः

पलं कपर्दचूर्णस्य पलं पारदगन्धयोः।
माषश्च टङ्कणस्यैव जम्बीराद्भिर्विमर्दयेत्।
पुटेत् लोकेश्वरो नाम्ना लोकनाथरसोत्तमः॥ ४४॥
ऋते कुष्ठं रक्तपित्तमन्यान् रोगान् बलाज्जयेत्।
पुष्टिवीर्य्यप्रसादौजः-कान्तिलावण्यदः परः॥४५॥
कोऽस्ति लोकेश्वरादन्यो नृणां शम्भुमुखोद्गतात्।
पथ्यं शाल्योदनं सर्पिर्दधि शाकं सहिङ्गुकम्॥४६॥
नित्यं यामद्वयादूर्ध्वं कार्य्यं वारत्रयं दिवा।
त्र्यहाद्वान्तेऽरुचौ वापि लग्नः सूतो न चेत्पुनः॥४७॥
अष्टमेऽह्नि प्रदातव्यः पूर्ववत् कार्य्यसिद्धये।
प्रथमे सप्तके देया लावशूरणमुद्गकाः॥ ४८॥

द्वितीये माषगोधूमो भक्ष्यं पूर्वोदितश्च यत् ।
देयानि मत्स्यमांसानि तृतीये मर्दनादिकम् ॥ ४९ ॥
तैलबिल्वारनालानि कोपस्त्रीस्वप्नजागरान् ।
त्यजेत् कादीनि द्रव्याणि हृद्यं स्वादु च शीलयेत् ॥५०॥
वायौ सेव्यं पयः कोष्णं पित्ते तु ससितं हितम् ।
अत्यग्नौ चोरबीजानि तिलेक्षु कदलीफलम् ॥५१॥
खर्जूरमांसमृद्वीका-सितादिसकलं भजेत् ।
वीर्य्यच्युतौ नारिकेलजलं तालफलानि च ॥५२॥
आनहारुचिमूर्च्छार्तिधूमोद्गारविसूचिकाः ।
एतेषु लघु शाल्यन्नं केवलं सघृतं हितम् ॥ ५३ ॥
अतिवान्तौ पिबेच्छिन्नारसं क्षौद्रेण संयुतम् ।
सक्षौद्रं वासकं रक्तपित्ते रुचिविपर्य्यये ॥ ५४ ॥
भ्रष्टधान्यं सितायुक्तमथवा क्षौद्रसंयुतम् ।
यवान्नं मधुसंयुक्तं पिबेद्वा माहिषं दधि ॥५५॥
घृतान्नं भक्षयेन्नित्यं सुखोष्णेन च वारिणा ।
छिन्नाऽम्बुसहितं देयं दाहेऽजीर्णे सुधाजलम् ॥५६॥
आर्द्रकं सर्षपं रम्भाफलं भृङ्गं कफोल्वणे ।
अन्येऽप्युपद्रवा ये स्युस्तत्तच्छान्त्यै यथौषधम् ॥५७॥

द्वात्रिंशद्दिवसे कार्य्यं स्नानमामलकैस्तिलैः ।
युक्तं सेव्यं बले जाते शनैरग्निबलादनु ॥ ५८ ॥

लोकेश्वरे—पारदगन्धयोर्मिलितयोः पलं, टङ्कणस्य=सौभाग्यस्य, माषमष्टौ रक्तिकाः, कर्षश्च टङ्कणस्यैव, इति बालबोधिनीटीकायां पाठान्तरं युक्तं प्रतिभाति । कादीनि=

कूष्माण्डकं कर्कटीञ्च कलिङ्गं कारवेल्लकम् ।
कुसुम्भकाञ्च कर्कोटीं कदलीं काकमाचिकाम् ॥
ककाराष्टकमेतद्धि वर्जयेद्रसभक्षकः । र. इ. चि. अ. ३ श्लो. २०६।

चोरबीजानि—चोरः कृष्णाशठ्यामिति वै. श. सि. । अपामार्गबीजानीत्यन्ये, अपामार्गपर्यायेषु कोषादौ चोरशब्दो न लब्धः। अ. टी. विश्वस्तु—चौरः पाटच्चरेऽपि स्याच्चौरपुष्पोषधावपि, परमपामार्गबीजानां भस्मकनिवृत्तौ विधानं दृश्यते । सुधाजलम्=चूर्णकजलं तद्विधानं यथा—काचादिपात्रस्थे शुद्धजलस्याष्टपले तोलकं सुधापलं दत्वाऽऽलोड्य घटिकाद्वयानन्तरमुपरिस्थं स्वच्छं जलं पात्रान्तरे निधाय मुखं मुद्रितं कुर्यात् । मात्रा २ तो. । अत्र प्रोक्तानुपानानि—अन्यत्रापि यथायथं योज्यानि । मा० २ र. ॥ ४४-५८॥

भाषा—कौड़ीभस्म १ पल, पारा $\frac{1}{2}$ व गन्धक $\frac{1}{2}$ पल, भुना सुहागा १ माषा कज्जली में मिला जम्बीरी रस से घोट सम्पुट में बन्द कर पुट दे। इस उत्तम लोकनाथ रस का नाम लोकेश्वर है। कुष्ठ व रक्त- पित्त को छोड़ अन्य रोगों को बलपूर्वक जीतता है। पुष्टि, वीर्य, ओज, प्रसाद, कान्ति तथा लावण्य देता है। शम्भु मुखोक्त इस लोकेश्वर रस से बढ़ कर और कौन उत्तम रस है। इसके संवन

करने वाले को पथ्य में शाली चावल, घी, दही तथा हींगयुक्त शाक खाना चाहिए। नित्य छः छः घन्टे के बाद और दिन में तीन बार पथ्य देना चाहिए। यदि तीन दिन देने से रोगी को वमन हो जाय या अरुचि हो और यह रस ठीक अनुकूल न बैठे—लाभ न करे तो बीच में बन्द करके आठवें दिन कार्य्य-सिद्धि के लिये पूर्ववत् पुनः देना चाहिए। पहले सप्ताह में लवा का मांस ज़मीकन्द और मूंग का पथ्य दिया जाता है। दूसरे सप्ताह में उड़द गेहूं तथा पूर्वोक्त पथ्य दें। तीसरे सप्ताह में मछली और मांस दें तथा तेल आदि के मर्दन की व्यवस्था करें।

तेल, बेल, कांजी, क्रोध, स्त्रीसंग, दिन में सोना, रात्रि-जागरण, करेला, ककड़ी आदि ककाराष्टक द्रव्य, इन्हें छोड़ दे। जो हृदय के लिये हितकारी तथा स्वादु-मधुर द्रव्य हैं उन्हें सेवन करें। वायु के दोष में गरम दूध पीवे, पित्त के दोष में मिश्री सहित शीतल दूध पीवे। अत्यग्नि में कृष्णशाटी बीज, तिल, ऊख, केले का फल, खजूर, मांस, मुनक्का, मिश्री आदि खावे। वीर्यपात हो तो नारियल का जल तथा ताड़ का फल खावे। आनाह, अरुचि, मूर्छा, धुएं के से डकार आना, विसूचिका इन सब उपद्रवों में शाली चावलों का लघु भात घृत सहित दें। अति वमन होता हो तो गिलोय के स्वरस में शहद मिलाकर पिलावें। रक्तपित्त में वासा के रस में शहद मिलाकर दें। अरुचि हो तो भुने हुए धनिए को मिश्री या शहद मिलाकर देना चाहिये या जौ के अन्न में शहद मिला कर खावे अथवा भैंस का दही पीवे। घी मिला हुआ अन्न नित्य खाये और गरम जल का पान करे। दाह रोग में गिलोय

के रस के साथ दें और अजीर्ण में चूने के जल के साथ दें। कफ की प्रधानता में अदरक, सरसों, केला दारचीनी दें। अन्य भी जो उपद्रव हों उनमें उनकी शान्ति के लिये उचित औषध दें। बत्तीसवें दिन आमलों और तिल के उबटने के साथ स्नान करें। बल हो जाने पर अग्निबल के अनुसार शनैः उचित पथ्य सेवन करे॥ ४४-५८॥

स्वल्पमृगाङ्कः—

रसभस्म हेमभस्म तुल्यं गुञ्जाद्वयं भजेत्।
दोषं बुद्ध्वाऽनुपानेन मृगाङ्कोऽयं क्षयापहः॥५९॥

स्वल्पमृगाङ्के—रसभस्म=रससिन्दूरम, गुञ्जाद्वयमिति-एकगुञ्जयाऽपि व्यवहारः। दोषं बुद्ध्वानुपानेनेति–विशेषतोऽयं प्रतिलोमक्षयस्य तरुणावस्थायां ज्वरातिशये पर्पटादिपित्तघ्नद्रव्यानुपानेन देयः। एवं यत्राऽनिश्चितनिदाने दीर्घकालं स्वल्पज्वरोऽनुवर्तते तत्र दशमूलक्वाथेन सितोपलाचूर्णयुतेन देयः। यकृद्गते क्षये उत्कटवातकासे च बालानां[१] पिप्पलीचूर्ण-पर्णपत्ररसेन देयः॥५९॥

भाषा—रससिन्दूर और स्वर्ण दोनों को एक २ रत्ति मिलाकर दो रत्ति की मात्रा दोषानुसार उचित अनुपान से दे तो क्षयरोग का नाश होता है इसका नाम स्वल्पमृगाङ्क रस है॥ ५९॥

काञ्चनाभ्र-रसः

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम्।
विद्रुमञ्चाभया तारं कस्तूरी च मनःशिला॥६०॥

१—उत्कटवातकासचिकित्सा तु प्रतिसंस्कृतनिदानतो ज्ञेया।

प्रत्येकं विन्दुमात्रन्तु सर्वं सम्मर्द्य यत्नतः ।
वारिणा वटिका कार्य्या द्विगुञ्जाफलमानतः ॥ ६१ ॥
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ।
क्षयं हन्ति तथा कासं श्लेष्मपित्तसमुद्भवम् ॥ ६२ ॥
प्रमेहं विविधञ्चैव दोषात्रयसमुत्थितम् ।
कफजान् वातजान् रोगान् नाशयेत् सद्य एव हि ॥६३॥
बलवृद्धिं वीर्य्यवृद्धिं लिङ्गदार्ढ्यं करोति च ।
श्रीकरः पुष्टिजननः नानारोगनिसूदनः ।
गहनानन्दनाथोक्तो रसोऽयं काञ्चनाभ्रकः ॥ ६४ ॥

काञ्चनाभ्रे—काञ्चनं=सुवर्णभस्म, तारं=रौप्यभस्म, विन्दुमात्रं=कर्षप्रमाणम्, वारिणा=जलेन, द्विगुञ्जाफलमानत=इति—एकगुञ्जापि युक्ता । नानारोगनिषूदनो=ऽल्पज्वरयुत उरस्तोये श्वेतपुनर्नवाक्वाथेन, क्षये सरक्तश्लेष्मणि प्रमेहस्वप्नदोषकार्श्याद्युपद्रवेषु पुष्ट्यर्थं प्रबलज्वरह्रासाय च पिप्पलीचूर्णमधुना देयः ॥६०–६४॥

भाषा—स्वर्ण, रससिन्दूर, मोती, लौह, अभ्रक, मूंगा इनके भस्म, हरड़, चाँदीभस्म, कस्तूरी, मनसिल एक २ कर्ष लें। पीस कर जल से दो रत्ति की गोली को दोषानुसार भिन्न २ अनुपानों के साथ देने से क्षयरोग, पित्त एवं श्लेष्मा से उत्पन्न खांसी व त्रिदोषज विविध प्रमेह नष्ट होते हैं। कफज तथा वातज सब रोगों को शीघ्र नाश करता है, बल वीर्य बढ़ाता है, लिंग को दृढ़ करता है

यह सौन्दर्यवर्धक, पुष्टिकारक, नानारोगनाशक है। यह गहनानन्द नाथ का कहा कांचनाभ्र रस है ॥६०–६४॥

बृहत्काञ्चनाभ्ररसः—

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लौहमभ्रकम् ।
विद्रुमं मृतवैक्रान्तं तारं ताम्रञ्च बङ्गकम् ॥ ६५ ॥
कस्तूरिका लवङ्गञ्च जातीकोषैलवालुकम् ।
प्रत्येकं बिन्दुमात्रञ्च सर्वं मर्द्यं प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥
कन्यानीरेण सम्मर्द्य केशराजरसेन च ।
अजाक्षीरेण सम्भाव्यं प्रत्येकं दिवसत्रयम् ॥ ६७ ॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ॥ ६८ ॥
क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च
प्रमेहान् विंशतिश्चैव दोषत्रयसमुद्भवान् ।
सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ६९ ॥

बृहत्काञ्चनाभ्रे—मृतवैक्रान्तं=वैक्रान्तभस्म, तारं=रौप्यभस्म, एलाबालुकं='एलुवा इति ख्यातस्य' इति अ. टी. काण्डे २-४-१-२१।

एल्वालुकं कपित्थं च दुर्वर्णं प्रसरणं दृढम् ।
एलागन्धिकमेलाह्वं गुप्तगन्धि सुगन्धिकम् ।
एलाफलं च विज्ञेयमिति, रा. नि. व. ४ ।

गुणाश्च—एलावालुसुगन्धि स्याच्छीतोऽत्यन्तं···विषविध्वंस·

नोऽत्युग्रः कण्डूकुष्ठव्रणान्तकृत् । ध. नि., वै. श. सि. तु—एलवालुकमिति लकारे ह्रस्वाकारान्तः पाठः । स्वनामप्रसिद्धगन्धद्रव्यविशेषे । भा. प्र. तु—कङ्कोलसदृशं कुम्भुगन्धि इति, कर्पूरादौ सुगन्धिद्रव्येषु परिगणनम् । औषधिसंग्रहे—(मराठी भाषा) तु—अस्य शाकः सर्वैः क्रियते, तत्राऽस्यवर्णनमप्यस्ति । एलावालुकं स्वनामख्यातं सुगन्धिद्रव्यमिति चक्रवृन्दटीके । शीतलचीनीति बीजविशेषः (कबावचीनी) इति मम विचारः । क्षये कृशतायां बहुमूत्रप्रमेह-श्वासादिषु सत्सु कदाचिदल्पातिसारे च पुष्ट्यर्थं चाप्यस्य प्रयोगः । अस्थिसन्धिषु नाडीव्रणरूपेण स्थितेऽपि क्षयेऽस्य कतिचिन्मासप्रयोगेण पूयनिवृत्तिर्व्रणरोपणं ज्वराद्युपद्रवशान्तिश्च ॥ ६५–६९ ॥

भाषा—स्वर्ण, रससिन्दूर, मोती, लौह, अभ्रक, मूंगा, वैक्रान्त, चांदी, ताम्र, बंग इनके भस्म, कस्तूरी, लौंग, जावित्री, शीतलचीनी, एक कर्ष ले सबको घीकुमार के रस से मर्दन कर केशराज का रस, बकरी का दूध, प्रत्येक की तीन दिन भावना दे । इस रस की चार रत्ति की गोली बना दोषानुसार अनुपान से सेवन करावें । यह क्षय, खाँसी, यक्ष्मा, श्वासरोग, तीनों दोषों से होने वाले बीसों प्रकार के प्रमेह, सबको ऐसे दूर करता है जैसे सूर्य अन्धकार को ॥ ६५–६९ ॥

शिलाजत्वादिलोहम्

शिलाजतु मधु व्योषं ताप्यं लौहरजस्तथा ।
क्षीरेण लेहितस्याशु क्षयः क्षयमवाप्नुयात् ॥ ७० ॥

शिलाजत्वादिलौहे—मध्विति-मन्यते इति मधु=यष्टीमधु. रा. नि. व. ६ (वै. श. सि.) क्षौद्रमेवोचितं समानपाठान्तरसम्वादात्। लेहित इत्युक्तेश्च। ताप्यं=स्वर्णमाक्षिकम्, लौहरजः=सर्वचूर्णसमम्। एकभागलौहचूर्णेनापि भवति व्यवहारः। तत्र पक्षे मात्राधिका। मा. २ र.। क्षीरेण=धारोष्णेनेति ज्ञेयम्। क्षीरमत्रान्नं परित्यज्य कल्पविधिना सेव्यम्। कल्पासहिष्णुस्तु दुग्धाधिकं भोज्यमश्नीयादिति। र. इ. चि. मणि. टी. ६।४३। जीर्णज्वराज्जाते क्षये प्रमेहजन्यक्षयस्य प्रथमावस्थायां च विशिष्टमुपकरोति ॥७०॥

भाषा—शिलाजीत, मुलहठी, सोंठ, मिरच, पिप्पली, स्वर्णमाक्षिक एक एक भाग लें। सबके समभाग लौह मिला दो रत्ती की गोली जल से घोट बना लें। इसे दूध से खावें। क्षयरोग का नाश होता है॥ ७०॥

कुमुदेश्वरोरसः—

हेमभस्म रसभस्म गन्धकं मौक्तिकन्तु रसपादटङ्कणम्।
तारकं गरुडमत्र तुल्यकं काञ्जिकेन परिमर्द्य गोलकम् ॥७१॥
मृत्स्नया च परिवेष्ट्य शोषितं भाण्डके लवणगेऽथ पाचयेत्।
एकरात्रमथ सम्पुटेन वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः।
वल्लमस्य मरिचैः घृतप्लुतै राजयक्ष्मपरिशान्तये पिबेत्॥७२॥

कुमुदेश्वरे—रसटङ्कणं=रसेन तुल्यं टङ्कणम्। र. यो. सा. तु रसपादटङ्कणमिति पाठः। स एवोचितो यतो रसभस्म पाठस्त्रैवोक्तः... रसपद्धत्यां च—सकलात्पादेन टङ्केन चेति पठ्यते

श्लो. २०० । तारकं=रौप्यम, गरुडं=स्वर्णमाक्षिकं यशदभस्मेत्यन्ये । काञ्जिकेन मर्दयित्वा गोलकं लवणयन्त्रे पाचयेत् । अथवा मल्लद्वय-सम्पुटे कृत्वा पाको विधेयः । अस्य वल्लं=गुञ्जाद्वयमेकरक्तिका वा । मरिचै=रेकोनत्रिंशदूषणैः, घृताप्लुतै=र्घृतेन नवनीतेन वा युक्तैः। यत्र यकृति यक्ष्मबीजं तादृशक्षये श्वासकासाद्युपद्रवे चापि प्रचरति ॥ ७१-७२ ॥

भाषा—स्वर्ण, रससिन्दूर, गन्धक, मोतीभस्म प्रत्येक एक भाग, भुना सुहागा चौथाई भाग, चांदी, स्वर्णमाक्षिक प्रत्येक द्रव्य समभाग कांजी से पीस गोला बना एक छोटे मृत्पात्र में बन्द कर ऊपर कपड़ मिट्टी कर सुखा कर लवण यन्त्र में दिन भर पाक करे । अथवा मृदुपुट से पाक करें तो कुमुदेश्वर रस सिद्ध हो जाता है । इसकी दो रत्ति की मात्रा घी में मिरच चूर्ण डाल राजयक्ष्मा की शान्ति के लिये पीना चाहिये ॥ ७१-७२ ॥

क्षयकेसरीरसः—

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः ।
नवभागोन्मितैस्तुल्यं लौहपारदसिन्दुरम् ।
मधुना क्षयरोगांश्च हन्त्ययं क्षयकेशरी ॥ ७३ ॥

क्षयकेसरीरसे—एला=क्षुद्रैला, लौहपारदसिन्दूरं=लौहं=लौहभस्म, ४॥ तो. पारदसिन्दूरं=रससिन्दूरं ४॥ तो., तुल्यं=द्वयं मिलितं त्रिकट्वादिभिस्तुल्यम् यकृत्क्षयेऽयं गुडूचीस्वरसमधुना रक्तकणवर्धकोयम् । एवं व्यायामशोषे क्षये रक्तोत्कास-कार्श्य-शोथ-ज्वरामयेषु वासक-पत्ररसमधुना देयः । मा. १. र.॥७६॥

भाषा—सौंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, छोटी इलायची, जायफल, लौंग इनका कपड़े से छना चूर्ण एक २ तोला सारा चूर्ण नौ तोला। इसमें साढ़े चार तोला लौहभस्म तथा रससिन्दूर साढ़े चार तोला डालें। सब को पीस कर मात्रा में शहद के साथ चाटें तो क्षय रोग दूर होता है। इसका नाम क्षय-केशरी रस है। मा. २ र. ॥ ७३ ॥

बृहच्चन्द्रामृतो रसः—

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं कर्षमेकं सुशोधितम्।
अभ्रं निश्चन्द्रकं दद्यात् पलार्धञ्च विचक्षणः ॥७४॥
कर्पूरं शाणकं दद्यात् स्वर्णं तोलकसम्मितम्।
ताम्रञ्च तोलकं दद्याद् विशुद्धं मारितं भिषक् ॥७५॥
लौहं कर्षं क्षिपेत् तत्र वृद्धदारकजीरकम्।
विदारी शतमूली च क्षुरकश्च बला तथा ॥ ७६ ॥
मर्कट्यतिबला चैव जातीकोषफले तथा।
लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जरसं तथा ॥ ७७ ॥
शाणभागं समादाय चैकीकृत्य प्रयत्नतः।
मधुना मर्दयेत् तावत् यावदेकत्वमागतम् ॥ ७८ ॥
चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटीं कुर्य्यात् प्रयत्नतः।
भक्षयेद्वटिकामेकां पिप्पलीमधुना सह ॥ ७९ ॥

बृहच्चन्द्रामृते—रसगन्धकयोरेकं कर्षं=प्रत्येकमेकैकं तोलकमि-त्यर्थः। अभ्रस्य च पलार्धमर्धपलम्। कर्पूरं शाणकं माषकचतुष्टयम्।

लौहं कर्ष=तोलकम्, वृद्धदारको=विधारा इति, शतमूली=शतावरी, तुरकं=कोकिलाक्षबीजम्, मर्कटी=शूकशिम्बी-कौंच के बीज इति। अतिबला=कङ्गीति प्रसिद्धा, विजयाबीजं=भङ्गाबीजम्, श्वेतसर्जरसं=श्वेतस्य सर्जस्य शालवृक्षस्य रसं नाम निर्यासः=शालकी राल इति। वृद्धदारकादीनां प्रत्येकं शाणभागम्। बाजीकरत्वाद्विशेषतोऽयं शुक्रक्षरणजन्यक्षये प्रयुज्यते। पुष्टिकरश्च। शुष्ककांस्यक्रोडे तदुद्भवे यक्ष्मणि च प्रचरति। मा. र. र. ॥७४-७६॥

भाषा—पारा, गन्धक, प्रत्येक द्रव्य एक कर्ष ले कज्जली करें। अभ्रक आधा पल, कपूर एक शाण, स्वर्ण एक तोला, ताम्र एक तोला, लौह एक कर्ष, विधारे के बीज, श्वेतजीरा, विदारीकन्द, शतावर, तालमखाना, बलामूल, कौंच के बीज, अतिबलामूल, जायफल, जावित्री, लौंग, भांग के बीज, सफेद राल, प्रत्येक का चूर्ण एक शाण शहद मिला पीसें। जब सब एक रस हो जाये तो चार रत्ति की गोली बना एक गोली को पिप्पली चूर्ण और शहद से खावे क्षय रोग तथा खांसी आदि अच्छे होते हैं ॥ ७४-७६ ॥

महामृगाङ्को रसः—

निरुत्थं भस्म सौवर्णं द्विगुणं भस्मसूतकम्।
त्रिगुणं भस्म मुक्तोत्थं शुकपुच्छं चतुर्गुणम् ॥ ८० ॥
मृतताप्यश्च पञ्चांशं तारभस्म चतुर्गुणम्।
सप्तभागं प्रवालञ्च रसतुल्यञ्च टङ्कणम् ॥८१ ॥
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य त्रिदिनं लुङ्गवारिणा।

ततश्च गोलकं कृत्वा शोषयित्वा खरातपे ॥ ८२ ॥
लवणैः पात्रमापूर्य्य तन्मध्ये गोलकं क्षिपेत् ।
तन्मुखन्तु मृदा रुद्ध्वा पचेद् यामचतुष्टयम् ॥ ८३ ॥
आकृष्य चूर्णयेत् सर्वं चतुः षष्टिविभागतः ।
वज्रं वा तदभावे तु वैक्रान्तं षोडशांशिकम् ॥ ८४ ॥
महामृगाङ्कः खलु एष सिद्धः ।
श्रीनन्दिनाथप्रकटीकृतोऽयम् ।
वल्लोऽस्य सेव्यो मरिचाज्ययुक्तः ।
सेव्योऽथवा पिप्पलिकासमेतः ॥ ८५ ॥
तत्रोपचाराः कर्त्तव्याः सर्वे क्षयगदोदिताः ।
बल्यं वृष्यञ्च भोक्तव्यं त्यजेत् सूतविरोधि यत् ॥ ८६ ॥
यक्ष्माणं बहुरूपिणं ज्वरगणं गुल्मं तथा विद्रधिं ।
मन्दाग्निं स्वरभेदकासमरुचिं वान्तिञ्च मूर्च्छां भ्रमिम् ।
अष्टावेव महागदान् गरगदान् ।
पाण्ड्वामयान् कामलाः
पित्तोत्थांश्च समग्रकान् बहुविधा-
नन्यांस्तथा नाशयेत् ॥ ८७ ॥

मृगाङ्के—निरुत्थ=अपुनर्भवम्, सौवर्णभस्म=सुवर्णभस्म, द्विगुणं प्रधानस्य सुवर्णस्यापेक्षया द्विगुणम्, शुकपुच्छं=गन्धकम्,

मृतताप्यमिति ताप्यं=तपतीतीरसम्भूतं स्वर्णमाक्षिकभस्म इत्यर्थः। तारं=रौप्यम्, लुङ्गवारिणा=मातुलुङ्गरसेन, खरातपे=तीव्रातपे, लवणैः पात्रमापूर्येति=स्थालिकार्धं लवणचूर्णेन पूरयित्वा तत्र गोलकं निधाय ततः शेषभागं पुनः लवणेन पूरयित्वा स्थालिकामुखं रुद्ध्वा चतुर्यामं पचेत्। ततः स्वाङ्गशीतं गृहीत्वा सर्वचूर्णस्य चतुःषष्ठ्यंशं, वज्रं=हीरकभस्म तदभावे षोडशांशं वैक्रान्तभस्म दत्वा द्विरक्तिमात्रया मरिचाज्यादिभिर्यथोक्तै रनुपानैर्दद्यात। सूतविरोधि ककाराष्टकम् (५० श्लो०) ज्वरगणमित=बहुविधं ज्वरम्। अष्टावेव महागदानिति (श्लो० १४-१६)। यक्ष्मणि, श्वास, कास-स्वरभङ्ग-ज्वर-दाह-रात्रि-स्वेदादिषु, एकरक्तिमात्रया सिद्धत्वात्तयस्य सर्वावस्थासु सर्वरूपेषु च तत्तदनुपानैः स्वच्छवातावस्थाननित्यविश्राम-लघुपुष्टिकरभोजनादिभिरुपकरोति ॥८२-८७॥

भाषा—निरुत्थ स्वर्णभस्म एक तोला, रस सिन्दूर दो तोला मोतीभस्म तीन तोला, गन्धक चार तोला, स्वर्णमाक्षिक पांच तोला, चांदी चार तोला, प्रवाल भस्म सात तोला, सुहागा दो तोला। सबको पीस मातुलुंग के रस से तीन दिन घोट गोला बना तीव्र धूप से सुखावे। फिर नमक से पात्र भर उसके मध्य में गोला धर दे और मुख बन्द कर मिट्टी से सन्धि को लीप दे। पश्चात् बारह घण्टे आग पर पका स्वांगशीतल होने पर निकाल चूर्ण कर ले। सारे चूर्ण का चौसठवां भाग हीरा भस्म डाल दें हीराभस्म न हो तो सोलहवां भाग वैक्रान्तभस्म डाले। अच्छी प्रकार घोट शीशी में रख ले। यह महामृगाङ्करस सिद्ध फल है।

इसे श्री नन्दिनाथ ने प्रकाशित किया है। इस की दो रत्ति की मात्रा को मरिच और घी से मिला सेवन करे। अथवा पिप्पली चूर्ण मिला कर भी सेवन की जा सकती है। इसके सेवन के समय क्षयाधिकार में कहे पथ्य आदि सब उपचारों का पालन करना चाहिए। बलदायक तथा वृष्य भोजन करे। इसके सेवन के समय वे सब वस्तुवें सेवन न करे जो कि पारे के सेवन करने के समय अपथ्य कही हैं कूष्माण्डादि। इससे अनेक रूपों से युक्त यक्ष्मा भी दूर होता है तथा ज्वर समूह, गुल्मरोग, विद्रधि, मन्दाग्नि, स्वरभेद, कास, अरुचि, वमन, मूर्छा, भ्रम, आठों महारोग, (१४-१६ श्लो०) गररोग पाण्डुरोग कामला पित्त से होने वाले सभी रोग तथा अन्य अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं॥ ८०—८७॥

बृहत क्षयकेसरी—

मृतमभ्रं मृतं सूतं मृतं लौहं तथा रविः।
मृतं नागश्च कांस्यश्च मण्डूरं विमलं शिला ॥८८॥
वङ्गं खर्परकं तालं शङ्खटङ्कणमाक्षिकम्।
वैक्रान्तं कान्तलौहश्च स्वर्णं विद्रुममौक्तिकम् ॥ ८९॥
वराटं मणिरागञ्च राजपट्टश्च गन्धकः।
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य खल्लमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ ९०॥
मर्दयेत् त्वग्निभानुभ्यां प्रपुटेत् त्रिदिनं लघु।
भावयेत् पुटयेदेभिर्वारांस्त्रींश्च पृथक् पृथक् ॥ ९१॥

मातुलुङ्गवरावह्नि—स्वम्लवेतसमार्कव—
हयमाराद्र्रकरसैः पाचितो लघु वह्निना ॥ ९२ ॥
वातपि ।कफोत्क्लेशान् ज्वरान् संमर्दितानपि ।
सन्निपातं निहन्त्याशु सर्वाङ्गैकाङ्गमारुतान् ॥९३॥
सेवितश्च सितायुक्तो मागधीरजसायुतः ।
मधुकाद्र्रकसंयुक्तस्तद्व्याधिहरणौषधैः ॥ ९४ ॥
रोगिणा सेवितो हन्ति व्याधिवारणकेशरी ।
क्षयमेकादशविधं शोषं पाण्डुं क्रिमिं जयेत् ॥९५॥
कासं पञ्चविधं श्वासं मेहमेदोमहोदरम् ।
अश्मरीं शर्करां शूलं प्लीहगुल्मं हलीमकम् ।
सर्वव्याधिहरा बल्यो वृष्यो मेध्यो रसायनः ॥९६॥

क्षयकेसरीरसे—रविस्ताम्रम्, नागं=शीसकम्, विमला=रौप्य माक्षिक भस्म, शिला=मनःशिला शिलाजतु वा, उभययोगेऽपि न हानिः, खर्परकम् । (अ. १-१५४) यशद्भस्म—तालं=हरितालम्, वराटं=कपर्दभस्म, मणिरागं=हिङ्गुलकम्. वराटिका च माणिक्य मिति पाठे—माणिक्य स्वनामख्यातरक्तवर्णरत्नम्, एतद्योगे गुणा-धिक्यं स्यात् । राजपट्टं=कान्तपाषाणभेदः, तदभावे गोदन्ता इति गो. टो. । अभ्रादिगन्धान्तमेकीकृत्य मर्दयेत्, तदनुचित्रक-रसेन त्रिदिनं भावयित्वा मर्दयित्वा च लघु पुटेत्, एवं अर्कमूलस्व-रसेन, तत एभिर्वक्ष्यमाणैर्मातुलुङ्गादिभिस्त्रीन्वारान् पृथक् पृथक्

भावयेत् पुटयेच्चेति शेषः। इत्थं लघुवह्निना=लघुपुटेन पाचितो ज्वरान्निहन्ति इत्याद्यन्वयः। सम्मर्दितान् परस्परसम्मिलितान् यथाक्षये विषमयोगः। सर्वाङ्गैकाङ्गमारुतान्=सर्वाङ्गगतान् एकाङ्गगतांश्च वायून्। तद्व्याधिहरौषधैः=तत्तद्रोगहरौषधानुपानैः। लघुवह्निनेति पुनः कथनं पाके, औषधिमानह्रासो न भवेत् पाकश्च सम्यक् सम्पद्यतेत्येतदर्थम्। वरा=त्रिफला, वह्नि=र्निम्बुको न तु चित्रका द्विरुक्तिभीतेः, वह्निर्दीप्तः। वै. श. सि.। मार्कवो भृङ्गराजः, हयमारः कनेर इति, सम्मर्दितान्=परस्परमिलितान्, मागधीरजसा=पिप्पलीचूर्णेन। पुस्तकान्तरे यक्ष्मणि योगत्रयम्—

चन्दनं मधुकं क्षीरं पीतं रुधिरवान्तिजित्।
भृङ्गराजस्य पत्रन्तु चूर्णितं मधुना सह।
गोलकं धारयेदास्ये कासारिष्टप्रशान्तये।
पिवेच्छान्ति प्रशान्त्यर्थं क्षौद्रैश्छिन्नरुहारसम्॥ ८८-९६॥

भाषा—अभ्रक, रससिन्दूर, लौह, ताम्र, सीसक, कांस्य, मण्डूर, रौप्यमाक्षिक, मनसिल, या शिलाजीत, वंगभस्म, खपरियाभस्म, हड़ताल, शंखभस्म, सुहागा, स्वर्णमाक्षिक, वैक्रान्त, कान्तलौह, स्वर्ण, मूंगा, मोती, कौड़ीभस्म, हिंगुल, चुम्बक पत्थर की भस्म, गन्धक, प्रत्येक द्रव्य सम भाग ले। सबको इकट्ठा कर खरल में चूर्ण करे और चीते के क्वाथ की भावना देकर लघुपुट दे इस प्रकार तीन वार करे। इसी प्रकार आक की भावना देकर तीन पुट दे। फिर मातुलुङ्ग, त्रिफला, चित्रक, अम्लवेत, भांगरा, कनेर, अदरक इनके रसों से पृथक तीन भावना दे। प्रत्येक भावना के बाद लघुपुट दे। स्वांगशीतल होने पर पीस कर

रखें। इसके खाने से वात पित्त कफ के रोग तथा बढ़े हुए ज्वर भी दूर हो जाते हैं। सन्निपात ज्वर, सर्वाङ्गवात, एकाङ्ग वात, इन सबको शीघ्र दूर करता है। इसे मिश्री और पिप्पली के चूर्ण के साथ खावें या शहद अदरक के रस से चाटें। भिन्न २ रोगों की नाशक औषधों के साथ रोगियों के उन उन रोगों को दूर करता है। यह रोग रूपी हाथी के लिए सिंह के समान है। ग्यारह लक्षणयुक्त क्षय, शोष, पाण्डु, क्रिमि, पांचों प्रकार की खांसी, श्वास प्रमेह, मेदोरोग, महोदर, अश्मरी, शर्करा, शूल, प्लीहा, गुल्म, हलीमक आदि रोगों का नाश करता है, बल बढ़ाता है, वृष्य है, मेधावर्धक तथा रसायन है। मा० १ र. ॥ ८८-९६ ॥

क्षयारिः—

भस्मत्वं समुपागतो विकृतको हेम्ना मृतेनान्वितः।
पादांशेन कणाऽऽज्यवेल्लसहितो गुञ्जोन्मितः सेवितः।
यक्ष्माणं ज्वररोगपाण्डुगुदजान् श्वासञ्च कासामयं।
दुष्टाञ्च ग्रहणीं क्षतक्षयमुखान् रोगाञ्जयेद्देहकृत् ॥९७॥

वैक्रान्तरसायनापरपर्यायक्षयारिरसे—विकृतको=वैक्रान्तभस्म विधिकृतमित्यपपाठः, हेम्नामृतेन=सुवर्णभस्मना, पादांशेन=वैक्रान्तचतुर्थांशेन, अन्वितो=युक्तः, कणाज्यवेल्लसहितः=कणा=पिप्पली, आज्यम्=घृतम् वेल्लं=विडङ्गम्, एतेषां चूर्णेन (माषकद्वयेन) सहितो=युक्तो यक्ष्मादिरोगाञ्जयेत्। देहकृत्=शरीरपुष्टिकरः ॥९७॥

भाषा—वैक्रान्तभस्म चार तोले, स्वर्ण एक तोला, दोनों घोट पीस रखे। क्षयारिरस एक रत्ती वायविडङ्ग पीपल घी मिला-

खावें तो यक्ष्मा, ज्वर, पाण्डु, बवासीर, श्वास, कास, दुष्ट ग्रहणी तथा क्षतक्षय प्रधान रोग दूर होते हैं। मा० ½ र.। ९७॥

क्षयसंहारः—

लीढो व्योषवरान्वितो विमलको युक्तो घृतैः सेवितो
हन्यात् हृद्गददुर्जयं श्वयथुकं पाण्डुप्रमेहारुचिम्।
शूलार्त्ति ग्रहणीञ्च गुल्ममतुलं यक्ष्मामयं कामलाम्।
सर्वान् पित्तमरुद्गदान् किमपरैर्योगैरशेषामयान् ॥९८॥

क्षयसंहारे—विमलकः=स्वर्णमाक्षिकभस्म (१ र.) व्योषवरान्वितो=व्योषं=त्रिकटु तस्य रक्तिकाषट्कम्, वरा=त्रिफला तस्या माषकत्रयम्, ताभ्यामन्वितो=युक्तः। घृतैः=गव्यघृतैर्नवनीतेन वा युक्तः, लीढ=आस्वादितः। हृद्गददुर्जयं=हृद्रोगेण दुर्जयं=कठिनम्, श्वयथुकं=शोथं हृत्कपाटविकृतिजन्यमित्यर्थः। अशेषामयान्=सकलरोगान् तत्तदनुपानैर्जयेत् ॥९८॥

भाषा—रौप्यमाक्षिक ले उसे सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला इन सबका चूर्ण तथा घी मिलाकर चाटें तो भयंकर हृदय रोग, सूजन, पाण्डु, प्रमेह अरुचि, शूल, ग्रहणी, गुल्म, यक्ष्मा, कामला, सब प्रकार के पित्त और वायु के रोग शान्त होते हैं। यही सब रोगों को नाश करता है तो अन्य दवाओं की आवश्यकता नहीं। मात्रा आधी रत्ती ॥ ९८ ॥

रजतादिलौहम्ः—

भस्मीभूतं रजतममलं तत्समं व्योमभानू।

सर्वैस्तुल्यं त्रिकटुकवरं सारघाज्येन युक्तम् ।
लीढं प्रातः क्षपयतितरां यक्ष्मपाण्डूदरार्शः ।
श्वासं कासं नयनजरुजः पित्तरोगानशेषान् ॥९९॥

रजतादिलौहे—अमलं=शोधितं निरुत्थम्, रजतं=रौप्यभस्म, १ भा. व्योमभानू=अभ्रताम्रभस्मनी तत्समं=विमलसमं मिलितं १ र.। सर्वैर्विमलव्योमभानुभिस्तुल्यं, त्रिकटुकवरं त्रिकटु=व्योषं (१॥ भा.) वरा=त्रिफला १॥ भा.। सारघाज्येन=सरघा=मधुमक्षिका तस्या इदं सारघं=मधु, आज्यं=घृतमेताभ्यां विषमभागाभ्यां युक्तं प्रातर्लीढम्। क्षपयतितराम्=त्वरितं दूरी करोति। इदं योगत्रयं रसेन्द्रचूडामणेः क्रमेण १०-६६। १०-६२। १४-३८। अध्यायेषु श्लोकाः ॥९९॥

भाषा—चांदी १ भा. अभ्रक ½ भा. ताम्र ½ भा. मिलित त्रिकटु त्रिफला सबके समान २ भा० मधु और घी मिला प्रातः चाटने से क्षय, पाण्डु, उदर, अर्श श्वास, कास, नेत्ररोग, सब पित्त रोग दूर होते हैं। ये तीन योग र० ई० चू० से उद्धृत हैं। क्रम से अध्याय श्लो० १०-६६, १०-६२, १४--३८। मात्रा-१ रत्ती ॥९९॥

नित्योदयो रसः—

सुशुद्धं पारदं गन्धं प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ।
ततः कज्जलिकां कृत्वा मर्दयेच्च पृथक् पृथक् ॥१००॥
बिल्वाग्निमन्थश्योणाकाः काश्मरी पाटला बला ।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम् ॥ १०१ ॥

विदारी बहुपुत्रीं च एषां कर्षैं रसैर्भिषक् ।
सुवर्णं रजतं ताप्यं प्रत्येकं शाणमानकम् ॥ १०२ ॥
पलमात्रन्तु कृष्णाभ्रं तदर्धं च शिलाह्वयम् ।
जातीकोषफले मांसी तालीशैलालवङ्गकम् ॥१०३॥
प्रत्येकं कोलमानन्तु वासानीरैर्विमर्दयेत् ।
शोषयित्वाऽऽतपे पश्चाद्विदारीरसमर्दितम् ॥ १०४ ॥
द्विगुञ्जाभां वटीं खादेत् पिप्पलीमधुसंयुताम् ।
नाम्ना नित्योदयश्चायं रसो विष्णुविनिर्मितः ॥१०५॥
पञ्चकासान् निहन्त्याशु चिरकालोद्भवानपि ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ १०६ ॥
धातुस्थं विषमाख्यश्च तृतीयकचतुर्थकम् ।
अर्शांसि कामलां पाण्डुमग्निमान्द्यं प्रमेहकम् ।
सेवनादस्य कन्दर्परूपो भवति मानवः ॥ १०७ ॥

नित्योदये—शुक्तिसम्मित=मर्धपलम् । स्यात्कर्षाभ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा । शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयमिति (शा. ध. ख. १ अ. १. २४) अग्निमन्थो=ऽरणी इति, श्योनाको=ऽरलुः, काश्मरी=कुम्हार इति, पाटला=पाडल इति, बला=खरेटी इति, धात्री=आमलकी, बृहती=बड़ी कटेली इति, वृषपत्रकं=वासापत्रम्, बहुपुत्री=शतावरी । कज्जलीं बिल्वादीनां पृथक्कर्षरसेन क्रमेण मर्द

येत् । ततः शाणमानकं=मासचतुष्टयं सुवर्णादित्रयं दत्वा पलमात्रं कृष्णाभ्रम् । अर्धपलं शिलाह्वयं=शिलाजतु न तु मनःशिला । क्षये गिरिजतु, शिलाह्वयं वा भिषगप्रमत्तः इति योगरत्नाकरचरकवचनाभ्याम् । शिलाह्वयं कर्पूरमित्यन्ये तदपि युक्तमेव । ताप्यं=स्वर्णमाक्षिकं जातीकोषफले=जायफल जावित्री इति, मांसी=बालछड़ इति, तालीसं=तालीसपत्रम्, एला=क्षुद्रैला, कोलमान=मर्धकर्षम् । वासानीरैर्विदारीस्वरसैश्च मर्दयित्वा द्विरक्तिकावटी पिप्पली मधुना देया । शुष्ककासे तु—सैन्धवमरुवकपत्ररसेन, सरक्ते श्लेष्मणि वासापत्ररसमधुना, लाक्षारसेन वा । पुष्ट्यर्थं बलवर्धनार्थं चास्य प्रयोगो भवति । कूष्माण्डखण्ड-वासाकूष्माण्डखण्ड-वासावलेह—च्यवनप्रास—अमृतप्रासघृत-छागलाद्यघृत—एलादिगुटिका-रससिन्दूर-प्रवालपञ्चामृता एतेऽपि यथावसरं क्षये सिद्धाः । सुवर्णमौक्तिकवराटप्रवालहारिणशृङ्गयोगाः सर्वविधेऽपि क्षये विशिष्टमुपकुर्वन्ति ॥१००-१०७॥

इति यक्ष्माधिकारः ।

भाषा—पारा, गन्धक प्रत्येक दो कर्ष ले कज्जली कर बेल, अग्निमन्थ, अरलू, गम्भारी, पाटला इनकी छाल, बलामूल, नागरमोथा, पुनर्नवा, आंवला, बड़ी कटेरी, बांसे के पत्ते, बिदारीकन्द, शतावर इन सब के एक एक कर्ष रस से अलग २ मर्दन कर स्वर्ण, चांदी, स्वर्णमाक्षिक इनके भस्म प्रत्येक द्रव्य एक शाण, कृष्णाभ्रक की भस्म १ पल, शिलाजीत ½ पल, जावित्री, जायफल, बालछड़, तालीशपत्र, छोटी इलायची के बीज तथा लौंग प्रत्येक का चुर्ण आधा कर्ष ले सबको बांसे के रस से मर्दन कर धूप में

सुखा विदारीकन्द के रस से मर्दन कर दो रत्ति की गोली बना ले। इसे पिप्पली के चूर्ण और शहद से खावे। यह नित्योदय रस, त्रिष्णु का बनाया हुआ है। इससे पांचों प्रकार की पुरानी खांसी भी दूर होती है। अति उग्र राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, धातुगत ज्वर, विषम ज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक, बवासीर, कामला, पाण्डु रोग, अग्निमान्द्य तथा प्रमेह इसके सेवन से दूर होते हैं। इसका सेवन करने वाला कामदेव के समान रूपवान् हो जाता है। मा० ३ र० ॥१००-१०७॥

इति राजयक्ष्मचिकित्सा

अथ कासचिकित्सा

बृहद्रसेन्द्रगुटिका—

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च।
ताम्रस्य हरितालस्य लौहस्य च विषस्य च॥ १॥
मनः शिलायाः तारणां बीजस्य कनकस्य च।
मरिचस्य च सर्वेषां समं चूर्णं प्रकल्पयेत्॥ २॥
जयन्ती चित्रकं माणं खण्डकर्णोऽथ मण्डुकी।
शक्राशनं भृङ्गराजं केशराजं तथाऽऽर्द्रकम्॥ ३॥
निगुण्डीस्वरसेनैषां कर्षमात्रेण मर्दयेत्।
कलायपरिमाणां तु वटिकां कारयेद् भिषक्।
आर्द्रकस्वरसेनैव पञ्चकासं व्यपोहति॥ ४॥

हन्ति कासं तथा श्वासं यक्ष्माणं सभगन्दरम् ।
अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम् ।
रसायनी च वृष्या च बलवर्णप्रसादिनी ॥ ५ ॥
बृंहणं मधुरं स्निग्धं मत्स्यं मांसञ्च जाङ्गलम् ।
घृतपक्वं सदा भक्ष्यं रूक्षं तीक्ष्णं विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

बृहद्रसेन्द्रगुडिकायाम्—क्षाराणां=स्वर्जि-टङ्क-यवक्षाराणाम् । कनकस्य=धत्तूरस्य, विषं पृथगेव जयन्त्याद्यन्यतमस्वरसेन मसृणीकृत्य मसृणां कज्जलीं तत्र दत्वा मृदित्वा च शेषद्रव्याणि प्रक्षिपेत् । जयन्ती जैंत इति, माणं=मानकन्दः, खण्डकर्णो=वज्रकन्दः=शकरकन्द इति । र. यो. सा. तु जङ्गलीसूरण इत्युक्तम् । मण्डूकी=मण्डूकपर्णी ब्राह्मी वा, शक्राशनं=भांग इति, एतेषां प्रत्येकं कर्षमात्रेण स्वरसेन मर्दयेत् । घस्रमात्रेणेति पाठान्तरे-प्रत्येकं स्वरसेन दिनमेकं विमर्दयेत् । कलायपरिमाणां=कलायो मटर इति तत्प्रमाणाम् । सज्वरे कासे मुखशोषदाहपिपासादिषु—एवं जीर्णकासे उरोहृदयशूलेषु कफतरलीकरणार्थमप्यस्य प्रयोगः । हरितालविषयोगसत्वादस्य प्रयोगे बृंहणमधुरादिपथ्यं योज्यम् ॥१-६॥

भाषा—पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, ताम्र, हड़ताल, लौह विष, मनसिल, यवक्षार, सर्जिक्षार, सुहागा, धतूरे के बीज, काली मिरच, एक एक कर्ष कज्जली में मिला जयन्ती, चीता, माणकन्द, शकरकन्द, मण्डूकपर्णी, भांग, भांगरा, केशराज, अदरक तथा संभालू इनके एक एक कर्ष रस से पृथक् घोट मटर के समान

गोली बना अदरक के रस से खावें तो पांचों प्रकार की खांसी दूर होती है। यह गुटिका खांसी, श्वास, राजयक्ष्मा, भगन्दर, अग्निमान्द्य, अरुचि, शोथ, उदररोग, पाण्डु, कामला को दूर करती है। रसायन और वृष्य है, बल और वर्ण को बढ़ाती है। इस रस के सेवन काल में बृंहण, मधुर, स्निग्ध द्रव्य तथा मछली, जांगल मांस और घी से पके हुए पदार्थ सदा खाने चाहियें। रूखा और तीक्ष्ण आहार वर्जित है। भा० १ र० ॥१—६॥

अमृतार्णवो रसः—

पारदं गन्धकं शुद्धं मृतलौहञ्च टङ्कणम्।
रास्ना विडङ्गं त्रिफला देवदारु च चित्रकम् ॥ ७॥
अमृता पद्मकं क्षौद्रं विषञ्चैव विमर्दयेत्।
द्विगुञ्जं वातकासार्त्तः सेवयेदमृतार्णवम् ॥ ८॥

अमृतार्णवे—रास्ना=कुलिञ्जन इति, देवदारुणः सारो ग्राह्यः, अमृता=गुडूची, पद्मकम्=पद्माख्यां इति तस्य त्वक् ग्राह्या। उत्कटः वातकासे (हूपिंग कफ) सततकासवेगे हृदयपार्श्वमस्तकादिषु वेदनायां कफहीनकेवलनिष्ठीवनमात्रनिर्गमे सत्यसति वा ज्वरे मधुना प्रयोगः। अन्यत्र वातकासे दुग्धसरेण दधिसरेण वा। चित्रकमत्र कटुत्रयमिति पाठ उचित एव ॥७—८॥

भाषा—पारा, गन्धक, लौह, भुना सुहागा, कुलिञ्जन, वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, देवदारु, चीता, गिलोय, पद्माख, विष समभाग कज्जली में मिला खरल कर दो रत्ती की मात्रा मधु

के साथ वातकास के नाश के लिए सेवन करावें। इसका नाम अमृतार्णव रस है ॥ ७-८॥

पित्तकासान्तको रसः

भस्म ताम्राभ्रकान्तानां कासमर्दत्वचो रसैः।
मुनिजैर्वेतसाम्लैश्च दिनं मद्यं सुपिण्डितम् ॥ ९ ॥
निष्कार्धं पित्तकासार्तो भक्षयेच्च दिनत्रयम्।
कासश्वासाग्निमान्द्यञ्च क्षयञ्चापि निहन्त्यलम् ॥१०॥

पित्तकासान्तके—कासमर्दत्वच इति कासमर्दक्षुपस्याल्पत्वात्पञ्चाङ्गस्य ग्रहणमुचितं पत्ररसैर्वा। त्वच इत्यत्र वरा इति पाठस्तूचित एव त्वच इति तु क्वाचित्कोऽपपाठः। कासमर्दः=कसौंदी इति, मुनिजै=रगस्त्यपत्रजैर्वेतसाम्लै=रम्लवेतसफलोद्भवैः। निष्कार्धं=माषकद्वयम्, व्यावहारिकी मा. २ र.। पित्तकासे ज्वरपिपासामुखवैरस्यादिषु वासकपत्ररसमधुना, अग्निमान्द्यश्वासकासादौ च यथोक्तानुपानेन योज्यः। क्वचिद्रसभस्मनोऽपि योगोऽत्र दृश्यते। अलमिति पर्याप्त्यर्थे। केवलोऽपि कासमर्दरसस्त्रिश्चतुर्वा पायितो बालनां श्वासनालीशोथजं सज्वरकासं (ब्रोन्को निमोनिया) त्रिभिर्दिनैर्नाशयति कोष्ठशुद्धिञ्च करोति विशेषतो यकृद्दोषे, इत्यस्माकमनुभवः ॥९-१०

भाषा—ताम्र, अभ्रक, कान्तलौह इनके भस्म समभाग ले कसौंदी पञ्चाङ्ग में अगस्त के फूल अम्लवेत इनके रस से एक एक दिन मर्दन कर अच्छी प्रकार गोली बांध रखे। इसकी आधे

निष्क की मात्रा खाने से पित्त कास तीन दिन में अच्छा होता है। कास, श्वास, अग्निमांद्य तथा क्षयरोग को भी यह दूर करता है। मात्रा आधी रत्ती ॥९-१०॥

काससंहारभैरवो रसः—

रसगन्धकताम्राभ्र–शङ्खटङ्कणलौहकम् ।
मरिचं कुष्ठतालीशं जातीफललवङ्गकम् ॥ ११ ॥
कार्षिकं चूर्णमादाय दण्डेनामर्द्य भावयेत् ।
भेकपर्णी केशराज–निर्गुण्डी–काकमाचिकाः ॥१२॥
द्रोणपुष्पी शालपर्णी ग्रीष्मसुन्दरकस्तथा ।
भार्गी हरीतकी वासा कार्षिकैः पत्रजै रसैः ॥१३॥
वटिकां कारयेद्वैद्यः पञ्चगुञ्जाप्रमाणतः ।
श्रीमद्गहननाथेन काससंहारभैरवः ।
रसोऽयं निर्मितो यत्नात् लोकरक्षणहेतवे ॥ १४ ॥
वासाशुण्ठीकण्टकारी–क्वाथेन पाययेद् बुधः ।
वातजं पैत्तिकं कासं श्लैष्मिकं चिरजं तथा ॥ १५ ॥
कासं नानाविधं हन्ति श्वासमुग्रमरोचकम् ।
बलवर्णकरः श्रीदः पुष्टिदः कान्तिवर्धनः ॥ १६ ॥

कासंसहारभैरवे—कुष्ठं=कूट इति, कार्षिकं=प्रत्येकं कर्षमितं दण्डेनामर्द्य=प्रथमं दण्डेन मसृणीकृत्य ततो भावना। भेकपर्णी=

मण्डूकपर्णी तदभावे ब्राह्मी, द्रोणपुष्पी=गूमा इति, ग्रीष्मसुन्दरकः (ग्रहणी १११ श्लोके) पारदप्रकरणे अनेकशोऽस्य नाम दृश्यते। कार्षिकैः=कर्षप्रमाणैः प्रत्येकद्रव्यरसैरित्यर्थः। वातकासे कासवेगादेव श्वासाधिक्ये जीर्णज्वरे हृत्पार्श्ववेदनायां पैत्तिककासे च पिपासामुखतिक्तताद्युपसर्गेषु वासादीनां प्रत्येकमष्टमाषकमितमादाय तत्क्वाथेन मधुना च देयः ॥११-१६॥

भाषा—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, शङ्ख इनके भस्म, सुहागा, लौह, मिरच, सूंठ, तालीशपत्र, जायफल, लौंग एक २ कर्ष कज्जली में मिला मण्डूकपर्णी, केशराज, संभालू, मकोय, गूमा, शालपर्णी, ग्रीष्मसुन्दरक, भार्गी, हरड़, बाँसा इनके पत्तों के एक २ कर्ष रस से भावना दें पांच रत्ती की गोली बनावें। यह रस बड़े यत्न से लोकरक्षा के निमित्त श्रीमान् गहननाथ ने बनाया था। इसका नाम काससंहारभैरव है। इस रस को बांसा, सोंठ, छोटी कटेली इनके एकत्र क्वाथ से पिलावें। यह वातज, पित्तज, श्लेष्मज वा पुरानी खांसी तथा अन्य किसी भी प्रकार की खांसी को दूर करता है। उग्र श्वास तथा अरुचि को हटाता है बल वर्ण को बढ़ाता है। श्रीदायक, पुष्टिदायक है, कान्ति को बढ़ाने वाला है ॥११-१६॥

लक्ष्मीविलासो रसः—

शुद्धसूतं सतालञ्च तालार्धं रसखर्परम्।
वङ्गं ताम्रं घनं कान्तं कांस्यं गन्धं पलं पलम् ॥१७॥
केशराजरसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम्।

कुलत्थस्य रसेनैव भावयेच्च पुनः पुनः ॥ १८ ॥
एलाजातीफलाख्यञ्च तेजपत्रं लवङ्गकम् ।
यमानी जीरकञ्चैव त्रिकटु त्रिफलासमम् ॥ १९ ॥
नतं भृङ्गं वंशगर्भं कर्षमात्रञ्च कारयेत् ।
भावयेच्च रसेनैव गोलयेत् सर्वमौषधम् ।
छायाशुष्का वटी कार्य्या चणकप्रमिता शुभा ॥ २० ॥
शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वकासनिवृत्तये ।
मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात् स्निग्धभोजनम् ॥२१॥
क्षयं कासं तथा श्वासं सज्वरं वाऽथ विज्वरम् ।
हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम् ॥ २२ ॥
अर्शो नाशं करोत्येव बलवृद्धिं च कारयेत् ।
वर्जयेच्छाकमम्लञ्च अष्टद्रव्यं हुताशनम् ॥ २३ ॥

लक्ष्मीविलासे—रसः=खर्परो यशदभस्म वा। घन=मभ्रभस्म तालं कज्जलीं च पृथक् पृथक् मसृणीकृत्य तत एकीकृत्य भृङ्गराजस्य कुलत्थस्य द्विदलविशेषस्य च कषायेण त्रिदिनं मर्दनं भावनं च। तदनु एलादिवंशगर्भान्तानां प्रत्येकं कर्षमितक्काथेन सप्तभावना, नतं=तगरम, भृङ्गं=दारुसिता, वंशगर्भं=वंशलोचनम्। वंशलोचनस्य तु चूर्णमेव देयम्। सशोथे जीर्णकासकृशे घनकफे श्वास-प्रबलतायां च विशेषतयोपकरोति ॥१७–२३॥

भाषा—पारा एक पल, गन्धक एक पल दोनों की कज्जली

शुद्ध हड़ताल खर्परभस्म ½ पल, वंग, ताम्र, अभ्रक, कान्तलौह, कांस्य इनके भस्म, प्रत्येक एक २ पल, सबको केशराज के रस से तीन दिन भावना दे फिर कुलथी के क्वाथ से तीन दिन भावना दे। सूख जाने पर इसमें छोटी इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवायन, श्वेत जीरा, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, तगर, दारचीनी, वंशलोचन इनके चूर्ण एक २ कर्ष मिला दे। सबको पीस भांगरे और कुलथी की भावना दे छाया में सुखा चने के समान सुन्दर गोली बना शीतल जल से दे। सब प्रकार की खांसी निवृत्त होती है। मछली, मांस, दूध तथा स्निग्ध भोजन इसमें पथ्य है। यह क्षय, खाँसी, ज्वरसहित वा ज्वररहित श्वासरोग, हलीमक, पाण्डुरोग, शोथ, शूल, प्रमेह तथा बवासीर का नाश करता है। बल बढ़ाता है। इसमें शाक, खटाई, भुने हुए द्रव्य तथा आग सेकना वर्जित है ॥१७–२३॥

सर्वेश्वरो रसः—

रसगन्धकयोश्चूर्णमेकीकृत्याभ्रकं तथा।
हेमभिश्च समं कृत्वा मर्दयेद् यामकद्वयम् ॥ २४ ॥
त्र्यूषणानि लवङ्गैला टङ्कणं हेमतुल्यकम्।
कण्टकार्या रसैर्भाव्यमेकविंशतिवारकम् ॥ २५ ॥
शिग्रुबीजार्द्रकरसैः सप्तधा भावयेत् पृथक्।
रसः सर्वेश्वरो नाम कासश्वासक्षयापहः।

अनुपानं प्रयोक्तव्यं बिभीतकफलत्वचः ॥ २६ ॥

सर्वेश्वरे—हेमभिरिति=बहुत्वं सुवर्णस्यविशेषगुणकरत्वाभिप्रायेण, रसादिचतुर्णां प्रत्येकमेकं भागमादाय प्रहरद्वयं मर्दयित्वा, ततस्त्र्यूषणादिटङ्कणान्तानामपि हेमतुल्यकं=सुवर्णमान=मेकभागमादाय-कण्टकारीरसेनैकविंशतिभावना, शिग्रुबीजार्द्रकरसेन पृथक् सप्तभावनाश्च दत्वा हृद्रोगपार्श्वशूलयोरपि योज्या। मात्रा २ रक्तिः ॥ २४–२६ ॥

भाषा—पारा, गन्धक एक २ तोला ले कज्जली करें। फिर अभ्रक, स्वर्ण एक २ तोला डाल दो प्रहर मर्दन करें। फिर सोंठ, मिरच, पिप्पली, लौंग, छोटी इलायची, सुहागा एक २ तोला ले पूर्वोक्त द्रव्य में मिला खरल करें और छोटी कटेली के रस से इक्कीस बार भावना दे फिर सुहांजने के बीजों के रस से और अदरक के रस से पृथक् सात भावना दे गोली बना लें। यह सर्वेश्वररस खाँसी, दमा तथा क्षय रोग का नाश करने वाला है। इसके साथ अनुपान में बहेड़े के फल के छिलके का चूर्ण देना चाहिए। मा० २ र० ॥२४–२६॥

श्रृङ्गाराभ्रम्—

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत्।
कर्पूरं जातिकोषं सजलमिभकणा तेजपत्रं लवङ्गम्।
मांसी तालीशचोचे गजकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यम् ॥२७॥
पथ्या धात्री बिभीतं त्रिकटुत्वथ पृथक् त्वर्धशाणं द्विशाणम्।

एलाजातीफलाख्यं क्षितितलविधिना शुद्धगन्धाश्मकोलं
कोलार्धं पारदस्य प्रतिपदविहितं पिष्टमेकत्र मिश्रम् ।
पानीयेनैव कार्य्या परिणतचणकस्विन्नतुल्याश्च वट्यः
प्रातः खाद्याश्चतस्रस्तदनु च हि कियत् शृङ्गवेरं सपर्णम् ॥२८॥
पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमेतान् विकारान्
कोष्ठे दुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजो राजयक्ष्मक्षयञ्च ।
कासं श्वासं सशोथं नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान् ।
छर्दिं शूलाम्लपित्तं तृषमपि महतीं गुल्मजालं विशालम् ॥२९॥
पाण्डुत्वं रक्तपित्तं गरलभवगदान् पीनसं प्लीहरोगं ।
हन्यादामानिलोत्थान् कफपवनकृतान् पित्तरोगानशेषान् ।
बल्यो वृष्यश्च योगस्तरुणतरकरः सर्वरोगे प्रशस्तः
पथ्यं मांसैश्च यूषैः घृतपरिलुलितैर्गव्यदुग्धैश्च भूयः ॥३०॥
भोज्यं योज्यं यथेष्टं ललितललनया दीयमानं मुदा यत्
शृङ्गाराभ्रेण कामी युवतिजनशताभोगयोगादतुष्टः ।
वर्ज्यं शाकाम्लमादौ दिनकतिपयचित्स्वेच्छया भोज्यमन्यत्
दीर्घायुः काममूर्तिर्गतवलिपलितो मानवोऽस्य प्रसादात् ॥३१॥

शृङ्गाराभ्रे–कृष्णाभ्रचूर्णमिति कृष्णत्वसामान्यात् वज्रकृष्णाभ्रचूर्णमिति (र. इ. चि. ४-५) अन्यत्=कर्पूरादिधातक्यन्तं शाण-मानं=प्रत्येकं माषकचतुष्टयम् । जलं= बालकम् , इभकणा=गजपि-

प्पली; मांसी=बालछड़ इति, चोचं=दारुसिता, गजकुसुमं=नाग-केसरम्, गदं=कुष्ठम्, पथ्यादीनामर्धशाणं=माषकद्वयम्, एलाबीज-जातीफलयोः प्रत्येकं द्विशाणं=माषाष्टकं, क्षितितलविधिना=(१-१२०) गन्धाश्म=गन्धकम्, कोलमित=सर्वकर्षं शाणद्वयं वा 'तद्द्वयं कोल उच्यते' पारदस्य प्रतिपदविहितम्-पदं पदमिति प्रतिपदम् प्रतिलक्षणमित्यर्थः। पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु- अ० का० ३ नानार्थवर्गे श्लो० १००। लक्ष्म लक्षणमितितट्टीका। प्रतिपदं प्रतिलक्ष्यविहितं शोधितं बुभुक्षितमित्यर्थः, बुभुक्षितस्यैव प्रोक्तगुणाः सम्भाव्यन्ते। प्रतिपदविहितं स्वस्वप्रमाणेन प्रोक्तं वा पारदस्य=सूतस्य, कोलार्धं=माषकचतुष्टयं द्रव्यजातमित्यर्थः। एकत्रमिश्रं पानीयेनैव=जलेनैव पिष्टमित्यन्वयः। परिणतच-णकस्विन्नतुल्या=बृहत्प्रमाणाद्र्चणकसमानाः। सपर्णशृङ्गवेरं= पर्णपत्रेशृङ्गवेरखण्डं धृत्वाऽनुचर्वणीयम्, ततो जलपानम्। राजयक्ष्मक्षयं चेति राजयक्ष्मा फुस्फुसगतः क्षयः क्षयश्चात्र तद् व्यतिरिक्तो गण्डमाला, अस्थिसन्धियकृदन्त्रादिगतो ज्ञेयः। सततं ग्रथितश्लेष्मनिर्गमने कार्श्य-ज्वर-पार्श्वशूल-हृच्छूल-दुर्गन्धकफनिर्गमे वमने-श्वासकोपे वातश्लेष्मप्रधाने च रोगिणि, आर्द्रकरसमधुना, पर्णपत्ररसमधुना वासकपत्ररसमधुना वा योज्यः अस्य बहुगुण-पाठस्तु-अभ्युच्चयार्थमेव ॥२७-३१॥

भाषा—काले अभ्रक की भस्म दो पल, कपूर, जावित्री, सुगंध-बाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, दार-चीनी, नागकेशर, कूठ, धाय के फूल का चूर्ण ४-४ मासे, हरड़,

आँवला, बहेड़ा, सोंठ, मिरच, पिप्पली का चूर्ण २-२ माशे, छोटी इलायची, जायफल ८-८ माशे, भूधर यंत्र से शुद्ध की गई गंधक ½ तो०, पारा चौथाई तो० लें। कज्जली में मिला जल से घोट फूले चने के समान गोली बना चार गोलियाँ प्रातःकाल खाकर ऊपर से अदरक और पान चबावें। अन्त में जल पीवें।

अग्नि के दूषित होने से कोष्ठ में जो विकार उत्पन्न हुए हों उन्हें, तथा ज्वर, उदररोग, राजयक्ष्मा, कण्ठमाला, अन्त्रक्षयादि, कास, श्वास, सूजन, आँखों की निर्बलता, प्रमेह, मेदोरोग, वमन, शूल, अम्लपित्त, अत्यन्त प्यास, बड़ा गुल्मरोग, पाण्डु, रक्त पित्त, विष से होने वाले रोग, पीनस, प्लीहा, आमवात से होने वाले रोग, कफ और वात से होने वाले रोग तथा सब प्रकार के पित्त रोग, इन्हें निश्चय से शीघ्र ही दूर करता है।

यह रस बलदायक है, वृष्य है। इसके सेवन से मनुष्य तरुण हो जाता है। सभी रोगों में इसे प्रशस्त माना है। पथ्य में रोगी घी मिला मांस का रस, मूंग आदि के यूष, गौ का दूध तथा प्रसन्न सुन्दर स्त्रियों से परोसा यथेष्ट भोजन खावे। मनुष्य इसके सेवन से कामी होकर सौ स्त्री भोगने से भी सन्तुष्ट नहीं होता। इसके सेवन के समय प्रारम्भ में शाक, खटाई कुछ दिन के लिए छोड़ देनी चाहिए, अन्य यथेष्ट भोजन कर सकते हैं। इससे मनुष्य दीर्घायु, कामदेव के समान रूपवान और वलीपलित से रहित हो जाता है। यह कफ की शोषक प्रसिद्ध औषध है ॥२७-३१॥

सार्वभौमरसः—

जीर्णं सुवर्णं लौहं वा यद्यत्रैव प्रदीयते ।
तदायं सर्वरोगाणां सार्वभौमो न संशयः ॥३२॥

सार्वभौमे—शृङ्गाराभ्रयोगे सुवर्णं माषकत्रयं लौहं कर्षं वा, अधिकं दत्त्वा सार्वभौमो रसस्ततोऽप्यधिकफलदः ॥३२॥

भाषा—शृङ्गाराभ्ररस में यदि स्वर्ण ३ माशा वा लौह १ तो० भी डालें तो यह सावभौम रस होता है। यह उपरोक्त सब रोगों को नष्ट करता है। मा० १ र०॥३२॥

तरुणानन्द रसः—

कर्षद्वयं रसेन्द्रस्यशुद्धस्य गन्धकस्य च ।
कज्जलीकृत्य यत्नेन शुभे दृढशिलातले ॥ ३३ ॥
विल्वाग्निमन्थः श्योणाकः काश्मरी पाटला बला।
मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम् ॥ २४ ॥
विदारी शतमूली च कर्षै रेषां पृथक् रसैः ।
मर्दयित्वा पुनर्वासा--स्वरसैर्दशतालकैः ॥ ३५ ॥
मर्दयेत्तत्र शुद्धाभ्रं रसस्य द्विगुणं क्षिपेत् ।
रसस्यार्धञ्च कर्पूरं तत्रैव दापयेद्भिषक् ॥ ३६ ॥
जातीकोषफले मांसी तालीशैलालवङ्गकम् ।
चूर्णं कृत्वा प्रयत्नेन माषमात्रं क्षिपेत पृथक् ॥३७॥

विदारीस्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं क्षयञ्चोग्रमुरःक्षतम् ॥ ३८ ॥
कासं पञ्चविधं श्वासं स्वरघातमरोचकम् ।
कामलां पाण्डुरोगञ्च प्लीहानं सहलीमकम् ॥३९॥
जीर्णज्वरं तृषां गुल्मं ग्रहणीमामसम्भवाम् ।
अतीसारञ्च शोथञ्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥४०॥
नाशयेदेष विख्यातस्तरुणानन्दसंज्ञितः ।
रसायनवरो वृष्यश्चक्षुष्यः पुष्टिवर्धनः ॥ ४१ ॥
सहस्रं याति नारीणां भक्षणादस्य मानवः ।
क्षीणता न च शुक्रस्य न च बुद्धिबलक्षयः ॥४२॥
द्विमाससमुपयोगेन निहन्ति सकलान् गदान् ।
शुक्रसन्दीपनं कृत्वा ज्वरं हन्ति न संशयः ॥४३॥
नारिकेलजलेनैव भक्ष्योऽयञ्च रसायनः ।
क्षीरानुपानाद् वृष्योऽयं न क्वचित् प्रतिहन्यते ॥४४॥

तरुणानन्दे—कज्जलीं बिल्वादिदशतमूल्यन्तानां प्रत्येकं कर्षरसेन क्वाथेन वा तदनुदशतोलकवासारसेन च मर्दयित्वा ततः रसस्य द्विगुणं=कर्षचतुष्टयं शुद्धाभ्रं=मारितं कृष्णाभ्रं वज्राभ्रं वा एव-मेककर्षं कर्पूरं जातीकोषादीनां प्रत्येकमेकमाषकमितं चूर्णं च दत्वा क्षीरविदारीस्वरसेन वटिका २ र० विधेया । द्विमासमुपयोगे-

नेति=अस्य प्रयोगो जीर्णज्वर-क्षय-उदरादिषु लघुपथ्यसेवनेन निर्भयं मासद्वयं विधेयः। शुक्रसंदीपनमिति=रसादिशुक्रान्तधातू-नामोजसश्च वृद्धिं कृत्वा सकलरोगनाशकः केवलदुग्धसेवने-ततोऽपि विशेषफलं ददाति। अस्य प्रयोगे फलरसास्तु देया एव ॥३३-३४॥

भाषा—स्वच्छ एवं दृढ़ पत्थर के खरल में पारा और गन्धक दो २ कर्ष डाल कज्जली करे। फिर इसे बेल, अरणी, अरलु, गम्भारी, पाटला, खरैटी, मोथा, पुनर्नवा, आँवला, बड़ी कटेली, बांसा के पत्ते, विदारीकन्द, शतावर प्रत्येक के स्वरस वा क्वाथ एक कर्ष से पृथक् २ मर्दन करे। फिर दस तोला बांसा के स्वरस से अभ्रक चार कर्ष, एक कर्ष कपूर, जावित्री, जायफल, जटामांसी, तालीसपत्र, छोटीइलायची, लौंग इन सब द्रव्यों का चूर्ण एक २ माशा मिला विदारीकन्द के रस से घोट गोली बना ले। इसके सेवन से अत्युग्र राजयक्ष्मा, क्षय, भयंकर उरःक्षत, पांचों प्रकार की खांसी, श्वास, स्वरभंग, अरुचि, कामला, पाण्डु, तिल्ली, हलीमक, जीर्णज्वर, प्यास, गुल्म, आम से उत्पन्न ग्रहणी, अतिसार शोथ, कुष्ठ, भगन्दर ये सब नष्ट होते हैं। इसका नाम तरुणानन्द रस है। यह उत्तम रसायन है, वृष्य है, आंखों के लिए हितकारी है, पुष्टिवर्धक है, इसके सेवन से पुरुष एक हजार स्त्री तक भोग सकता है वीर्य भी क्षीण नहीं होता, नाही बुद्धि और बल में कमी होती

है। इसको २ मास तक उपयोग करने से सब रोग नष्ट होते हैं। यह शुक्र को बढ़ा ज्वर को निसन्देह नाश करता है। इस रसायन को नारियल के जल के साथ सेवन करना चाहिए। दूध के अनुपान से यह वृष्य है। कहीं पर व्यर्थ नहीं जाता ॥३३–४४॥

महोदधि रसः—

सूतकं गन्धकं लौहं विषञ्चैव वराङ्गकम्।
ताम्रकं वङ्गभस्मापि व्योमकञ्च समांशकम् ॥ ४५ ॥
त्रिकटु[1] भद्रमुस्तं च विडङ्गं नागकेशरम्।
रेणुकामलकञ्चैव[2] पिप्पलीमूलमेव च ॥ ४६ ॥
एषाञ्च द्विगुणं भागं मर्दयित्वा प्रयत्नतः।
भावना तत्र दातव्या राजपिप्पलिकाम्बुभिः[3] ॥४७॥
मात्रा चणकतुल्या तु वटिकेयं प्रकीर्त्तिता।
कासं हन्ति तथा श्वासमर्शांसि च भगन्दरम् ॥४८॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कर्णरोगं कपालिकाम्।
हरेत् संग्रहणीरोगमष्टौ च जाठराणि च ॥
प्रमेहान् विंशतिञ्चैव चतुर्विध[4]मजीर्णकम् ॥४९॥
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न शीतवातातपमैथुनेषु।

१ पत्रं त्रिकटु मुस्तञ्च २ रेणुकामेलकम्।
३ जलपिप्पलीनिम्बुभिः ४ प्यश्मरीञ्च चतुर्विधाम् पा०।

यथेष्टचेष्टाभिरतः प्रयोगे नरो भवेत् काञ्चनराशिगौरः ॥५०॥

महोदधौ—वराङ्गकं=दारुसिता, व्योमक=मभ्रकभस्म, भद्रमुस्तं=नागरमुस्तकम्, सूतादिव्योमान्तानां प्रत्येकमेको भागः। त्रिकटूवादिप्रत्येकं भागद्वयम्। गजपिप्पलीक्वाथेन त्रिः सप्त वा भावयेत्। कपालिका यथा—कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तानां सैव शर्करा कपालिकेति पठिता सदा दन्तविनाशिनी। सु० नि० १६। ग्रहण्यां कासोदरशूलयोरस्य प्रयोगः सुखदः ॥४५॥–५०॥

भाषा—पारा, गंधक, लौह, विष, दारचीनी, ताम्र, वंग, अभ्रक एक २ तोला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, नागर मोथा, विडङ्ग, नागकेसर, रेणुका, आंवला, पिप्पलीमूल दो दो तोला मिला गजपिप्पली के क्वाथ से भावना दे चने के समान गोली बना रखें। इस के सेवन से खांसी, दमा, बवासीर, भंगदर, हृदय का शूल, पसलियों का दर्द, कान की पीड़ा, दन्त शर्करा, संग्रहणी, आठों उदर रोग, बीसों प्रमेह, चार प्रकार का अजीर्ण नाश होता है। इसके सेवन के समय खाने पीने में तथा सरदी, वायु, धूप एवं मैथुन में परहेज नहीं है। अपनी इच्छा के अनुकूल चेष्टाओं में लगा मनुष्य भी इसके सेवन से स्वर्ण राशि के समान लाली लिए गोरा हो जाता है ॥४५–५०॥

जया गुडिका—

सूतकं गन्धको लौहं विषं वत्सकमेव च।

विडङ्गं केशरं मुस्तमेलाग्रन्थिकरेणुकम् ॥५१॥
त्रिकटु त्रिफला चित्रं शुद्धं जैपालबीजकम् ।
एतानि समभागानि द्विगुणो गुड उच्यते ॥ ५२ ॥
तिन्तिडीबीजमानेन प्रातःकाले च भक्षयेत् ।
कासं श्वासं क्षयं गुल्मं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥५३॥
अजीर्णं ग्रहणीरोगं शूलं पाण्ड्वामयं जयेत् ।
अपाने हृदये शूले वातरोगे गलग्रहे ॥५४॥
अरुचावतिसारे च सूतिकाऽऽतङ्कपीडिते ।
जयाऽऽख्या निर्मिता ह्येषा भक्षणीया सुरैरपि ॥५५॥

जयागुडिकायाम—वत्सकं=कुटजत्वक् , वत्सको गिरिमल्लिका अ० । केसरं=नागकेसरम्, एला=क्षुद्रैला, ग्रन्थिकं=पिप्पलीमूलम्, रेणुकं=रेणुकाबीजम्, चित्रं=रक्तचित्रकमूलत्वक् , द्विगुणो गुड इति=सर्वचूर्णद्विगुणः पुराणो गुडः, तिन्तिडी=इमली इति, तद्-बीजप्रमाणा मात्रा देया । दुर्बलस्य क्षयजं क्षतजं कासं च विहाय पाण्डुरोगे कामलायां सति च कासे एवं यकृत्प्लीहवृद्धौ च कोष्ठशुद्धिकरत्वेनाप्यस्य प्रयोगः ॥५१-५५॥

भाषा—पारा, गन्धक, लौहभस्म, विष, इन्द्रजौ, विडंग, नागकेशर, मोथा, छोटी इलायची, पिप्पलामूल, रेणुका, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, शुद्ध जमालगोटे के बीज समभाग ले। कज्जली में मिला पीस सब का

दुगुना पुराना गुड़ डाल इमली के छोटे बीज के समान चपटी गोली बना प्रातःकाल ले। यह जया वटी खांसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, अजीर्ण, ग्रहणी, शूल, पाण्डु, गुदा का शूल, हृदय का शूल, वातरोग, गलग्रह, अरुचि, अतीसार तथा सूतिका रोग में लाभ करती है। यह वटी देवताओं के भी स्तवन योग्य है। मा. २ र. ॥ ५१–५५ ॥

विजया गुडिका—

सूतकं गन्धकं लौहं विषं चित्रकपत्रकम् ।
विडङ्गरेणुकामुस्तमेलाकेसरग्रन्थिकम् ॥ ५६ ॥
फलत्रिकं त्रिकटुकं शुल्वभस्म तथैव च ।
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ ५७ ॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ।
सूतायां ग्रहणीरोगे शूले पाण्ड्वामये तथा ।
हस्तपादादिदाहे च गुडिकेयं प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

विजयगुडिकायाम्—पत्रकम्-पत्रजम्, शुल्वभस्म=निरुत्थं ताम्रभस्म, सर्वचूर्णाद्द्विगुणः पुराणो गुडः। प्रमेहशूलग्रहण्यादिपु कासनिवृत्यर्थं देया। यकृत्क्रियाविकृतौ वृद्धौ च प्रशस्यते। मात्रा चतूरक्तिका ॥५६–५८॥

भाषा—पारा, गन्धक, लौह, विष, चीता, तेजपात, वाय-विडंग, रेणुका, मोथा, छोटी इलायची, नागकेशर, पिप्पलामूल,

हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली, ताम्र प्रत्येक सम भाग सब द्रव्यों से दुगुना पुराना गुड़ डाल गोली बना ले। खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिकारोग, ग्रहणी, शूल, पाण्डु और हाथ पैर की जलन में यह गोली बहुत उत्तम है। मा. २ र. ।।५६-५८।।

स्वच्छन्दभैरवो रसः—

रसमेकं द्विधा गन्धं गन्धतुल्यञ्च सैन्धवम् ।
ज्वालामुखीरसैः पञ्चदिनानि परिमर्दयेत् ।।५९।।
मूषिकायां निरुध्याथ पुटेद्रात्रौ च मध्यमम् ।
सर्वं भस्म यदा याति वल्लमेनं प्रयच्छति ।। ६० ।।
ग्रहण्यां[१] संग्रहण्यां च कासे श्वासे विशेषतः ।
उग्रासु[२] ज्वरतन्द्रासु योजयेत्सततं रसम् ।। ६१ ।।
अन्य रोगेषु तं दद्याद्रसं स्वच्छन्दभैरवम् ।
तुष्टिं पुष्टिम[३]सौ कुर्यात् सौकुमार्यञ्च कारयेत् ।। ६२ ।।

स्वच्छन्दभैरवे—सैन्धवस्य भागद्वयम्, ज्वालामुखीरसे=ज्वालामुखीभल्लातकमिति पूर्वे टीकाकृतः, ज्वालामुखी जयन्ती सा चतुर्विधा-श्वेता रक्ता पीता कृष्णा चेति शा. ध. टी.। आढ़मल्लः ख. २ अ. ११ श्लो. १३। ज्वालामुखी (जलजम्भुलमराठी, अथवा अगियाघास) र. यो. सा. भाषा। ज्वालामुखी। स्त्री। सूर्यावर्त्तं। वै. श.

---

१ अग्रहिण्या वा, २ रौद्रासु ३ हृष्टेः पा.।

सि.। पञ्चदिनं विमर्द्य रात्रौ मध्यमानलेन पुटेद्यथा पुटपाकश्च भवेदौषधिप्रमाणहानि र्न स्यात्। मा. २ र. ॥५९-६२॥

भाषा—पारा एक तोला, गन्धक दो तोले की कज्जली में सेंधानमक दो तोले मिला ज्वालामुखी के रस से पांच दिन तक खरल कर मूषा में बन्द कर रात्रिसमय मध्यपुट दे। जब सब भस्म हो जायं तो इसे पीसकर दो रत्ती की मात्रा में रोगी को दे। इससे ग्रहणी, संग्रहणी, विशेषकर खांसी तथा श्वास दूर होते हैं। जब ज्वर में उग्र तन्द्रा हो तब इसको दे। अन्य रोगों में भी स्वच्छन्दभैरव रस को दें तो लाभ होता है। यह तुष्टि, पुष्टि करता है तथा शरीर को सुकुमार करता है ॥५९-६२॥

रसगुडिका—

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः।
त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागा विभीतकः ॥६३॥
पञ्चभागस्त्वामला[१] च षड्गुणा सप्तभागिका।
भार्गी सर्वमिदं चूर्णं भाव्यं बब्बोलजैद्र वैः ॥ ६४ ॥
एकविंशतिवारञ्च मधुना गुडिका कृता।
विभीतकप्रमाणेन प्रातरेकान्तु भक्षयेत्।
कासं श्वासं हरेत् क्षुद्रा-क्वाथं तदनु कृष्णया ॥ ६५ ॥

रसगुडिकायाम्—आमला स्थाने वासेति पाठान्तरमेवोचितम्। तथा च रसगन्धकपिप्पल्यो हरीतक्यक्षवासकम्। षडुत्तरगुणं चूर्ण-

१ तथा वासा पाठः।

मिति-र. र. स. अ. १३-३७ । बब्बोलः=कीकर इति प्रसिद्धः, कण्टकी वृक्षो यस्य त्वक् चर्म शोधनाय प्रभवति, दन्तकाष्ठं च यस्य भवति तस्य त्वचः क्वाथैरित्यर्थः। विभीतकप्रमाणेन=तोलकमानेनेत्यर्थः। इयती मात्रा अहोरात्रमेकैव ग्राह्या। यत्र च कासवेगेनोपद्रवरूपेण श्वासः स्यात्तत्र चतूरक्तिमात्रया मधुना पुनः पुनर्देया। सिद्धफलेयं गुडिका ॥६३-६५॥

भाषा—पारा एक तोला, गन्धक दो तोला, पिप्पली तीन तोला, हरड़ चार तोला, बहेड़ा पांच तोला, आमले छः तोला, भार्गी सात तोला। सबको कज्जली में मिला बबूल के क्वाथ की इक्कीस भावना दे। शहद डाल बहेड़े के फल के समान वा एक कर्ष की गोली बना प्रातःकाल खावे और ऊपर से छोटी कटेली के क्वाथ में पिप्पली के चूर्ण का प्रेक्षप दे पीवे तो खांसी तथा श्वास नष्ट होते हैं। मा. ४ र. ॥६३-६५॥

रसेन्द्रगुडिका—

माक्षिकञ्च शिखिग्रीवमभ्रकं तालकं तथा।
एतांस्तु मिलितान् सर्वान् भावयेदार्द्रकद्रवैः।
रक्तिद्वयप्रमाणान्तु कल्पयेत् गुडिकां भिषक् ॥ ६६ ॥
जीर्णान्ने भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसाशनः।
पञ्चकासं क्षयं श्वासं रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ ६७ ॥
पाण्डुक्रिमिज्वरहरी कृशानां पुष्टिवर्धिनी।
शुक्रवृद्धिकरी चैषा अम्लपित्तविनाशिनी।

वह्निसन्दीपिनी श्रेष्ठा त्वरोचकविनाशिनी ॥ ६८ ॥

रसेन्द्रगुडिकायाम्—शिखिग्रीवं=तुत्थभस्म, आर्द्रकद्रवैः—सप्त भावना। जीर्णकासे गलक्षते सति-एवं क्षतक्षीणे चेयं देया। अत्र माक्षिकञ्चेत्यतः प्राक्—कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य स्वरसेन जयार्द्रयोः

शिलायां खल्लयेत्तावद्यावत्पिण्डं घनं भवेत् ॥

सौगन्धिकपलं शुद्धमर्धं मरिचटङ्कणमिति, पाठो बोध्यः। अन्यथा रसेन्द्रत्वाऽनुपपत्तेः ॥६६—६८॥

भाषा—स्वर्णमाक्षिक, तुत्थभस्म, अभ्रक, हड़ताल इनको समभाग पीस अदरक के रस से ७ भावना दे। दो रत्ती की गोली बना एक गोली अन्न के पच जाने पर खावें। दूध, मांस रस पथ्य हैं। यह पांच प्रकार की खांसी, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, पाण्डु, क्रमिरोग तथा ज्वर को नाश करती है। कृश पुरुषों को मोटा करती है, वीर्य बढ़ाती है, अम्लपित्त रोग को हटाती है, अग्नि का सन्दीपन करने में श्रेष्ठ है, अरुचि को नष्ट करती है। मा. १ र. ॥६६—६८॥

पुरन्दरवटी—

सूतकाद् द्विगुणं गन्धमेकधा कज्जलीकृतम्।
त्रिकटु त्रिफला चूर्णं प्रत्येकं सूतसम्मितम् ॥ ६९ ॥
अजाक्षीरेण संभाव्य वटिकां कारयेत् ततः।
आर्द्रकस्य रसैः सेव्या शीततोयं पिबेदनु ॥ ७० ॥
कासश्वासप्रशमनी विशेषादग्निवर्धिनी।

इयं यदि सदा सेव्या तदा स्याद् योगवाहिका।
वृद्धोऽपि तरुणः शक्तः स्त्री शतेषु वृषायते ॥ ७१ ॥

पुरन्दरवत्स्याम्—अजाक्षीरेण सम्प्रदायात् सप्तभावना। योगवाहिका=अनुपान वशात् विविधरोगहारिणी। जीर्णवाते हृदये वक्षसि च वेदनायां कासवेगेन चोद्भवे श्वासे, आर्द्रकरसमधुना कासे च प्रदेया। मा. ३. र. ॥६६-७१॥

भाषा—पारा १ तोला, गन्धक २ तोले की कज्जली में सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक तोला बकरी के दूध में ७ भावना दे गोली बना ले। इस गोली को अदरक के रस से सेवन कर ऊपर से ठण्डा पानी पीवे तो खांसी और श्वास नष्ट होते हैं। विशेषकर यह अग्निवर्धक है। यदि इस गोली को सदा सेवन किया जाय तो योगवाही होती है। इसके सेवन से बूढ़ा भी जवान के समान शक्त होकर सौ स्त्री तक भोग कर सकता है। मा. ३ र. ॥६६-७१॥

कासान्तको रसः—

सूतं गन्धं विषञ्चैव शालपर्णी च धान्यकम्।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं मरीचकम्।
गुञ्जाचतुष्टयं खादेन्मधुनाकासशान्तये ॥ ७२ ॥

कासान्तकरसे—मरिचस्य पञ्चभागाः। मनःकम्पे कफज्वरे अल्पकासवेगे प्रत्यहं त्रिश्चतुर्वा—आर्द्रकरसमधुना। सज्वरे उत्कटवातकासे पर्णपत्ररसमधुना, आर्द्रकसैन्धवेन वा योज्यः। मा. २ र. ॥७२॥

भाषा—पारा, गन्धक, विष, शालपर्णी, धनियां एक २ तोला, मरिचचूर्ण पांच तोला कज्जली में अन्य द्रव्य मिला जल से घोट गोली बना लें। इसे चार रत्ती मात्रा में शहद से खावें तो खाँसी शान्त होती है। मा. २ र. ॥७२॥

कासकुठारः—

हिङ्गुलं मरिचं गन्धो सव्योषं टङ्कणं तथा।
द्विगुञ्जश्चार्द्रकद्रावैः सन्निपातं सुदारुणम्।
कासं नानाविधं हन्ति शिरोरोगं विनाशयेत् ॥७३॥

कासकुठारे—व्योषं=त्रिकटु, कासे गले शूकवद्वेदनायामाचूषणमस्य। शिरसि हृदये पार्श्वयोश्च कासवेगाद्वेदनायां सति च ज्वरे मलबन्धे, आर्द्रकरससैन्धवेन, तुलसीपत्ररससैन्धवेन वा योज्यः। आर्द्रकफे दृष्टफलोऽयं योगः। प्रचारश्चास्य विशेषतः। मा. ३. र. ॥ ३७ ॥

भाषा—हिंगुल, मरिच, गन्धक, सोंठ, मिरच, पिप्पली, भुना सुहागा समभाग ले अदरक के रस से दो रत्ती की गोली बनावें, इसके सेवन से दारुण सन्निपात, नाना प्रकार की खांसी तथा शिर के रोग नाश होते हैं ॥७३॥

श्रीचन्द्रामृतलौहम्—

त्रिकटु त्रिफला धान्यं चव्यं जीरकसैन्धवम्।
दिव्यौषधिहतस्यापि तत्तुल्यमयसो रजः ॥ ७४ ॥
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक्।

प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ॥७५॥
एकैकां वटिकां खादेद् रक्तोत्पलरसाप्लुताम् ।
नीलोत्पलरसेनैव कुलत्थस्वरसेन च ॥ ७६ ॥
निहन्ति विविधं कासं दोषत्रयसमुद्भवम् ।
वातिकं पैत्तिकं चैव गरदोषसमुद्भवम् ॥७७॥
सरक्तमथ नीरक्तं ज्वरं श्वाससमन्वितम् ।
भ्रमतृड्दाहशूलघ्नं रुच्यं वन्हिप्रदीपनम् ॥ ७८ ॥
बलवर्णकरं वृष्यं जीर्णज्वरविनाशनम् ।
इदं चन्द्रामृतं लौहं चन्द्रनाथेन निर्मितम् ॥ ७९ ॥

चन्द्रामृतलौहे-जीरकं=श्वेतजीरकम्, दिव्यौषधिहतस्य=मनःशिलयामारितस्य । अत्र····प्रकृत त्रिश्चतुः पुटे मनःशिलां किञ्चिद्दद्यादिति र. इ. चि. ६. ५३ । यत्तु र. यो. सा. भाषायां रसार्णवाद्युक्त चतुषष्टि दिव्यौषधिभिर्हतस्येत्यर्थः कुतस्तत्र मूलं मृग्यम् । लोहपद्धत्युद्धृत रसकामधेनौ, इत्थं पठ्यते लौहमारणे—

क्वचित्सा शालहञ्जीति हरित्पर्णी च सा क्वचित् ।
दिव्यौषधीति सा क्वापि क्वचित्गर्तगलम्बुका ।७६१।

इत्यादिस्तत एव ज्ञेयम् । व्यवहारस्तु शिलयैव । सर्वसमानं लौहभस्म, नवगुञ्जामानावटी, व्यवहारस्तु द्विगुञ्जमात्रया, रक्तोत्पलं=कोकनदम् । कुलत्थः=कुलथी गहत इति । शमी=धान्यभेदः, इदं अनुपानत्रयं दोषभेदेन यथा लाभं वा । गरः=कृत्रिमं

विषम्। वासकपत्र दूर्वा लाक्षारसाद्यन्यतमेन मधुना सरक्ते जीर्ण-कासे प्रयुज्यते ॥७४-७६॥

भाषा—सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, धनियां, चव्य, श्वेत जीरा, सेंधानमक एक २ तोला और मन-सिल से भस्म किया हुआ लौह दस तोला सबको पीस नौ रत्ती की गोली बनालें। रोगी प्रातःकाल पवित्र होकर अमृतेश्वरी का चिन्तन कर लाल कमल के रस नीले कमल के रस वा कुलथी के क्वाथ से १-१ गोली का सेवन करे। यह तीनों दोषों से होने वाली विविध खांसियों को दूर करता है। वातिक, पैत्तिक, गर दोष से उत्पन्न रक्तसहित वा रक्तरहित कास श्वासयुक्त ज्वर इससे दूर होता है। भ्रम, तृष्णा, दाह, शूल नष्ट होते हैं। यह रुचिवर्धक, अग्निप्रदीपक, बलवर्धक, वर्णकर तथा वृष्य है। जीर्ण ज्वर को नष्ट करता है। यह चन्द्रामृतलौह चन्द्रनाथ ने बनाया है। भा. २ र. ॥७४-७६॥

श्रीचन्द्रामृतो रसः--

रसगन्धकलौहानां प्रत्येकं कार्षिकं क्षिपेत्।
टङ्कणस्य पलं दत्वा मरिचस्य पलार्धकम् ॥ ८० ॥
त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम्।
प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागी दुग्धेन पेषयेत्।
नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ८१ ॥

प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ।
एकैकां वटिकां खादेद् रक्तोत्पलरसेन च ॥ ८२ ॥
नीलोत्पलरसेनापि कुलत्थस्वरसेन च ।
छागीक्षीरेण मण्डेन केशराजरसेन च ॥ ८३ ॥
निहन्ति विविधं कासं वातरक्तसमुद्भवम् ।
वातश्लेष्मज्वरं कासं पित्तश्लेष्मज्वरं तथा ।
वातिकं पैत्तिकं वाऽपि गरदोषसमन्वितम् ॥ ८४ ॥
वासा गुडूचिका भार्गी मुस्तकं कण्टकारिका ।
समभागकृतं क्वाथं प्रत्यहं पाययेदनु ॥ ८५ ॥

चन्द्रामृते—(र. यो. सा. पाठानुसारेण) सैन्धवं=श्वेतस्फटिकाकृति ग्राह्यम् । न तु रक्तम् । रसादित्रयाणां प्रत्येकं कर्षः, टङ्कणस्य पलम्, मरिचस्यार्धपलम्, सर्वमेकीकृत्य छागीदुग्धेन ६ र. वटी कार्या । व्यवहारस्तु पञ्चरक्तिकया । अनुपानं यथासात्म्यं यथालाभं यथारोगञ्च विचार्य रक्तोत्पलादिभिस्तथाऽतिप्रवृद्धे श्लेष्मणि मधुमिश्रितेन यष्टीक्वाथेन, ज्वरे उध्वंसिकायां दिने रात्रौ च त्रिस्त्रिः पर्णपत्ररसमधुना, वातकासे च मरुवकपत्ररसेन सैन्धवान्वितेन, जीर्णकासे सरक्ते वा वासकपत्ररसमधुना, आनाहे आर्द्रकरसेन, औषधवीर्यवर्धनार्थं वासादिक्वाथेन ग्रन्थोक्तविधिना प्रयोज्यः । टङ्कणयुक्ता रसा गर्भपातभयाद्गर्भिण्यै न देयाः । अत्र लौहस्थाने-लौहाभ्रवंशलोचनानां प्रत्येकमर्धतोलकमधिकफललाभाय ददते ।

प्रसिद्धो दृष्टफलश्चायं विशेषतः कफतनूकरणाय प्रयुज्यते ॥८१-८७॥

भाषा--पारा, गन्धक, लौह एक २ कर्ष, भुना सुहागा एक पल, मिरच का चूर्ण ½ पल, सौंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चव्य, धनियां, श्वेत जीरा, सेंधा नमक प्रत्येक का चूर्ण एक तोला लें। कज्जली में मिला बकरी के दूध से पीस नौ रत्ती की गोली बना लें। प्रातःकाल पवित्र हो भगवती अमृतेश्वरी का चिन्तन कर रोगी इसे लाल कमल के रस, नीले कमल के रस, कुलथी के क्वाथ, बकरी के दूध, चावलों के मांड अथवा केशराज के रस से सेवन करे। इससे विविध कास, वात रक्त से उत्पन्न कास, वातश्लेष्मज्वर, वातश्लेष्मज खांसी, पित्तश्लेष्मज्वर और पित्तश्लेष्मज कास, वातिक, पैत्तिक, गर दोषज ज्वर, कास आदि रोग दूर होते हैं। इस गोली के साथ अनुपान में बांसा, गिलोय, भारंगी, मोथा, छोटी कटेली इन सब औषधों को समान भाग ले क्वाथ प्रतिदिन बनाकर पीवें। मा. ३ र. ॥८०-८५॥

अमृतमञ्जरी--

हिंगुलञ्च विषञ्चैव कणामरिचटङ्कणम् ।
जातिकोषं समं सर्वं जम्बीररसमर्दितम् ॥ ८६ ॥
रक्तिमानां वटीं कुर्यादार्द्रकद्रवसंयुताम् ।
वटीद्वयं त्रयं खादेत् सन्निपातं सुदारुणम् ॥ ८७ ॥
अग्निमान्द्यमजीर्णं च सामवातं सुदारुणम् ।
उष्णतोयानुपानेन सर्वव्याधिं नियच्छति ॥ ८८ ॥

कासं पञ्चविधं श्वासं सर्वाङ्गग्रहमेव च ।
जीर्णज्वरं क्षयं चापि हन्यादमृतमञ्जरी ॥८९॥

अमृतमञ्जर्याम्—योगोऽयं ज्वरे (४४-४५) समागतः । गुण-पाठस्तु क्वचिदधिकः । सर्वाङ्गग्रहः=शरीरस्य बन्धनवत् पीडा । कासे ज्वरातिसारे रोगान्तरे च यथोक्तानुपानैर्योज्या ॥८६-८९॥

भाषा--हिंगुल, विष, पिप्पली, मिरच, सुहागा, जावित्री सम भाग ले जम्बीरी के रस से खरल कर एक रत्ती की गोली बना दो तीन गोली अदरक के रस से खावें तो भयङ्कर सन्निपात, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, घोर आमवात नष्ट होता है । गरम पानी के अनुपान से सब रोगों का नाश करता है । पांच प्रकार की खांसी, श्वास, सर्वाङ्गवेदना, जीर्णज्वर, क्षय आदि नाश होते हैं । इसका नाम अमृतमञ्जरी है । यह रस ज्व० श्लो० ४४ में आ चुका है ॥८६-८९॥

कासान्तकः—

त्रिफला व्योषचूर्णञ्च समभागं प्रकल्पयेत् ।
मधुना सह पानात् तु दुष्टकासं नियच्छति ॥९०॥

कासान्तकरसस्य मधुना गुटिकां विधायाचूषणं कफं निस्सारयति मलबद्धतां चापहन्ति । मा. ८ र. ॥९०॥

हरड़, वहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पिप्पली चूर्ण को सम भाग मधु से सेवन करें तो दुष्ट खांसी दूर होती है ॥९०॥

बृहत्शृङ्गाराभ्रम—

पारदं गन्धकञ्चैव टङ्कणं नागकेशरम् ।
जातीकोषञ्च कर्पूरं लवङ्गं तेजपत्रकम् ॥६१॥
शुद्धकृष्णाभ्रचूर्णन्तु चतुष्कर्षं प्रयोजयेत् ॥ ६२ ॥
तालीशं घनकुष्ठं च मांसी त्वक् धातकी तथा ।
एलाबीजं त्रिकटुकं त्रिफला करिपिप्पली ॥ ६३ ॥
कर्षद्वयं वा चैतेषां पिप्पलीक्वाथमर्दितम् ।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं चोचं क्षौद्रसमायुतम् ॥ ६४ ॥
अग्निमान्द्यादिकान् रोगानरुचिं पाण्डुकामलाम् ।
उदराणि तथा शोथमानाहं ज्वरमेव च ॥ ६५ ॥
ग्रहणीं श्वासकासञ्च हन्याद् यक्ष्माणमेव च ।
नानारोगप्रशमनं बलवर्णाग्निकारकम् ॥ ६६ ॥
बृहच्छृङ्गाराभ्रनाम विष्णुना परिकीर्त्तितम् ।
एतस्याभ्यासमात्रेण निर्व्याधिर्जायते नरः ॥ ६७ ॥

बृहत् शृङ्गाराभ्रे—नागकेसरमुत्तरापथजं पर्वतीयं गुणवत्तरं भवति । तेजपत्रकं=तेजपात इति दारुसितावृक्षपत्रम् । सुवर्णं=स्वर्णभस्म न धत्तूर बीजं, गुणपाठसामर्थ्यात् । अभ्रं तु कृष्णाभ्रं, वज्राभ्रं वा देयम्, घनं=मुस्तम् । धातकी=धातकी पुष्पम्, एला=क्षुद्रा ज्ञेया । करिपिप्पली=गजपिप्पली, पिप्पलीक्वाथमर्दित-

मिति पिप्पलीतण्डुलान् चूर्णयित्वा तत्क्वाथेन भावना। अनुपानम्, चोचं=दारुसिताचूर्णम् । अभ्यासमात्रेणेति—स्वर्णयुक्तत्वात्, दीर्घकालं सेवितेन रसान्तरप्रयोगं विनैव निर्व्याधिर्भवतीति सुवर्णस्य प्रभावः॥६१-६७॥

पारा एक कर्ष, गन्धक एक कर्ष की कज्जली में सुहागा, नागकेसर, जावित्री, कपूर, लोंग, तेजपात स्वर्णभस्म एक २ कर्ष, कृष्णाभ्रक की भस्म चार कर्ष, तालीश पत्र, मोथा, कूंट, जटामांसी, दारचीनी, धाय के फूल, छोटी इलायची के बीज, सोंठ, मिरच, पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गजपीपल, दो २ कर्ष मिला पिप्पली के क्वाथ से मर्दन कर गोली बनालें। इसको दारचीनी के चूर्ण तथा शहद से मिला सेवन करना चाहिए। यह अग्निमान्द्य आदि रोग तथा अरुचि, पाण्डु, कामला, उदर रोग, शोथ, आनाह, ज्वर, ग्रहणी, श्वास, कास और यक्ष्मा आदि नाना रोगों को नाश करता है, बल अग्नि और वर्ण को बढ़ाता है। यह वृहत्श्रृङ्गाराभ्र रस विष्णु ने कहा है। इस रस के नित्य सेवन से मनुष्य व्याधिरहित हो जाता है। मा. १. र. ॥६१-६७॥

भृङ्गराजस्य पत्रन्तु चूर्णितं मधुना सह।
गोलकं धारयेदास्ये कासविष्टम्भशान्तये ॥६८॥

केषुचित्पुस्तकेषु-भृङ्गराजस्येति श्लोको दृश्यते। भृङ्गराजपत्रचूर्णं विधाय तस्य च मधुना गोलकं कृत्वाऽऽस्ये धारयेत्=आचू-

षणं कुर्यात । अत्र चरकः–भृङ्गराजवार्त्ताकुजा रसाः सक्षौद्राः कफकासघ्नाः । चि. २२ । ॥६८ ॥

॥ इत्यानन्दी टीकायां कासाधिकारः ॥

भृङ्गराज के पत्र चूर्ण को मधु से चाटने से खाँसी कफ दूर होते हैं । ॥६८॥

इति कासचिकित्सा ।

अथ हिक्का-श्वास-चिकित्सा ।

सूर्यावर्त्तो रसः—

गन्धकं सूतकं मर्द्यं यामैकं कन्यकाद्रवैः ।
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन लेपयेत् ॥ १ ॥
दिनैकं हण्डिकायन्त्रे पचेच्छीतं समुद्धरेत् ।
सूर्य्यावर्त्त रसो नाम द्विगुञ्जः श्वासकासनुत् ॥ २ ॥

क्रमप्राप्तां हिक्काश्वासचिकित्सामाह—तत्र सूर्यावर्ते ताम्रभस्मप्रकारोऽयम । पारदगन्धयोः समभागयोः कन्यकाद्रावैः=घृतकुमारीस्वरसेन मसृणां कज्जलीं विधाय सूतगन्धप्रमाणं ताम्रपत्रम् । (अत्र-कण्टकवेध्यं ताम्रपत्रं ग्राह्यम, रेतिकारेतितं सूक्ष्मं ताम्रचूर्णं वा तेनैव बालुकायन्त्रे काचकूप्यां वा पाकोपपत्तेः) तत्कल्केनावेष्ट्य शुष्कं सत् मृत्कर्पटावृतायां काचकूप्यामापूर्य तन्मुखावरोधनं कृत्वा हण्डिकायन्त्रे=बालुकायन्त्रे (रससिन्दूर विधानवत्) पचेत् । श्वासकासनुदिति=हिक्कायकृत्प्लीहशूलादीनामुपलक्षणम । अर्धरक्तिकातः सेवनीयः । अन्यत्रापि ताम्रभस्मवदस्योपयोगः ॥१–२॥

भाषा—पारा एक तोला, गन्धक एक तोला, कज्जली को घीकुमार के रस से एक प्रहर खरल करे। शुद्ध तांबे के पतले पत्र दो तोला लेकर उस पर पीठी लेप दे और एक हांडी में डाल मुंह बन्द कर दिन भर पकावे। स्वाङ्गशीतल हो जाने पर उतार ले। इसे दो रत्ति मात्रा में प्रयोग करे। यह श्वास और कास को दूर करता है। मा. ½ र. ॥१-२॥

इन्द्रवारुणिकादि चूर्णम्—

इन्द्रवारुणिकामूलं देवदारु कटुत्रयम्।
शर्करासहितं खादेदूर्ध्वश्वासनिवृत्तये ॥ ३ ॥

इन्द्रवारुणिकादिचूर्णं—इन्द्रवारुणिका=इन्द्रायन की जड़ इति, देवदारु=सुरदारु–अस्य सारो ग्राह्यः। मात्रामाषकद्वयमुष्णजलेन प्रत्यहं द्विस्त्रिर्वा मलशुद्धिरप्यनेन स्यात् ॥३॥

भाषा—इन्द्रायण की जड़, देवदार, सोंठ, मिरच, पिप्पली प्रत्येकद्रव्य समभाग ले, सर्वसम खांड मिला यथाबल खावें तो ऊर्ध्व श्वास निवृत्त होता है। इसे अनुपान रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं। अथवा अनुपान में इनका क्वाथ बना खांड मिला पीने को देते हैं। ॥३॥

विजयवटी—

गन्धकं सूतकं लौहं विषमभ्रकमेव च।
विडङ्गं रेणुकं मुस्तमेला ग्रन्थिककेशरम् ॥ ४ ।
त्रिकटु त्रिफला ताम्रं शुद्धं जैपालचित्रकम्।
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ ५ ॥

कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ।
सूतायां ग्रहणीदोषे शूले पाण्ड्वामये तथा ।
हस्तपादादिदाहेषु वटिकेयं प्रशस्यते ॥ ६ ॥

विजयवल्ल्याम्—रेणुकं=कंकुष्ठमिति राजनिघण्टुवर्णानुक्रमणिका, रेणुकेति र. यो. सा. पाठे तु रेणुका सिम्हालू के बीज इति ज्ञेयम् । व्यवहारोऽप्यनेनैव । ग्रन्थिकं=पिप्पलीमूलम, सर्वद्रव्यद्विगुणः पुराणो गुडः । मलशुद्धि करणोर्थेऽप्यस्य योगो ज्ञेयः । मा. ८ र. ॥४-६॥

भाषा—गन्धक, पारा, लौह, विष, अभ्रक, विडंग, सिम्हालू के बीज, मोथा, छोटी इलायची, पिप्पलामूल, नागकेशर, सोंठ, मिरच पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, ताम्र, शुद्ध जमालगोटा, चीता, सम भाग ले कज्जली में मिला सबसे दुगना गुड़ मिलावें इसकी मात्रा यथाबल खावें तो कास, श्वास, क्षय, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, सूतिकारोग, ग्रहणी, शूल, पाण्डु, हाथ पैरों का दाह आदि सब रोग निवृत होते हैं ॥४-६॥

घृतेन पाचयेन्मूलं पत्रञ्च वासकस्य च ।
भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कासे श्वासे क्षये तथा ॥ ७ ॥

वासकप्रयोगे—वासकमूलं पत्रं च गोघृतेन किञ्चिद् भर्जयित्वा माषकमात्रया त्रिश्चतुर्वा मधुना क्षुत्करणार्थं कासादौ विशेषतो रक्तागमने प्रशस्यते ॥७॥

भाषा—बांसे (अडूसा) के पत्ते और जड़ के चूर्ण को घी में भून कर कास श्वास तथा क्षयरोग में प्रातःकाल प्रयोग कराना चाहिए ॥ ७॥

देवदारु पिप्पली च शुण्ठीचूर्णं समं तथा ।
ऊर्ध्वश्वासं सदा हन्ति पिबेदुष्णजलेन च ॥ ८ ॥

देवदार्वादिचूर्णमपि प्रत्यहं त्रिश्चतुर्वा उष्णजलेन योज्यम् ॥८॥

भाषा—बुरादा-देवदारु, पिप्पली, सोंठ सबके चूर्णों को सम भाग लेकर मात्रा में गरम जल से पीवें तो ऊर्ध्वश्वास नाश होता है ॥८॥

लौहपर्पटी रसः—

भागौ रसस्य गन्धस्य द्वावेको लौहभस्मतः ।
एतद्घृष्टं द्रवीभूतं मृद्वग्नौ कदलीदले ॥ ९ ॥
पातयेद् गोमयगते तथैवोपरि योजयेत् ।
ततः पिष्ट्वा द्रवैरेभिः सप्तधा भावयेत् पृथक् ॥१०॥
भार्गी-मुण्डी-मुनि-वरा जया निर्गुण्डिका तथा ।
व्योषवासककन्याद्र द्रवैस्तस्मात् पुटे पचेत् ॥११॥
आगन्धं खर्परे ताम्रे पर्पट्याख्यो रसो भवेत् ।
सर्वरोगहरस्तैस्तैरनुपानैर्हि माषकः ॥ १२ ॥
ताम्बूलीपत्रसहितः श्वासकासहरः परः ।
सकणः सुरसा क्वाथोऽनुपानं वासकाज्जलम् ॥ १३॥
अम्लिकातैलवार्त्ताकु-कूष्माण्डं कदलीफलम् ।
वर्ज्यं मांसरसं सर्वं पथ्यं दद्यात् विचक्षणः ।

वर्ज्जयेच्च विशेषेण कफकृत् स्त्रीसुखादिकम् ॥१४॥

लौहपर्पटी रसे—द्वाविति-प्रत्येकं रसगन्धयोर्भागद्वयम्, पर्पटीवत्पाकं (प्र. ५४-६०) विधाय सञ्चूर्ण्य-एभिरनुपदं वक्ष्यमाणैर्भार्ग्यादिभिश्चतुर्दशद्रव्यैः सप्त सप्त भावनाः। भार्गी प्रसिद्धा तस्यास्त्वक् क्वाथो ग्राह्यः, मुण्डी=घुण्डीति, मुनि=रगस्त्यवृक्षः, वरा=त्रिफला, जया=जयन्ती, कन्या=कुमारी, ताम्रे=ताम्रनिर्मिते खर्परे श्वाभ्राकाराऽपूपपचनादिपात्रे, आगन्धं=गन्धकामोदप्रतीति पर्यन्तं पुटे पचेत्। अत्र पुटपचनशब्दस्यागन्धं खर्परे पचनमेवाभिप्रायः स्वेदनमिति यावन्न तु द्व्यङ्गुलस्थूलमृत्तिकालेपादिपुटपाकः। स्वेदयेत्पश्चादित्यु (र. र. स० १३-७४) क्तेः। तैस्तैरङ्गारैः नुपानैः=स्तत्तद्रोगहरानुपानैर्यथा शोथे पुनर्नवानुपानेन। ताम्बूली-पत्रसहितो, माषक=स्तन्मानः। माषकैरिति तृतीयान्तपाठस्तु विचारणीयः। कणा=पिप्पली, सुरसा=तुलसी, अम्लिका=चिञ्चा अम्लिकेति—अम्लद्रव्यस्योपलक्षणम्। वार्ताकु=वृन्ताकशाकम्। रक्तालपतायां प्रशस्तोऽस्य प्रयोगः। "स्तनन्धयशिशूनान्तु रसोऽयं नितरां हितः" इति ॥६-१४॥

भाषा—पारा दो तोला, गन्धक दो तोला; लौह एक तोला ले कज्जली में लौह मिला खरल में मर्दन कर लोहे की कड़छी में रख मन्द आग पर पिघलावे। पिघलते ही गोबर पर रखे केले के पत्ते पर डाले ऊपर से केले के पत्ते को रख दे। इस प्रकार लौह पर्पटी बना ले। फिर इसका चूर्ण और भारंगी, मुण्डी,

अगस्त्य, त्रिफला, जया, निर्गुण्डी, त्रिकुटा, बांसा, घीकुमार, अद्रक के रस या क्वाथ से सात २ बार भावना दे फिर सुखाकर खप्पर जैसे तांबे के पात्र में गन्धक की गन्ध आने तक भून ले इस लौह पर्पटी रस को १ माषा मात्रा में रोगानुसार भिन्न भिन्न अनुपान से दें तो सब रोग नाश होते हैं। पान के पत्ते के रस के साथ दें तो श्वास तथा कास रोग का उत्तम नाशक है अनुपान में रोगी तुलसी के क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण डालकर पीवे। अथवा बांसे का रस पीवे। इमली, तेल, बैंगन, पेठा, केला, ये पदार्थ वर्जित हैं सब मांस रस पथ्य है। विशेषकर कफ बर्धक वस्तु न दे तथा स्त्रीसम्भोगादि से बचा रहे मा. ४-६ र. ॥९-१४॥

ताम्रपर्पटी—

लौहस्थाने ताम्रयोगात् ताम्रपर्पटिका भवेत् ॥१५॥

ताम्रपर्पट्याम्—लौहस्थाने ताम्र योगादिति लौहस्य ताम्रस्य च मिलितयोगे गुणाधिक्यं स्यात्। इयं च ग्रहण्यामान्त्रिकक्षये श्वासकासहिक्कासु विशेषतो यकृत्सीह्नि, काकमाचीरसानुपानेन प्रयुज्यते। पाण्डौ तु प्रशस्ततयोपयोगस्त्रिफला रसेन ॥१५॥

भाषा—पूर्वोक्त कज्जली में लौह के स्थान में ताम्र डालें तो ताम्रपर्पटी बन जाती है इससे भी कास श्वास नाश होते हैं ॥१५॥

पिप्पल्याद्यं लौहम्—

पिप्पल्यामलकी द्राक्षा कोलास्थि मधुशर्करा।
विडङ्गपुष्करैर्युक्तं लौहं हन्ति सुदारुणाम्।

छर्दिं हिक्कां तथा तृष्णां त्रिरात्रे[१] न संशयः ॥१६॥

पिप्पल्याद्यलौहे—द्राक्षा=गोस्तनी लघ्वी द्राक्षापि (किसमिस) उपयुक्तैव, कोलास्थि=बदरमज्जा, मधु=मधुयष्टि, मधुशर्करेत्येकं पदं= पुराणं मधु (रक्तपित्ते १२) इति वा पुष्करं=पौखरमूल इति सर्व द्रव्यसमं लौहभस्म। जलेन मर्दयित्वा द्विरक्तिप्रमाणावटी छर्दाविभ-याचूर्णेन माषकमितेन, तथातिछर्दयतो हिक्कायां मषकमितवृह-देलाचूर्णमधुना, एवं मृगमदेनस्तनदुग्धककर्कटीबीजचूर्णेन वा प्रदेयम्। रोगान्तरोद्भव हिक्कायामपीत्थमेवप्रयुज्यते। तृष्णायां धान्यक जलेन, च. सू० अ० ४ तृष्णानिग्रहोक्तौषधीनां यथालाभ हिमेन वा हिक्कायां सिद्धमिदम् ॥१६॥

भाषा—पिप्पली का चूर्ण, आंवले का चूर्ण, किशमिस, बेर की गुठली की गिरी, पुराना मधु, वायविडंग, पुष्कर मूल प्रत्येक द्रव्य सम भाग और सबके तुल्य लौह मिला खरल करें। इस की उचित मात्रा खाने से भयंकर वमन, हिचकी तथा तृष्णा तीन दिन में निःसन्देह नाश हो जाते हैं ॥१६॥

श्वासकुठारो रसः—

टङ्कणं पारदं गन्धं शिलां विषकटुत्रिकम्।
निष्पिष्य वटिका कार्य्या बाणगुञ्जाप्रमाणतः ॥१७॥
उष्णोदकं पिबेच्चानु च द्राक्वाथमथापि वा।

१—त्रिवारेण पा०।

कासं पञ्चविधं हन्ति श्वासं श्लेष्मसमुद्भवम् ।
शिरोरोगं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १८॥

श्वासकुठारे—शिला=मनःशिला, जलेन मर्दयित्वा प्रमाणतो=मानेन, बाणगुञ्जा=पञ्चगुञ्जा वटी विधेया । अद्यत्वे मा० १ र० । क्षुद्रा=कण्टकारी । पञ्चविधे.पकासे मधुना प्रदेयः, प्रतिश्याये-आर्द्रकरसमधुना, जीर्णापस्मार सन्निपातजमूर्छा मोह-उदराध्मा-नशूलार्तस्वेद प्रलापेषुतैस्तैरनुपानैः रौद्रोद्भवेश्वासे नवनीतेन मधुना, अन्यत्रपर्णपत्ररसमधुना, वातजकासे नूतनप्रतिश्याये सन्निपाते स्वरभङ्गे विभीतकचूर्णेन, तन्मज्जा चूर्णेन, मधुना वा । बालानां प्रतमकश्वासे निगुण्डीस्वरसमधुना त्रिदिनं प्रत्यहं त्रिः । सन्नि-पातज्वरे श्वासकासाद्युपद्रवे भार्गीक्वाथेन । शिरोरोगमिति-प्रति-श्यायज्वरे-अर्धावभेदके सूर्यावर्त्ते साधारणशिरः पीडायां नस्य रूपेण देया । दृष्ट प्रत्ययोयम् ॥१७-१८॥

भाषा—पारा १ भाग, गन्धक एक भाग दोनों की कज्जली में सुहागा, मनसिल, विष, सोंठ, मिरच, पिप्पली एक २ भाग मिला जल से घोट पांच रत्ति की गोली बनावें । इसे खाकर ऊपर स छोटी कटेली का क्वाथ या गरम जल पीवें । यह रस पांचों प्रकार की खांसी, कफ से होने वाले श्वास रोग तथा शिरो रोग को ऐसे नाश करती है जैसे विजली वृक्षों को । मा. १-२ र. ॥ ॥१७-१८॥

श्वासकासचिन्तामणिः—

पारदं माक्षिकं स्वर्णं समांशं परिकल्पयेत् ।

पारदार्धं मौक्तिकञ्च सूताद् द्विगुणगन्धकः ॥१६॥
अभ्रञ्चैव तथा योज्यं व्योम्नो द्विगुणलौहकम् ।
कण्टकारीरसेनैव छागीदुग्धेन च पृथक् ॥२०॥
यष्टीमधुरसेनैव पर्णपत्ररसेन च ।
भावयेत् सप्तवारञ्च द्विगुञ्जां वटिकां भजेत् ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तां श्वासकासविमर्दिनीम् ॥२१॥

श्वासकासचिन्तामणौ—स्वर्णमिति-स्वर्णाभावे स्वर्णमाक्षिक भस्मनो भागद्वयंगौणकल्पे योज्यम् । मौक्तिकस्यार्धभागः, तथेति-अभ्रस्य भागद्वयम, द्विगुणलौहकमिति व्योम्नोऽपेक्षया द्वैगुण्यमतो लौहस्यभागचतुष्टयम् । सप्तवारमिति-प्रत्येकं पृथक् सप्त भावना । यक्ष्मणि-उरक्षते तथान्येष्वपि रोगेषु पाण्डुतायां श्वासक्लेशे रक्त-पूययुतश्लेष्मनिर्गमे च पिप्पली मधुना योज्यः । बालानां तमक-श्वासे प्रतमके (पसली, हब्बा डब्बा) च ज्वर पार्श्व वेदना युते सदुग्धेन निर्गुण्डी पुनर्नवा क्वाथेन शर्करा मधुरेण दिवा रात्रौ त्रिस्त्री रोगस्य लघुता गुरुतानुसारेण प्रदत्त स्त्रिभिर्दिनैस्ततोऽर्वा ग्वा फलति विषमज्वरजे श्वासकासादावपि तथैव । श्वासवेगसमये केवलः पञ्चरक्तिक सोम युतोवाऽर्धघटिकाकालेन श्वासमपाकरोति-इत्यस्माकमनुभवः ॥१६-२१॥

भाषा—पारा स्वर्णमाक्षिक सोना एक २ तोला लें । मोतीभस्म आधा तोला, गन्धक दो तोला, अभ्रक दो तोला, लौह चार तोला लें । पारा गन्धक की कज्जली में मिला खरल करें । छोटी कटे-

ली के रस, बकरी के दूध, मुलहटी के क्वाथ, पान के रस से पृथक् सात भावना दे दो रत्ति की गोली को पिप्पली चूर्ण और शहद मिलाकर रोगी खावे तो श्वास तथा कास दोनों नष्ट होते हैं॥१६-२१॥

अन्यः श्वासकुठारः—.

रसं गन्धो विषं टङ्कं शिलोषणकटुत्रयम् ।
सर्वं सम्मर्द्य दातव्यो रसः श्वासकुठारकः ।
वातश्लेष्मसमुद्भूतं श्वासं कासं क्षयं जयेत् ॥२२॥

(द्वितीय) श्वासकुठारे—ऊषणं=मरीचं तस्य च भागद्वयम्। प्रथमश्वासकुठारादभिन्नोऽयमतस्तद्व्याख्यया व्याख्यातो ज्ञेयः । मा० १ र० ॥२२॥

भाषा—पारा, गन्धक, विष, सुहागा, मनसिल, मिरच, सोंठ मिरच, पिप्पली सम भाग लें। कज्जली में मिला जल से घोट गोली बनाले इस श्वासकुठार रस को उचित अनुपान से दें तो वातश्लेष्म से उत्पन्न श्वास कास तथा क्षयरोग नाश होते हैं ॥२२॥

श्वासकुठारो रसः—

रसं गन्धो विषञ्चैव टङ्कणं समनःशिलम् ।
एतानि समभागानि मरिचं तच्चतुर्गुणम् ॥ २३ ॥
त्रिभागं त्र्यूषणं ज्ञेयं खल्ले सर्वं विचूर्णयेत् ।
रसः श्वासकुठारोऽयं द्विगुञ्जःश्वासकासजित् ॥२४॥
गता संज्ञा यदा पुंसां तदा नस्यं प्रदापयेत्

घ्रापयेन्नासिकारन्ध्रे संज्ञाजननमुत्तमम् ॥ २५ ॥
प्रतिश्यायं क्षतक्षीणमेकादशविधं क्षयम् ।
हृद्रोगं श्वासशूलञ्च स्वरभेदं सुदारुणम्
सन्निपातं तथा घोरं तन्द्रामोहान्वितं जयेत् ॥२६॥

अन्य श्वासकुठारे—मरिचं तच्चतुर्गुणमिति एकभागापेक्षया चतुर्गुणम्, त्रिभागंत्र्यूषणमिति—अत्र मरिचस्य भागत्रयम्, एवं शुण्ठी पिप्पल्योः, ततश्च मरिचस्य भागसप्तकं भवति, तन्त्रान्तरे मरिचं सप्तभागिकमित्युक्तेश्च । शेषं प्रथमश्वासकुठारवज्ज्ञेयम्। अपतन्त्रके शिरोऽव्यथायां सूर्यावर्त्तेऽर्धावभेदके च नस्येन दीयते फलति च त्वरितम् । अपतन्त्रके च प्रचुरमरिचजलानुपानेन दन्तबन्धे च तदुद्घाटनं मुखे लोह मुद्रिकादानादिनाविधाय देयो-निम्बपत्र रसैः कटुतिक्तैर्वाऽन्यैः ॥२३-२६॥

इत्यानन्दी टीकायां हिक्काश्वासाधिकारः ।

भाषा—पारा, गन्धक एक २ तोले की कज्जली करें। विष, सुहागा, मनसिल, एक २ तोला, मिरच चार तोला सोंठ तीन तोला, मिरच तीन तोला, पिप्पली तीन तोला, सब द्रव्यों को एकत्र मिला खरल करें इस के दो रत्ति मात्रा में देने से श्वास तथा कास रोग नष्ट हो जाता है। जब रोगी संज्ञारहित हो जावे इसकी नस्य दे सकते हैं। इसे नाक में सुँघाने से रोगी शीघ्र होश में आ जाता है प्रतिश्याय क्षतक्षीण, ग्यारह लक्षण युक्त क्षयरोग, हृदय का रोग, श्वास शूल भयंकर स्वरभेद तथा तन्द्रा एवं मोह-

युक्त घोर सन्निपात को यह दूर करता है ॥२३-२६॥

सोम—यह सोम सुश्रुतोक्त सोम नहीं है। सोमचूर्ण ५ र० उष्ण जल से दे आधे घण्टे में ही इससे श्वास वेग शांत हो जाता है। साधारणतः उक्त प्रकार से प्रातः-सायं प्रयोग करे। इस पर प्रति संस्कृत निदान द्वितीय भाग में खुलासा है वहाँ देखें। इसका प्रचार टीकाकार ने ही सर्वसाधारण में पहले किया है। वैद्यों में प्रचार हो इसी विचार से इसका हम संग्रह भी रखते हैं।

इति हिक्का-श्वास-चिकित्सा।

अथ स्वरभेद-चिकित्सा।

भैरवो रसः—

रसं गन्धं विषं टङ्कं मरिचं चव्यचित्रकम्।
आर्द्रकस्वरसेनैव सम्मर्द्य वटिकां ततः ॥१॥
गुञ्जात्रयप्रमाणेन खादेत् तोयानुपानतः।
स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुस्तरम् ॥ २ ॥

प्रायः सर्वेष्वेव रोगेषु प्रथमं साधारणमलशुद्धिस्ततो लघु भोजनादिकं स्वास्थ्यप्रवर्धकमन्यदपि शुद्धवातातपसेवनं ब्रह्मचर्यादिकं विधेयमेवाऽन्यथेष्टसिद्धिर्न भवति। स्वरभेदस्योर्ध्वजत्रुगत-विकारत्वेऽपि पाचनं शमनमौषधं देयमेव। कासादिष्विव स्वर-भेदेऽपि मुहुर्मुहुर्वटिकादिचूषणं कर्त्तव्यम्। भैरवे—आर्द्रकस्य-रसेनैकवारमेव मर्दनम्। प्रतिश्याये-आर्द्रकरसगुडानुपानेन देयः।

मेदोजकफजस्वरभेदे-आचूषणम्, क्षयजे स्वरभेदे न योज्यः ॥१-२॥

भाषा—पारा, गन्धक, विष, सुहागा, मिरच, चव्य और चीता समभाग ले कज्जली में मिला अदरक के स्वरस से मर्दन कर तीन रत्ती प्रमाण की गोली बनावें। इसकी एक गोली को जल से प्रयोग करें। स्वरभेद, भयंकर खाँसी और दमा भी शीघ्र नाश होता है। मा० १ र० ॥१-२॥

चव्यादिचूर्णम्—

चव्याम्लवेतसकटुत्रयतिन्तिडीक-
तालीशजीरकतुगादहनैः समांशैः।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनस-कफारुचिषु प्रशस्तम् ॥३॥
अनेनैवानुपानेन भस्मसूतं प्रयोजयेत्।
योगवाहि रसश्चापि योजयन्ति भिषग्वराः ॥४॥

चव्यादिचूर्णं—व्योषादिगुडिकातस्तुगाऽधिका। चव्यं=चव इति, तिन्तिडीकं=चिञ्चा, तालीसं-गढ़वालदेशे चकरौता पर्वतादौ एतन्नाम्नैव प्रसिद्धो महान् वृक्षो भवति तत्पत्रम्। तुगा=वंशलोचनम्, दहन=श्चित्रकः, त्रिसुगन्धि एलात्वक्पत्राणि, विंशतिभाग-पुराणगुडेन वटिका विधेया, प्रतिश्यायश्वासकासेष्वपि दृष्टफलम्। क्षयजस्वरभेदेप्याचूषणीयम्। योगवाहिरसमिति-रससिन्दूर पर्पट्यादियोगे सति प्रायः त्रिभिर्दिनैः प्रतिनिवर्तन्ते ॥३-४॥

भाषा—चव्य, अम्लवेत, सोंठ, मिरच, पिप्पली, तिन्तिड़ीक, तालीशपत्र, श्वेत जीरा, वंशलोचन, चीता, इलायची, दालचीनी, तेजपात समभाग सब के बराबर पुराना गुड़ मिला गोली बना लें। इसे मुख में रखकर चूसें तो स्वरभंग, पीनस, कफ तथा अरुचि आदि रोग ठीक होते हैं। इसी के अनुपान से यदि रससिन्दूर का सेवन करें तो शीघ्र लाभ होता है। इसी अनुपान से ही अन्य योगवाही रसों का प्रयोग वैद्यवर करते हैं ॥४॥

सशर्करं शुण्ठीचूर्णं क्षौद्रेण सह योजितम्।
कोकिलस्वर एव स्याद् गुडिका भुक्तमात्रतः ॥५॥

सशर्करमिति—शुण्ठीप्रयोगो मधुना शर्करया च प्रायः सर्वेषु गलरोगेषुहितः किमुत स्वरभेदे ५।

॥ इति स्वरभेदचिकित्सा ॥

भाषा—यदि सोंठ के चूर्ण में खांड मिला शहद के साथ गुडिका बना मुख में रख चूसें तो उसी समय कोयल के समान स्वर हो जाता है ॥५॥

॥ इति स्वरभेदचिकित्सा ॥

अथ–अरोचक–चिकित्सा।

सुधानिधि रसः—

रसगन्धौ समौ शुद्धौ दन्तीक्काथेन भावयेत्।
जम्बीरस्य रसेनैव-आर्द्रकस्य रसेन च ॥१॥

मातुलुङ्गस्य तोयेन तस्य मज्जरसेन च ।
पश्चाद्विशोष्य सर्वांशं टङ्कणञ्चावचारयेत् ॥२॥
देवपुष्पं बाणमितं रसपादं मृतामृतम् ।
माषमात्रञ्च तत्सर्वं नागरेण गुडेन वा ॥३॥
सर्वारोचकशूलार्त्तिमामवातं सुदारुणम् ।
विसूचीञ्चाग्निमान्द्यञ्च भक्तद्वेषञ्च दारुणम् ।
रसोऽयं वारयत्याशु केसरी करिणं यथा ॥४॥

अरोचकाधिकारे सुधानिधिरसे—कज्जलीं दन्त्यादिचतुष्टय-रसेन क्रमेण-एकवारं भावयित्वा-तस्य मज्जरसेन=मातुलुङ्गमज्ज-रसेन, मातुलुङ्गमज्जभाग एको देयः। सर्वांशं=भावितद्रव्यसमानं टङ्कणं च दत्वा, देवपुष्पं=लवङ्गं तच्चूर्णं बाणमितं=भागपञ्चकम् रसपादं=पारदचतुर्थांशम्। मृतामृतमिति—मृतं शोधितं समभाग-टङ्कणयुतमिति वा, अमृतं=वत्सनाभचूर्णं (र. यो. सा. भाषायां मृतामृतं=सोमलभस्मेति व्याख्यातम्।) दत्वा मा. ४ र.। तोलक-पुराणगुडेन माषकनागरानुपानेन देयः। प्रथमतः प्रवृत्ताग्निमान्द्ये जाते ज्वरे शरीरवेदनायामरुचावेवं विसूचिकाऽऽमवातहृच्छू-लादिरोगेष्वरुचौ यथायथं दाडिमीस्वरसादिनापि देयः। यत्र मुखप्रविष्टमन्नं न स्वदते स अरोचकः। मनसा चिन्तयित्वा दृष्ट्वा श्रुत्वा वा भोजनद्वेषो भक्तद्वेषः। यत्रान्ने श्रद्धैव न भवेत् सोऽ-भक्तच्छन्दः॥१-४॥

भाषा—पारा, गंधक एक २ भाग ले; कज्जली कर दन्तीमूल के क्वाथ से भावना दे. फिर जम्बीर, अदरक, बिजौरा तथा बिजौरे की मज्जा के रस से पृथक् भावना देकर सुखा ले। सुहागा दो भाग, लौंग का चूर्ण पाँच भाग तथा विष समभाग टङ्कण के साथ पिसा हुआ चौथाई भाग ले, इन सबको पूर्वोक्त द्रव्य में मिलायें। इसकी एक माशा मात्रा ले सोंठ के चूर्ण वा गुड़ से सेवन करें तो सब प्रकार की अरुचि, शूल, भयंकर आमवात, विसूची, अग्निमान्द्य, भयंकर भक्तद्वेष इन सब विकारों को यह रस ऐसे दूर करता है जैसे सिंह हाथी को। मा. २ र. ॥१-४॥

सुलोचनाभ्रम्—

पलं सुजीर्णं गगनन्तु वज्रकं तेजोवतीकोलमुशीरदाडिमम्।
धात्र्यम्लरोलीरुचकं पृथग्दशपलोन्मितं मर्दितमेव सेवितम् ॥५
अरोचकं वातकफत्रिदोषजं पित्तोद्भवं गन्धसमुद्भवं नृणाम्।
कासं स्वराघातमुरोग्रहं रुजं श्वासं बलासञ्च यकृद्भगन्दरम् ॥६॥

प्लीहाग्निमान्द्यं श्वयथुं समीरणं
मेहं भृशं कुष्टमसृग्दरं क्रिमिम्।
शूलाम्लपित्तं क्षयरोगमुद्धतं
सरक्तपित्तं वमिदाहमश्मरीम्।
निहन्ति चार्शांसि सुलोचनाभ्रकं
बलप्रदं वृष्यतमं रसायनम् ॥७॥

सुलोचनाभ्रे—सुजीर्णं=सम्यङ्मारितम्, वज्रकं=गगनं वज्राभ्रकम्। वज्रकं=हीरकम्, वज्रकं वज्रलोहमिति व्याख्यानान्तरन्तु न युक्तं सुलोचनाभ्रमिति ख्यातेः, तु इति पादपूरणे। पलं=पलप्रमाणम्। तेजोवती=चव्यम, कोलं=बदरमज्जा, उशीरं=खस इति, दाडिम=मम्लदाडिमबीजस्वरसम्। अम्लरोली=चाङ्गेरी, रुचकमत्र=छोलिङ्ग इति ख्यातं न तु तदाख्यं लवणमम्लसाहचर्यादरोचकप्रकरणाच्च। तेजोवत्यादीनि पृथक् दशपलानि दत्वा माषकमात्रया तेषु तेषु रोगेषु तैस्तैरनुपानैः प्रयोज्यम् ॥५-७॥

भाषा—वज्राभ्रकभस्म १ पल; चव्य, बेर की गुठली की गिरी, खस, अनारदाना का चूर्ण एक २ पल ले। इन्हें एकत्र मिला ताजे आंवले के रस, चाङ्गेरी के रस तथा बिजौरे के रस प्रत्येक १० पल से क्रमशः खरल करके गोली बनावे। इसके सेवन से वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा अप्रिय गन्ध से होने वाली अरुचि नाश होती है। खांसी, स्वर बैठ जाना, उरोग्रह पीड़ा, श्वास, कफ, यकृत् रोग, भगन्दर, तिल्ली, अग्निमान्द्य, सूजन, वातरोग, प्रमेह, कुष्ठ, रक्तप्रदर, कृमि, शूल, अम्लपित्त, बढ़ा हुआ क्षय रोग, रक्तपित्त, वमन, दाह, पथरी, बवासीर, इन सब रोगों का नाश होता है। बलदायक है, वृष्यतम और रसायन है। इसका नाम सुलोचनाभ्र है। मा. र. र. ॥ ५-७ ॥

शुद्धसूतयोगः—

ससूतमरुचिघ्नं स्यात् तिन्तिडीकगुडोषणम्।
मृद्वीका जीरकं कृष्णा मातुलुङ्गाम्लवेतसम् ॥८॥

शुद्धसूतयोगे—ससूतं=रससिन्दूरसहितम्, तिन्तिडीकं=इमली का गूदा इति, गुडो वर्षपुराणः, ऊषणं=मरीचम्, मृद्वीका=द्राक्षा, जीरकं=श्वेतजीरकम्, कृष्णा=पिप्पली, मातुलुङ्गं=बिजौरा नींबू इति, अम्लवेतसं=अमलवेत इति ॥८॥

भाषा—रससिन्दूर, तिन्तिडीक, पुराना गुड़, कालीमिरच किशमिश, श्वेत जीरा, पिप्पली, अम्लवेत प्रत्येक द्रव्य को सम-भाग ले बिजौरे के रस से खरल कर चार रत्ति मात्रा में खाने से अरुचि नष्ट होती है ॥ ८ ॥

इत्यरोचक-चिकित्सा ।

अथ छर्दिरोगचिकित्सा ।

छर्दिसंहारो रसः—

अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षुद्राभिः[1] कटुत्रिकैः ।
एभिः सार्धं भस्मसूतः सेव्यो वान्तिप्रशान्तये ॥१॥

छर्दिचिकित्सा—छर्दिसंहारे— अजाजी=जीरकं-श्वेतजीरका-भावे-जीरकत्रितयान्यतमग्रहणम् । त्रयाणामपि छर्दिघ्नत्वात् । पथ्या=हरीतकी, क्षुद्रा=कण्टकारी, भस्मसूतो=रससिन्दूरः । मा. २ र. । पोदीनाख्यतुलसीभेदस्य रसेनाऽनेकशो देयस्तदनु सततं हिमोपला चूषणं छर्दिशान्तये भवति तृष्णाऽपि निवर्तते । केवलहिमोपलचूषणमपि छर्दिविघातायालम् ॥१॥

१—सक्षौद्राभिः पा०

भाषा—रससिन्दूर, जीरा, धनियां; हरड़, सोंठ, मिरच, पिप्पली, छोटी कटेली प्रत्येक समभाग ले वमन की शान्ति के लिये खाना चाहिये ॥ १ ॥

चन्दनादिचूर्णं गुडूचीप्रयोगश्च—

चन्दनं मधुकं क्षीरं पीतं रुधिरवान्तिजित् ।
पिबेद्वान्तिप्रशान्त्यर्थं क्षौद्रै श्छिन्नरुहारसम् ॥२॥

चन्दनादिचूर्णं गडूचीप्रयोगश्च—चन्दनमत्र रक्तचन्दनं रक्तरोधकत्वात्, मधुकं=मधुयष्टी, अनयोः क्षीरपाकविधानेनापि प्रयोगो भवति। चूर्णस्य तु माषकमिता मात्रा पुनः पुनर्देया। छिन्नरुहा=गुडूची। द्वितोलकमितां गुडूचीं पलमिते जले पिष्ट्वा वस्त्रपूते तोलकमितं मधु दत्वा पुनः पुनः प्रयोगः, त्रिदोषजनितवमने पित्ताधिक्ये पिपासास्वेदगात्रदाहादिषु शस्तः। छिन्नरुहा क्वाथो वा तदर्थकृत्। अयं श्लोकः केषुचित्पुस्तकेषु मूले न दृश्यते। हिक्काधिकारोक्तं पिप्पल्यादिलौहमत्र विधेयमिति च मूले पठ्यते। सर्वविधछर्दौ विशेषतस्त्रिदोषजायां मधुना हरीतकीचूर्णं क्वाथो वा शीतलो दिनत्रयं पुनः पुनः प्रयुक्तो दृष्टप्रत्ययश्छर्दिविघाताय। वस्तिदानं च विशेषतो गर्भिणीवमने सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥२॥

भाषा—सफेद चन्दन वा लाल चन्दन, मुलहटी इनको दूध में घिस पिलाने से रक्त-वमन अच्छा होता है। इसी प्रकार गिलोय के रस में शहद मिला पिलावे तो वमन की शान्ति होती है ॥२॥

इति छर्दिरोग-चिकित्सा।